कक्षा
10

राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति

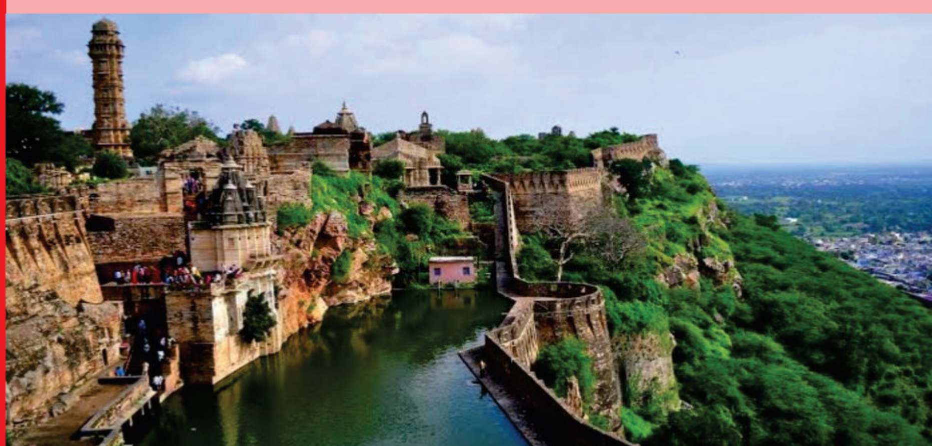

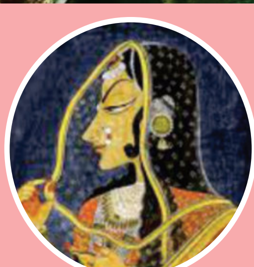

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

कक्षा 10
राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति

राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति

कक्षा–10

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति

कक्षा–10

संयोजक

प्रोफेसर बी. एम. शर्मा

पूर्व अध्यक्ष, राजस्थान लोक सेवा आयोग, अजमेर

लेखकगण

डॉ. कमलनयन शल्य

प्राचार्य, कॉलेज शिक्षा, राजस्थान
प्लॉट नं.–51. मधुबन पश्चिम किसान मार्ग,
टोंक रोड, जयपुर

पवन भंवरिया

सहायक आचार्य, इतिहास
राजकीय महाविद्यालय, सुजानगढ़

चित्रा राव

सहायक आचार्य, इतिहास
राजकीय कला महाविद्यालय, सीकर

पाठ्यपुस्तक पुनर्निरीक्षण समिति

राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति

कक्षा–10

संशोधनकर्ता

डॉ. हुकमचन्द जैन (संयोजक)
इतिहासकार
प्राचार्य (सेवानिवृत)
कॉलेज शिक्षा, राजस्थान
19 बसन्त विहार स्पेशल, कोटा

डॉ. नारायण लाल माली
सहायक आचार्य (इतिहास)
राजकीय महाविद्यालय, रायपुर (भीलवाड़ा)

अरविन्द सिंह भास्कर
प्रधानाचार्य
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, लालासी (सीकर)

प्राक्कथन

राजस्थान का सांस्कृतिक वैविध्य इस प्रदेश की विशिष्टता है। यहाँ के विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिक विशिष्टताओं, समय–समय पर आकर यहाँ बसने वाली जातियों एवं स्थानीय प्रतिभा ने प्रदेश को इस विपुल सांस्कृतिक वैविध्य से समृद्ध किया है। राजस्थान में मानव इतिहास प्रस्तर एवं धातु युगों से सैन्धव कालीन कालीबंगा, आहड़, गिलुण्ड, बागोर, गणेश्वर आदि संस्कृतियों से लेकर वैदिक कालीन संस्कृति कतिपय जनपदों के युगों से होते हुए निरंतर राजपूत काल तक चला आया है। मध्यकाल में, यहाँ अनेक राजपूत रियासतों, रजवाड़ों की स्थापना हुई। तदुपरांत यह प्रदेश यहाँ के रजवाड़ों रियासतों के प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इन्हीं रियासतों में एक ओर शासकों के संरक्षण में साहित्य और विविध कलाओं की शास्त्रीय परम्पराओं की स्थापना हुई और विकास हुआ वहीं दूसरी ओर लोक के संरक्षण में लोक कलाओं और लोक साहित्य फला फूला। इस प्रकार राजस्थान ने जहां एक ओर महाराजा कुम्भा व सवाई जयसिंह जैसे विभिन्न विधाओं व कलाओं के महान संरक्षक, विद्यानुरागी व कलावंत शासक दिए वहीं दूसरी ओर महाराणा सांगा व प्रताप जैसे महान योद्धा व स्वतंत्रता के आदर्श के सर्वस्व उत्सर्ग कर देने वाले वीर उत्पन्न किये। राजस्थान के प्रजावत्सल शासकों के राज्यों की प्रजा के योगदान भी किसी भी दृष्टि से कम नहीं है। इसे यहां की लोक कलाओं, लोकगीतों, कथाओं–कहानियों के माध्यम से देखा जा सकता है।

राजस्थान के रजवाड़ों की लोक परम्पराओं और इतिहास के संकलन का श्रेय कर्नल टॉड को जाता है। उन्होंने अपने वृहद् ग्रन्थ 'एनल्स एंड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान' में राजस्थान के इतिहास, वीरता की परम्परा और लोक परम्पराओं को सहेजा है। कालान्तर में राजस्थान के इतिहासकारों ने टॉड के विवरणों की त्रुटियों का परिहार करते हुए एवं नए तथ्यों के प्रकाश में राजस्थान का इतिहास लिखा है। इसी क्रम में गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, दशरथ शर्मा तथा गोपीनाथ शर्मा ने राजस्थान इतिहास के लेखन में अहम् भूमिका निभाई।

प्रस्तुत पुस्तक में दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए नवीन शोधों व उपलब्ध जानकारियों पर आधारित राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति सुगम, सुग्राह्य एवं प्रमाणिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। आशा है यह पुस्तक विद्यार्थियों के उपयोगी सिद्ध होगी।

संयोजक
प्रोफेसर बी.एम. शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, राजस्थान लोक सेवा आयोग, अजमेर

राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति

विषय कोड–79
पूर्णांक–80

अध्याय–1 : राजस्थान का इतिहास : एक परिचय 18

इतिहास का काल विभाजन, प्रागैतिहासिक राजस्थान (प्राक् युग में राजस्थान), पूर्व पाषाण–काल, मध्य पाषाण–काल, उत्तर (नव) पाषाण–काल, राजस्थान में धातु काल, लौह काल, राजस्थान की प्राचीन सभ्यताएँ, कालीबंगा सभ्यता, आहड़ सभ्यता, गिलूण्ड सभ्यता, बागोर सभ्यता, गणेश्वर सभ्यता, अन्य महत्त्वपूर्ण प्राचीन सभ्यताएं, राजस्थान के जनपद, राजपूतों की उत्पत्ति , वैदिक आर्यों की संतान , अग्निकुण्ड से उत्पन्न, ब्राह्मणों से उत्पत्ति का सिद्धांत, विदेशियों की सन्तान, राजस्थान के प्रमुख राजपूत वंशों का परिचय, गुहिल वंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक, बप्पा रावल, जैत्रसिंह, रतनसिंह, राणा हम्मीर, महाराणा लाखा, महाराणा मोकल, महाराणा कुंभा, राणा सांगा, राणा उदयसिंह, महाराणा प्रताप, राणा अमरसिंह, महाराणा राजसिंह, मारवाड़ का राठौड़ वंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक– राव चूण्डा, राव रणमल, राव जोधा, राव मालदेव, राव चन्द्रसेन, मोटा राजा उदयसिंह, महाराजा जसवंतसिंह प्रथम, बीकानेर का राठौड़ वंश एवं इसके वंश के प्रतापी शासक –राव बीका, राव लूणकर्ण, राव जैतसी, राव कल्याणमल, राव रायसिंह, राव कर्णसिंह, शाकम्भरी का चौहान वंश व इस वंश के प्रतापी शासक– अजयराज, अर्णोराज, विग्रहराज चतुर्थ, पृथ्वीराज तृतीय, संयोगिता–कथा की ऐतिहासिकता, रणथम्भौर का चौहान वंश व इस वंश के प्रतापी शासक, जालोर का चौहान वंश व इस वंश के प्रतापी शासक, आमेर का कच्छवाहा वंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक, भगवानदास, मानसिंह, मिर्जा राजा जयसिंह, सवाई जयसिंह, जैसलमेर का भाटी राजवंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक, भरतपुर का जाट राजवंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक– चूड़ामन, बदन सिंह, महाराज सूरजमल, करौली का यादव वंश, परमार वंश, मराठों का राजस्थान में प्रवेश, बूंदी–उत्तराधिकार संघर्ष , हुरड़ा सम्मेलन, जयपुर का उत्तराधिकार संघर्ष, तूंगा का युद्ध, कृष्णाकुमारी विवाद, जोधपुर का उत्तराधिकार संघर्ष।

अध्याय–2 : राजस्थान के प्रमुख संत एवं लोक देवता 5

लोक देवता – गोगाजी, तेजाजी, पाबूजी, देवनारायणजी, मल्लीनाथजी , रामदेवजी, मेहाजी मांगळिया

संत – धन्ना, पीपा, जांभोजी, लालदास, संत हरिदास, दादूदयाल, मीरा बाई, संत रानाबाई, संत मावजी, रामचरण, महर्षि नवलराम, सांगलिया धूणी (सीकर)।

अध्याय–3 : राजस्थान के उत्सव, त्यौहार एवं मेले 5

उत्सव व त्यौहार – गणगौर, तीज, होली, अक्षय तृतीया, मेले– पुष्कर का मेला, जीणमाता का मेला, खाटूश्यामजी का मेला, भर्तृहरि का मेला, डिग्गी के कल्याण का मेला, श्री महावीरजी का मेला, करणी माता का मेला, शीतला माता का मेला, कैलादेवी का मेला, कपिल मुनि का मेला, ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती का उर्स, अजमेर, गलियाकोट का उर्स, बेणेश्वर का मेला।

अध्याय–4 : राजस्थान के वस्त्र और आभूषण 3

पुरुष परिधान, स्त्री परिधान, राजस्थान के वस्त्र उद्योग की प्रमुख विशेषताएं, आभूषण।

अध्याय–5 : राजस्थानी चित्रकला एवं लोककलाएं 8

चित्रकला, राजस्थानी चित्रकला की विशेषताएं, राजस्थानी चित्रकला की शैलियों का वर्गीकरण– मेवाड़ शैली,

उदयपुर शैली, नाथद्वारा शैली, देवगढ़ शैली, मारवाड़ शैली, जोधपुर शैली, बीकानेर शैली, किशनगढ़ शैली, अजमेर शैली , हाड़ौती शैली, बूंदी शैली , कोटा शैली, झालावाड़–शैली, ढूंढाड़ शैली, आमेर शैली, जयपुर शैली, अलवर शैली, शेखावाटी के भित्ति चित्र, लोककला– राजस्थान की प्रमुख लोककलाएं, सांझी, मांडणा, फड़, पाने, कावड़, मेहंदी, गोदना, कोठियाँ, वील, कठपुतली।

अध्याय–6 : स्थापत्य एवं शिल्प के विविध आयाम — 10

नगर–विन्यास (स्थापत्य) एवं भवन शिल्प,दुर्ग–शिल्प, दुर्गों के प्रकार, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग– चित्तौड़गढ़, कुंभलगढ़ (राजसमंद), रणथम्भौर दुर्ग (सवाईमाधोपुर), सिवाणा दुर्ग (बाड़मेर), तारागढ़ का किला (बूंदी), नाहरगढ़ का किला (जयपुर), तारागढ़ (अजमेर), मेहरानगढ़ (जोधपुर), चूरू का किला, अकबर का दुर्ग (अजमेर), लालगढ़ दुर्ग (बीकानेर), भैंसरोड़गढ़ का किला (चित्तौड़गढ़), गागरोण का किला (झालावाड़), जयगढ़ (आमेर), जालोर का किला, जैसलमेर का किला, लोहागढ़, मंदिर शिल्प– एकलिंगजी का मंदिर, उदयपुर, किराडू के मंदिर, बाड़मेर, जगतशिरोमणि मंदिर, आमेर, जैन मंदिर, देलवाड़ा, हर्षतमाता मंदिर, आभानेरी , शिव मंदिर, बाड़ौली, शिव मंदिर, भण्डदेवरा, जैन मंदिर, रणकपुर, सच्चियाा माता मंदिर, ओसियां, सास–बहू मंदिर, नागदा, राजप्रासाद एवं महल स्थापत्य , हवेली स्थापत्य, छतरियाँ, मकबरे और दरगाह, जल स्थापत्य।

अध्याय–7 : राजस्थानी संगीत — 3

जन–सामान्य के लोक गीत, व्यावसायिक जातियों के लोक गीत।

अध्याय–8 : राजस्थान के लोकनृत्य और लोक नाट्य — 5

लोक नृत्य – गेर नृत्य, गींदड़ नृत्य, कच्छी घोड़ी नृत्य, चंग नृत्य, डांडिया नृत्य, अग्नि नृत्य, घुड़ला, ढोल नृत्य, बम नृत्य, घूमर, गरबा, वालर नृत्य, भवाई नृत्य, तेरहताली नृत्य, लोक नाट्य, ख्याल– कुचामनी ख्याल, शेखावाटी ख्याल, जयपुरी ख्याल, हेला ख्याल, कन्हैया ख्याल, तुर्रा कलंगी ख्याल, गवरी, रम्मत, तमाशा, स्वांग, लीला नाट्य, नौटंकी, चारबैंत।

अध्याय–9 : राजस्थानी भाषा और साहित्य — 5

राजस्थानी भाषा और बोलियां–राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास– क्षेत्रीय बोलियां – राजस्थानी की प्रमुख बोलियां – मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूंढाड़ी, हाड़ौती, मेवाती, वागड़ी, मालवी, शेखावाटी, भीली और अन्य पहाड़ी बोलियाँ – राजस्थानी साहित्य– राजस्थानी साहित्य का इतिहास एवं परंपरा– प्राचीन काल – वीरगाथा काल, पूर्व मध्य काल – भक्ति काल, उत्तर मध्य काल – शृंगार, रीति एवं नीति परक काल, आधुनिक काल – विविध विषयों एवं विधाओं से युक्त, राजस्थानी गद्य–पद्य की विशिष्ट शैलियां– ख्यात, वचनिका, दवावैत , वात , झमाल, झूलणा, परची, प्रकास, मरस्या, रासो, रूपक, विगत, वेलि, साखी, सिलोका, आधुनिक राजस्थानी साहित्य, साहित्यिक पत्रकारिता।

अध्याय–10 : राजस्थान के प्रमुख पर्यटन स्थल — 14

अजमेर – अढ़ाई दिन का झोंपड़ा, ख्वाज़ा साहब की दरगाह, आनासागर झील, मेयो कॉलेज, सोनीजी की नसियां, ब्रह्मा मंदिर, सावित्री मंदिर, पुष्कर सरोवर, अलवर– सरिस्का टाइगर रिजर्व, भानगढ़, मूसी महारानी की छतरी, भर्तृहरि मंदिर, सिलिसेढ़ झील, बांसवाड़ा (सुनहरे द्वीपों का शहर)– माहीबांध, त्रिपुरा सुन्दरी, मानगढ़ धाम, अब्दुल्ला पीर, बारां– सीताबाड़ी, शेरगढ़ किला, रामगढ़ भंडदेवरा मंदिर, बाड़मेर– किराडू मन्दिर, श्री नाकोड़ा जी जैन मन्दिर, रानी भटियानी मन्दिर, भरतपुर– केवलादेव घना राष्ट्रीय उद्यान, लोहागढ़ क़िला, बंध बारेठा, गंगा मंदिर, भीलवाड़ा (वस्त्र नगरी)– मेनाल

जल–प्रपात, मांडलगढ़, शाहपुरा, बूंदी (कुण्ड और बावड़ियों का शहर)– तारागढ़ फोर्ट, चौरासी खम्भों की छतरी, चित्र महल, बून्दी, रानी जी की बावड़ी, चित्तौड़गढ़– चित्तौड़गढ़ किला, विजय स्तम्भ, कीर्ति स्तम्भ, भैंसरोडगढ़ किला, दौसा– चाँद बावड़ी – आभानेरी, हर्षद माता मंदिर – आभानेरी, धौलपुर– वन विहार अभयारण्य, मचकुंड, तालाब–ए–शाही, डूंगरपुर– बेणेश्वर मंदिर, गलियाकोट, गैब सागर झील, हनुमानगढ़– काली बंगा, भटनेर किला, जयपुर (गुलाबी शहर)– हवा महल, आमेर महल, जंतर – मंतर, जयगढ़ फोर्ट, नाहरगढ़ किला, अल्बर्ट हॉल (सेंट्रल म्यूजियम), गलता जी, ईसरलाट (सरगासूली), गोविन्द देव जी मंदिर, जैसलमेर (किले और हवेलियों का शहर)– जैसलमेर का किला, डेजर्ट नेशनल पार्क, पटवों की हवेली, तन्नोट माता मंदिर, रामदेवरा मंदिर, बड़ा बाग, जालोर (ग्रेनाइट की नगरी)– जालोर किला, सुंधा माता मंदिर, मलिक शाह की मस्जिद, झालावाड़– गागरोन का किला, भवानी नाट्यशाला, सूर्य मंदिर, बौद्ध गुफाएं और स्तूप, शेखावाटी (सीकर, झुझुनूं, चुरू), ताल छापर अभयारण्य, मंडावा, खेतड़ी महल, श्रद्धानाथ जी का आश्रम (लक्ष्मणगढ़), हजरत कमरूद्दीन शाह की दरगाह, नवलगढ़, लक्ष्मणगढ़ किला, फतेहपुर, जोधपुर– मेहरानगढ़ किला, जसवंत थड़ा, मण्डोर, कायलाना झील, माचिया सफारी उद्यान, बालसमंद झील, करौली– कैला देवी मन्दिर, श्री महावीर जी मंदिर, मेहंदीपुर बालाजी मंदिर, कोटा– कोटा बैराज, मुकुंदरा बाघ अभयारण्य, जगमंदिर महल, अभेड़ा महल, नागौर– लाडनूं, बड़े पीर साहब दरगाह, झोरड़ा – नागौर, पाली– रणकपुर जैन मंदिर, जवाई बांध, बीकानेर– देशनोक – करणी माता मंदिर, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, जूनागढ़ किला, लालगढ़ पैलेस और म्यूजियम, कोलायत, कतरियासर, राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, राजसमन्द– कुम्भलगढ़ का किला, राजसमन्द झील, हल्दी घाटी, सवाई माधोपुर– रणथम्भौर किला, सिरोही– गुरू शिखर, दिलवाड़ा जैन मन्दिर, नक्की झील, टोंक– बीसलपुर (बांध), सुनहरी कोठी, डिग्गी कल्याण जी मंदिर,श्री गंगानगर (राजस्थान का अन्न भंडार)– बुड्ढ़ा जोहड़ गुरूद्वारा, हिंदुमलकोट सीमा, उदयपुर (झीलों की नगरी)– पिछोला झील, फतेह सागर झील, सहेलियों की बाड़ी, भारतीय लोक कला मंडल, नागदा।

अध्याय–11 : राजस्थान के प्रमुख व्यक्तित्व **4**

निहालचंद, पन्नाधाय, गोरां धाय, गवरी बाई, दुर्गादास राठौड़, दुरसा आढ़ा, दयालदास, कविराज श्यामलदास, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, बावजी चतुरसिंह, बीरबल सिंह, विजयदान देथा, कन्हैयालाल सेठिया, अल्लाह जिलाई बाई, गवरी देवी, कम्पनी हवलदार मेजर पीरू सिंह, मेजर शैतानसिंह, स्वामी केशवानन्द, पं. झाबरमल शर्मा, आचार्य तुलसी, आचार्य नानेश मुनि, कोमल कोठारी, कृपालसिंह शेखावत, जगजीत सिंह, पं. विश्वमोहन भट्ट, कर्पूरचन्द कुलिश, डॉ. पी. के. सेठी।

निर्धारित पुस्तक :

राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति : माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर।

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1	राजस्थान का इतिहास : एक परिचय	1–28
2	राजस्थान के प्रमुख संत एवं लोक देवता	29–38
3	राजस्थान के उत्सव, त्यौहार एवं मेले	39–47
4	राजस्थान के वस्त्र और आभूषण	48–53
5	राजस्थानी चित्रकला एवं लोककलाएं	54–67
6	स्थापत्य एवं शिल्प के विविध आयाम	68–83
7	लोक संगीत	84–88
8	राजस्थान के लोकनृत्य एवं लोक नाट्य	89–96
9	राजस्थानी भाषा और साहित्य	97–104
10	राजस्थान के प्रमुख पर्यटन स्थल	105–127
11	राजस्थान के प्रमुख व्यक्तित्व	128–136
	संदर्भ ग्रंथ सूची	137

अध्याय

1

राजस्थान का इतिहास : एक परिचय

1949 ई. से पूर्व राजस्थान नाम से किसी भौगोलिक इकाई का अस्तित्व नहीं था। ऐसा माना जाता है कि 1800 ई. में सर्वप्रथम जॉर्ज थामस ने इस भू–भाग के लिए 'राजपूताना' शब्द का प्रयोग किया था। इसके बाद 1829 ई. में एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान के लेखक कर्नल जेम्स टॉड ने इस पुस्तक में इस प्रदेश का नाम 'रायथान' या 'राजस्थान' रखा। स्वतंत्रता के बाद जब इस प्रदेश की विभिन्न रियासतों का एकीकरण हुआ तो 30 मार्च, 1949 ई. को सर्वसम्मति से इसका नाम राजस्थान रखा गया।

प्राचीन साहित्य और अभिलेखों में वर्तमान राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों के भिन्न–भिन्न नाम मिलते हैं। कुछ क्षेत्र उनकी भौगोलिक विशेषताओं के आधार पर और कुछ क्षेत्र वहां पर बसी जातियों के नामों से जाने जाते थे। राजस्थान के क्षेत्रों के प्राचीनतम नामों में, जिनका उल्लेख ऋग्वेद में भी आया है, 'मरु', 'धन्व', 'जांगल', मत्स्य, 'शूरसेन' आदि हैं। मरु और धन्व दोनों का अर्थ एक ही है और इनका प्रयोग जोधपुर संभाग के मरूस्थल के लिये हुआ है। जोधपुर पहले 'मरू', फिर 'मरूवार' कहलातां था और कालान्तर में इसे 'मारवाड़' कहा जाने लगा। जांगल शब्द का प्रयोग उस क्षेत्र के लिये किया गया है जहां शमी, कैर या पीलू आदि होते हों। बीकानेर और नागौर व आसपास का क्षेत्र 'जांगल देश' कहलाता था। मत्स्य, जिसका उल्लेख महाभारत में एक राज्य के रूप में हुआ है वह जयपुर अलवर और भरतपुर तक विस्तृत था। इसकी राजधानी विराटनगर थी। भरतपुर के मथुरा क्षेत्र से सटे हुए क्षेत्र, धौलपुर और करौली के अधिकांश भाग शूरसेन राज्य में सम्मिलित थे। यह भी एक प्राचीन राज्य था। महाभारत में भी इसका उल्लेख मिलता है।

भौगोलिक विशेषताओं के आधार पर नामित कुछ अन्य क्षेत्र निम्नलिखित हैं : माही नदी के पास का प्रतापगढ़ का भू–भाग 'कांठल' कहलाता था क्योंकि यह क्षेत्र माही नदी के किनारे (कांठे) पर स्थित था। छप्पन गाँवों का समूह होने के कारण प्रतापगढ़–बाँसवाड़ा के मध्य का भू–भाग 'छप्पन का मैदान'

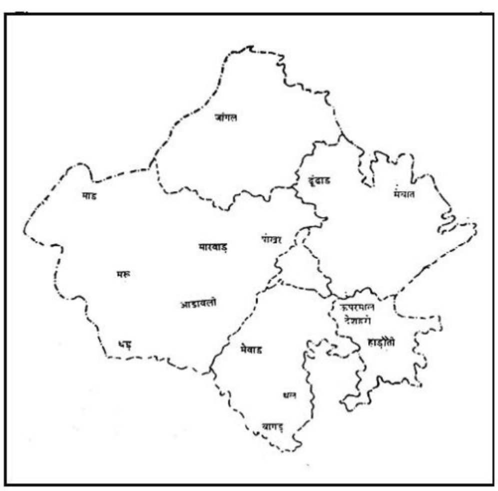

राजस्थान के प्राचीन स्थानीय नाम

कहलाता था। भैंसरोडगढ़ से लेकर बिजौलिया तक का क्षेत्र पठारी होने के कारण 'ऊपरमाल' नाम से जाना जाता था। उदयपुर के आस–पास का प्रदेश पहाड़ियों की अधिकता के कारण 'गिरवा' कहलाता था।

जैसलमेर का प्राचीन नाम 'माँड' था। डूंगरपुर–बाँसवाड़ा क्षेत्र 'बागड़' कहलाता था। कोटा और बूंदी का प्रदेश 'हाड़ौती' नाम से प्रसिद्ध था। सीकर, झुंझुनूं व चूरू का क्षेत्र शेखावाटी नाम से जाना जाता था।

इतिहास का काल विभाजन –

मौटे तौर पर मानव के सम्पूर्ण इतिहास को तीन कालों में विभक्त किया जाता है – (1) प्राक् युग (2) आद्य युग और (3) ऐतिहासिक युग। 'प्राक् युग' इतिहास के उस काल को कहा जाता है जिसके ज्ञान के लिये कोई लिखित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, अर्थात् मानव लेखनकला से अपरिचित था। 'आद्य युग' की संज्ञा इतिहास के उस काल को दी जाती है जिसके लिखित साक्ष्य तो उपलब्ध हैं किन्तु या तो वे अस्पष्ट हैं अथवा उनकी लिपि को अभी पढ़ना सम्भव न हुआ हो। 'ऐतिहासिक युग' उस काल के इतिहास को कहा है जिसके सम्बन्ध में स्पष्ट और सुपठित लिखित साक्ष्य उपलब्ध हैं। इन अर्थों में भारतीय इतिहास के कालक्रम को इस प्रकार से विभक्त कर सकते हैं– (1) प्राक् युग–यह युग सृष्टि के आरम्भ से हड़प्पा सभ्यता के पूर्व तक था। (2) आद्य युग–यह युग हड़प्पा सभ्यता के काल से 600 ई.पू. तक रहा। (3) ऐतिहासिक युग–यह युग 600 ई.पू. से वर्तमान तक जारी है।

प्रागैतिहासिक राजस्थान (प्राक् युग में राजस्थान) –

मानव सभ्यता का उदय नदी–घाटियों में हुआ था क्योंकि नदी घाटियों में जल की प्रचुरता के कारण यहाँ अपने आप उत्पन्न होने वाले कन्दमूल फल भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। सघन वनों के कारण यहाँ मांस हेतु पशु–पक्षी भी आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। सैकड़ों वर्षों पूर्व राजस्थान की भौगोलिक स्थिति ऐसी ही थी। यद्यपि राजस्थान का एक बड़ा भाग आज मरूस्थल है, किन्तु विद्वानों की मान्यता है कि सैंकड़ों वर्ष पूर्व इस मरूस्थली भूमि में समुद्र विद्यमान था और सरस्वती तथा दृषद्वती नदियाँ इस समुद्र में आकर गिरती थीं। यह स्थिति मानव जीवन के लिए सर्वथा उपयुक्त थी। यही कारण है कि ऐसी भौगोलिक स्थिति में राजस्थान को भी मानव सभ्यता के जन्म के प्राचीनतम भू–भागों में से एक होने का गौरव प्राप्त हुआ। मानव सभ्यता के उद्‌भव के इस काल को पाषाण काल कहते हैं, इसे तीन भागों में बांटा गया है– पूर्व पाषाण–काल, मध्य पाषाण–काल तथा उत्तर पाषाण–काल।

पूर्व पाषाण–काल – राजस्थान में मानव का उदय कब हुआ यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है लेकिन यहाँ विभिन्न क्षेत्रों में हुए उत्खननों से प्राप्त विभिन्न प्रकार के पाषाण, विशेष रूप से क्वार्टजाइट पत्थर के अनेक उपकरणों से ज्ञात होता है कि आज से लगभग दो या डेढ़ लाख वर्ष पूर्व राजस्थान में एक मानव संस्कृति विद्यमान थी। 1870 ई. में सी.ए. हैकेट ने सर्वप्रथम जयपुर और इन्द्रगढ़ से पत्थर से बनी पूर्व पाषाणकालीन हस्त कुठार (Hand-axe) खोज निकाली। कुछ समय पश्चात् सेटनकार ने झालावाड़ से इसी युग के अनेक उपकरण खोज निकाले। इसके बाद हुए योजनाबद्ध उत्खनन में भारतीय पुरातत्व और संग्रहालय विभाग, नई दिल्ली, डेक्कन कॉलेज पूना के वीरेन्द्रनाथ मिश्र, राजस्थान पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग के आर.सी. अग्रवाल, डॉ. विजय कुमार, हरिश्चन्द्र मिश्रा आदि विद्वानों ने राजस्थान की पूर्व पाषाणकालीन सभ्यता और संस्कृति के विभिन्न पक्षों को सामने लाने में सराहनीय योगदान दिया है। इनके प्रयत्नों से राजस्थान में अजमेर, अलवर, चित्तौड़, भीलवाड़ा, जयपुर, झालावाड़, जालोर, जोधपुर, पाली, टोंक आदि क्षेत्रों की प्रमुख नदियों, विशेष रूप से चम्बल, बनास व उनकी सहायक नदियों के किनारे पूर्व पाषाणकालीन उपकरण प्राप्त हुये हैं। जालोर से इस युग के उपकरणों की खोज का श्रेय बी. आल्चिन को है। स्पष्ट है कि उपर्युक्त सम्पूर्ण भू–भाग पूर्व पाषाणकालीन संस्कृति का प्रसार क्षेत्र था।

मध्य पाषाण–काल – मानव सभ्यता के क्रमिक विकास की कहानी की दूसरी कड़ी के रूप में राजस्थान

के प्रागैतिहासिक काल में मध्य पाषाण–काल रहा है। पश्चिम राजस्थान में लूनी और उसकी सहायक नदियों, चित्तौड़ की बेड़च नदी घाटी और विराटनगर से मध्य पाषाणकालीन उपकरण मिले हैं। इस काल के उपकरण छोटे, हल्के और कुशलता से निर्मित हैं। ये उपकरण जैस्पर, एगेट, चर्ट, कार्नेलियन, क्वार्टजाइट, कल्सेडोनी आदि पाषाणों से बने हैं, जिनमें ब्लेड (Blade), इग्रेवर (Engraver), ट्रायएंगल (Triangle), क्रेसेन्ट (Crecent), ट्रेपेज (Trapeze), स्क्रेपर (Scraper)), प्वाइंटर (Pointer) आदि उल्लेखनीय हैं। पत्थर के बने इन छोटे उपकरणों को माइक्रोलिथ (लघु पाषाण उपकरण) कहा गया है।

उत्तर (नव) पाषाण–काल – भारत के अन्य भागों की भाँति राजस्थान में भी उत्तर (नव) पाषाणकालीन सभ्यता का उदय हुआ था। अजमेर, नागौर, सीकर, झुंझुनूं, जयपुर, उदयपुर, चित्तौड़, जोधपुर आदि स्थानों से उत्तर पाषाणकालीन सभ्यता के अनेक उपकरण प्राप्त हुये हैं।

राजस्थान में धातु काल

ताम्र–पाषाण, ताम्र एवं ताम्र–कांस्य काल – धातु काल के अन्तर्गत राजस्थान के भी अनेक स्थानों से ताम्र–पाषाण व ताम्रकाल के अवशेष मिले हैं, जो तत्कालीन युग में राजस्थान के मानव के सांस्कृतिक विकास पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। राजस्थान की ताम्रकालीन संस्कृति के प्राचीन स्थलों में गणेश्वर (सीकर), कालीबंगा (हनुमानगढ़), गिलूण्ड (राजसमंद) आहड़ व झाड़ौल (उदयपुर), पिन्ड–पाडलियाँ (चित्तौड़), कुराड़ा (नागौर), साबणिया व पूगल (बीकानेर), नन्दलालपुरा, किराडोत व चीथवाड़ी (जयपुर), एलाना (जालोर), बूढ़ा पुष्कर (अजमेर), कोल माहोली (सवाईमाधोपुर), मलाह (भरतपुर) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

लौह काल – ताम्र और कांस्य काल के पश्चात् लौहे का ज्ञान और उसका प्रयोग मानव इतिहास की युगान्तकारी घटना थी। इसने कृषि उपकरणों तथा हथियारों की गुणवत्ता को बढ़ाकर सारे परिदृश्य को ही बदल दिया। राजस्थान में नोह (भरतपुर), जोधपुरा (जयपुर), सुनारी (झुंझुनूं) रैढ़ (टोंक) आदि स्थानों से लौह संस्कृति के समय के अनेक हथियार और उपकरण मिले हैं। नोह से प्राप्त लौहे के अवशेष भारत में लौह युग के आरम्भ होने की सीमा रेखा निर्धारित करने के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। जोधपुरा तथा सुनारी से लौहे को गलाने की भट्टियाँ और अस्त्र–शस्त्र तथा उपकरण बनाने के कारखानों के अवशेष मिले हैं। रैढ़ को तो लौह सामग्री की प्रचुरता के कारण प्राचीन राजस्थान के 'टाटानगर' की संज्ञा दी गई है।

लौह काल के पश्चात् भारत के अन्य भागों की भाँति राजस्थान में भी सलेटी रंग की चित्रित मृदभाण्ड संस्कृति (Painted Grey Ware – PGW) का उदय हुआ। इस संस्कृति के अवशेष विराटनगर व जोधपुरा (जयपुर), सुनारी, नोह आदि स्थानों से मिले हैं। इस संस्कृति का उदय लगभग 600 ई. पू. में हुआ था। इसके पश्चात् भारतीय इतिहास के साथ राजस्थान के इतिहास का भी ऐतिहासिक युग आरम्भ हो जाता है।

राजस्थान की प्राचीन सभ्यताएँ

कालीबंगा सभ्यता –

प्राचीन दृषद्वती और सरस्वती नदी घाटी (वर्तमान में घग्घर नदी का क्षेत्र) क्षेत्र में हड़प्पा सभ्यता से भी प्राचीन कालीबंगा की सभ्यता विकसित हुई। राजस्थान के हनुमानगढ़ जिले में स्थित यह सभ्यता आज से 6 हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन मानी जाती है। इस स्थल का कालीबंगा नाम यहाँ से खुदाई के दौरान प्राप्त काली चूड़ियों के कारण पड़ा है, क्योंकि पंजाबी भाषा में बंगा का अर्थ होता है चूड़ी। सर्वप्रथम 1952 ई. में अमलानन्द घोष ने इसकी खोज की और तत्पश्चात् 1961–62 ई. में बी.बी. लाल, बी.के. थापर द्वारा यहाँ उत्खनन कार्य करवाया गया। उत्खनन में इस सभ्यता के पाँच स्तर सामने आये हैं, प्रथम दो

स्तर तो हड़प्पा सभ्यता से भी प्राचीन है, वहीं तीसरे, चौथे व पाँचवे स्तर की सामग्री हड़प्पा सभ्यता की सामग्री के समान और समकालीन है। इस आधार पर कालीबंगा की सभ्यता को दो भागों में बांटा गया है – (1) प्राक् हड़प्पा सभ्यता (2) हड़प्पा सभ्यता।

कालीबंगा सुव्यवस्थित रूप से बसा हुआ नगर था। मकान बनाने में मिट्टी की ईंटों को धूप में पकाकर प्रयुक्त किया जाता था। उत्खनन से प्राप्त मिट्टी के बर्तन एवं उनके अवशेष पतले और हल्के हैं तथा उनमें सुंदरता व सुडौलता का अभाव है। बर्तनों का रंग लाल है, जिन पर काली एवं सफेद रंग की रेखाएँ खींची गई हैं। यहाँ से जुते हुए खेत के साक्ष्य मिलते हैं, ऐसा अनुमान है कि लोग एक ही खेत में दो फसलें उगाते थे। कालीबंगा से मिले कब्रिस्तान से यहाँ के निवासियों की शवाधान पद्धतियों की जानकारी मिलती है, साथ ही एक बच्चे के कंकाल की खोपड़ी में छः छिद्र मिले हैं, जिसे मस्तिष्क शोध बीमारी के इलाज का प्रमाण माना जाता है। यहाँ से प्राप्त खिलौना बैलगाड़ी, हवनकुण्ड, लकड़ी की नाली व बेलनाकार मुहर का हड़प्पा सभ्यता में अपना विशिष्ट स्थान है।

आहड़ सभ्यता –

उदयपुर शहर के पास बहने वाली आहड़ नदी (आयड़ नदी) के तट पर बसे आहड़ के उत्खनन के फलस्वरूप चार हजार वर्ष पुरानी पाषाण धातु युगीन सभ्यता के अवशेष सामने आए। यह सभ्यता एक टीले के नीचे दबी हुई प्राप्त हुई थी जिसे धूलकोट (धूल यानि मिट्टी का टीला) कहते हैं। सर्वप्रथम 1953 में यहाँ अक्षयकीर्ति व्यास एवं उसके बाद रतन चन्द्र अग्रवाल एवं एच.डी. साँकलियां के निर्देशन में उत्खनन कार्य करवाया गया।

इस सभ्यता के लोग मकान बनाने में धूप में सुखाई गई ईटों एवं पत्थरों का प्रयोग करते थे। आहड़ के लोग अपने मृतकों को गहनों व आभूषणों के साथ दफनाते थे, जो इनके मृत्यु के बाद भी जीवन की अवधारणा का समर्थक होने का प्रमाण है। उत्खनन में मिट्टी के बर्तन सर्वाधिक मिले हैं, जो आहड़ को लाल–काले मिट्टी के बर्तन वाली संस्कृति का प्रमुख केन्द्र सिद्ध करते हैं। आहड़ का दूसरा नाम ताम्रवती नगरी भी मिलता है जो यहाँ ताँबे के औजारों एवं उपकरणों के अत्यधिक प्रयोग के कारण रखा गया होगा। उत्खनन से प्राप्त ठप्पों से यहाँ रंगाई–छपाई व्यवसाय के उन्नत होने का अनुमान भी लगाया जाता है।

गिलूण्ड सभ्यता –

राजसमन्द जिले में स्थित गिलूण्ड कस्बे में बनास नदी के तट पर दो टीलों के उत्खनन के फलस्वरूप आहड़ संस्कृति से जुड़ी यह सभ्यता प्रकाश में आई, जिसे बनास संस्कृति के नाम से भी पुकारा जाता है। 1957–58 ई. में बी.बी. लाल के निर्देशन में यहाँ उत्खनन किया गया। तत्पश्चात् 1998 से 2003 ई. के मध्य पूना के डॉ. वी.एस. शिन्दे एवं पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) के प्रो. ग्रेगरी पोशल के निर्देशन में यहाँ उत्खनन किया गया। उत्खनन से ताम्रयुगीन सभ्यता के अवशेष मिले हैं, जिसका समय 1900–1700 ई.पू. निर्धारित किया गया है।

गिलूण्ड से पाँच प्रकार के मिट्टी के बर्तन मिले हैं– सादे, काले, पालिशदार, भूरे, लाल और काले चित्रित मृदभांड। उत्खनन में मिट्टी के खिलौने, पत्थर की गोलियाँ एवं हाथी दाँत की चूडियों के अवशेष मिले हैं। आहड़ में पक्की ईटों (आग में पकाई हुई ईंटे) का उपयोग नहीं हुआ है, जबकि गिलूण्ड में इनका प्रचुर उपयोग होता था।

बागोर सभ्यता –

भीलवाड़ा जिले में स्थित बागोर में कोठारी नदी तट पर डॉ. वी. एन. मिश्र के निर्देशन में 1967 से 1970 ई. तक उत्खनन कार्य किया गया। उत्खनन के दौरान यहाँ प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं जो चार से पाँच हजार ईसा पूर्व के माने जाते हैं। यहाँ से बड़ी संख्या में लघु पाषाण

उपकरण मिले हैं, जो इस सभ्यता के निवासियों के आखेटक होने को प्रमाणित करते हैं।

बागोर से तांबे के उपकरण प्राप्त हुए हैं, जिनमें छेद वाली सुई सबसे महत्वपूर्ण है। यहाँ से कृषि व पशुपालन के प्राचीनतम साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। बागोर मध्य पाषाण कालीन सभ्यता का स्थल और लघु पाषाण उपकरण का प्रमुख केन्द्र था।

गणेश्वर सभ्यता –

गणेश्वर (नीम का थाना, सीकर) कांतली नदी के उद्गम पर स्थित ताम्रयुगीन संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थल है। रतनचन्द्र अग्रवाल के निर्देशन में हुए उत्खनन से यहाँ 2800 ईसा पूर्व की सभ्यता के अवशेष मिले हैं। गणेश्वर से अत्यधिक मात्रा में तांबे के आयुध व उपकरण मिले हैं जो इसे ताम्रयुगीन सभ्यताओं में प्राचीनतम सिद्ध करती हैं। यहाँ से प्राप्त तांबे के उपकरणों व पात्रों में 99 प्रतिशत तांबा है, जो इस क्षेत्र में तांबे की प्रचुर प्राप्ति का प्रमाण है। यहाँ से जो मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए है, उन्हें कृपषवर्णी मृदपात्र कहते है, यह बर्तन काले व नीले रंग से सजाये हुऐ हैं। गणेश्वर भारत की ताम्र सभ्यताओं की जननी माना जाता है। यहाँ से तांबा हड़प्पा व मोहनजोदड़ो को भी भेजा जाता था।

अन्य महत्त्वपूर्ण प्राचीन सभ्यताएं

भीनमाल (जालोर) की सभ्यता भी एक महत्त्वपूर्ण सभ्यता है, जिसका उत्खनन आर.सी. अग्रवाल ने करवाया था। यहाँ से एक रोमन ऐम्फोरा (सुरापात्र) व एक यूनानी सुराही मिली है, जो इसके विदेशी व्यापार का केन्द्र होने की पुष्टि करता है। भीनमाल का प्राचीन नाम श्रीमाल था।

इसी प्रकार ईसवाल (उदयपुर) से प्राक् ऐतिहासिक कालीन सभ्यता के प्रमाण मिले हैं। यहाँ से समृद्ध लौह उद्योग के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं।

प्राचीन मत्स्य जनपद में स्थित बैराठ (जयपुर) की बीजक पहाड़ी, भीम की डूंगरी व महादेव जी की डूंगरी से हड़प्पा सभ्यता व मौर्यकाल के अवशेष प्राप्त हुए। दयाराम साहनी, नील रत्न बनर्जी, कैलाशनाथ दीक्षित जैसे विद्वान इसके उत्खनन से जुड़े हुए थे। बैराठ से एक गोल मंदिर व अशोक के स्तम्भ के अवशेष प्राप्त हुए हैं। बैराठ के समीप अशोक का भाब्रू अभिलेख प्राप्त हुआ है, जो अशोक के बौद्ध धर्म का अनुयायी होने का सबसे पुख्ता प्रमाण माना जाता है।

बालाथल (उदयपुर) में प्रो. वी.एन. मिश्र के निर्देशन में हुए उत्खनन से एक ताम्र पाषाणकालीन सभ्यता प्रकाश में आई। इस सभ्यता का सम्पर्क हड़प्पा सभ्यता से होने का पुख्ता प्रमाण प्राप्त होता है।

इन महत्त्वपूर्ण सभ्यताओं के अतिरिक्त हमें रंगमहल (हनुमानगढ़), ओझियाना (भीलवाड़ा), नगरी (चित्तौड़) बरोर (गंगानगर), तिलवाड़ा (बाड़मेर), जोधपुरा (जयपुर), सुनारी (झुंझुनूं), नोह (भरतपुर), नगर (टोंक) आदि प्राचीन सभ्यताओं के अवशेष भी राजस्थान में प्राप्त हुए हैं।

राजस्थान में आर्य संस्कृति का प्रसार – हड़प्पा सभ्यता के पतन (1800 ई.पू. के आस–पास) के बाद भारतीय इतिहास में वैदिक सभ्यता का समय प्रारम्भ होता है। इस सभ्यता के बारे में जानने का प्रमुख स्रोत चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद) हैं, इसलिए इसे वैदिक सभ्यता कहा गया है। राजस्थान में इस सभ्यता के अवशेष अनूपगढ़, तरखान वाला डेरा व चक–64 से मिले हैं।

महाकाव्य काल में राजस्थान में आर्यों की अनेक बस्तियों के उल्लेख मिलते हैं। रामायण से ज्ञात होता है कि राम–रावण युद्ध के समय जब दक्षिणी सागर ने अपने ऊपर सेतु बनवाना स्वीकार नहीं किया तो भगवान राम ने उसे भयभीत करने के लिये खींचा हुआ अपना अमोघअस्त्र राजस्थान की ओर ही फेंका था, जिससे यहाँ समुद्र के स्थान पर मरूस्थल हो गया। यद्यपि आज वैज्ञानिक युग में इस कथा को स्वीकार नहीं किया जा सकता, किंतु रामायण के रचयिता राजस्थान के भू–भाग से परिचित थे, यह तो प्रमाणित हो

ही जाता है।

महाभारत में भी राजस्थान के आर्यों का पर्याप्त उल्लेख हुआ है। महाभारत के अनुसार राजस्थान का जांगलदेश (बीकानेर) कौरव–पाण्डव राज्य के अधीन था और मत्स्य राज्य उनका मित्र या अधीनस्थ राज्य था। कहा जाता है कि पाण्डवों ने अपने अज्ञातवास का एक वर्ष भेष बदल कर मत्स्य देश के शासक विराट के दरबार में ही व्यतीत किया था। महाभारत युद्ध में विराट अपनी सेना सहित पाण्डवों की ओर से लड़ता हुआ मारा गया था।

भारतीय इतिहास की भाँति महाभारत के युद्ध के पश्चात् से महात्मा बुद्ध के समय तक का राजस्थान का इतिहास भी अंधकारमय है क्योंकि इस समय के बारे में जानने के पर्याप्त पुरातात्त्विक व लिखित साक्ष्य प्राप्त नहीं होते हैं। किन्तु बुद्ध के समय से भारतीय इतिहास के ऐतिहासिक युग के आरम्भ होने के साथ ही राजस्थान के इतिहास के सम्बन्ध में भी पहले की अपेक्षा कुछ अधिक स्पष्ट और प्रामाणिक जानकारी मिलने लगती है। बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर विद्वानों का मत है कि छठी शताब्दी ई. पू. में भारतीय राजनीति के रंगमंच पर दो प्रवृत्तियां विशेष रूप दिखाई देती हैं– प्रथम, जनपदों का उदय और द्वितीय, साम्राज्य विस्तार हेतु जनपदों के मध्य संघर्ष।

राजस्थान के जनपद

आर्यों के प्रसार के अन्तर्गत और उसके पश्चात् भारत के अन्य भागों की भाँति राजस्थान में भी अनेक जनपदों का उदय, विकास और पतन हुआ। बौद्ध साहित्य (बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तर निकाय से हमें 16 महाजनपदों की सूची प्राप्त होती हैं) में जिन 16 महाजनपदों का उल्लेख हुआ हैं उनमें से मत्स्य जनपद तो राजस्थान में ही स्थित था और राजस्थान के अनेक भाग कुरु, शूरसेन और अवन्ति महाजनपदों के अन्तर्गत थे। इसके अतिरिक्त चित्तौड़ के आस–पास का क्षेत्र शिवि जनपद कहलाता था। 327 ई. पू. में सिकन्दर के आक्रमणों के कारण अपनी सुरक्षा और अस्तित्व की रक्षा के लिये पश्चिमोत्तर सीमा से कुछ कबीले – मालव, यौधेय और आर्जुनायन राजस्थान में आकर बस गये।

मत्स्य जनपद : आर्य 'जन' के रूप में मत्स्य जाति का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में हुआ है जो इसकी प्राचीनता का प्रतीक है। शतपथ ब्राह्मण और कौषीतकी उपनिषद् में भी मत्स्य जन का उल्लेख मिलता है। महाभारत में भी मत्स्य जनपद की गणना भारत के प्रमुख जनपदों में की गई है। अनुमान है कि दक्षिण में इसका विस्तार चम्बल की पहाड़ियों तक और पश्चिम में पंजाब में सरस्वती नदी के जंगलों तक था। इस प्रदेश में आधुनिक जयपुर, अलवर, धौलपुर, करौली व भरतपुर के कुछ भाग सम्मिलित थे। महाभारत काल में मत्स्य जनपद का शासक विराट था जिसने जयपुर से 85 किलोमीटर दूर विराट नगर (बैराठ) बसाकर उसे मत्स्य जनपद की राजधानी बनाया। विराट की पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ हुआ था। इन्हीं का पुत्र परीक्षित कालान्तर में पाण्डवों के राज्य का उत्तराधिकारी बना।

महाभारत काल के पश्चात् मत्स्य जनपद के इतिहास के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं मिलती। किन्तु डॉ. गोपीनाथ शर्मा का मत है कि महाभारत के बाद कुरु और यादव जनपद निर्बल हो गये। इन शक्तिशाली जनपदों की निर्बलता का लाभ उठाकर मत्स्य राज्य शक्तिशाली हो गया और उसकी राजधानी विराटनगर की समृद्धि में वृद्धि हुई। मत्स्य जनपद के निकट आधुनिक अलवर के कुछ भागों में शाल्व जाति रहती थी। अस्पष्ट सीमा को लेकर इन दोनों में प्रायः संघर्ष होता रहता था। शाल्वों की भाँति चेदि जनपद भी मत्स्य जनपद का पड़ौसी था। चूंकि दो पड़ौसी राजनीतिक शक्तियों में प्रायः शत्रुता रहती है, अतः चेदि और मत्स्य जनपद में भी संघर्ष चलता रहता था। एक अवसर पर चेदि राज्य ने पूर्ण शक्ति के साथ मत्स्य राज्य पर आक्रमण कर मत्स्य जनपद को चेदि जनपद में मिला लिया। अनुमान है कि मत्स्य जनपद अधिक समय तक चेदि जनपद के अधीन नहीं रहा और कुछ समय बाद ही उसने अपनी स्वतंत्रता पुनः प्राप्त कर ली। कुछ समय बाद ही मत्स्य जनपद मगध की साम्राज्यवादी नीति का शिकार हो गया। मगध के सम्राटों ने भारत के अन्य जनपदों की भाँति मत्स्य जनपद को भी जीतकर मगध साम्राज्य में शामिल कर लिया। मौर्यों के शासनकाल में मत्स्य जनपद मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत था। मत्स्य जनपद

की राजधानी विराटनगर (बैराठ) से प्राप्त अशोक का शिलालेख और अन्य मौर्ययुगीन अवशेष इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

राजपूतों की उत्पत्ति –

हर्षवर्धन की मृत्यु (647 ई.) के बाद भारत की राजनीतिक एकता जो गुप्तों के समय स्थापित हुई थी, पुनः समाप्त होने लगी। उत्तर भारत में अनेक छोटे–छोटे राज्यों की स्थापना हुई। ये राज्य आपस में संघर्षरत थे। इन संघर्षों के परिणामस्वरूप जो नये राजवंश उभरे, वे राजपूत राजवंश कहलाते हैं। इन नवीन राजवंशों का महत्त्व इसी तथ्य से पुष्ट होता है कि भारत का पूर्व–मध्यकालीन इतिहास इन राजपूत राजवंशों का इतिहास ही है, इसलिये इस काल को राजपूत–काल कहा जाता है।

प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने लिखा है कि ''वे (राजपूत) हर्ष की मृत्यु के बाद से उत्तरी भारत पर मुसलमानों के आधिपत्य तक इतने प्रभावशाली हो गये थे कि सातवीं शताब्दी के मध्य से 12वीं शताब्दी की समाप्ति तक के समय को राजपूत–युग कहा जा सकता है।''

राजपूत कौन थे? यह प्रश्न आज भी उलझा हुआ है। विद्वानों ने इस विषय में अनेक मत प्रतिपादित किये हैं, किंतु कोई भी मत ऐसा नहीं है, जो पूरी तरह सर्वमान्य हो। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने राजपूतों की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि ''राजपूत शब्द का प्रयोग नया नहीं हैं। प्राचीनकाल के ग्रन्थों में इसका व्यापक प्रयोग मिलता है। चाणक्य के 'अर्थशास्त्र', कालिदास के नाटकों व बाणभट्ट के 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' में इस शब्द का प्रयोग किया गया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी जो हर्षवर्धन के समय आया था, राजाओं को कहीं क्षत्रिय और कहीं राजपूत लिखा है।'' डा. ओझा द्वारा सुझाया गया, यह मत सर्वमान्य नहीं है। राजपूत शब्द का प्रयोग एक जाति के अर्थ में मुसलमानों के आगमन से पूर्व प्राप्त नहीं हुआ है, यद्यपि शासक वर्ग यानी क्षत्रियों के लिए 'राजपुत्र' शब्द का प्रयोग अवश्य किया जाता था। आगे की पंक्तियों में हम इस संबंध में महत्त्वपूर्ण विद्वानों के मतों का अध्ययन करेंगे, उनके मत व उस पर अन्य विद्वानों की टिप्पणियों को भी हम जानेंगे।

वैदिक आर्यों की संतान –

डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा तथा सी.वी. वैद्य राजपूतों को भारतीय आर्यों के क्षत्रिय वर्ण (राजन्य वर्ग) की सन्तान मानते हैं। उनके कथनानुसार राजपूत प्राचीन क्षत्रियों की तरह अश्व तथा अस्त्र की पूजा करते हैं। प्राचीन आर्यों की भाँति यज्ञ और बलि में भी उनका विश्वास रहा है। उनके सुडौल शारीरिक गठन, लम्बी नाक और लम्बे सिर से भी यह प्रमाणित होता है कि वे आर्यों की सन्तान हैं।

अग्निकुण्ड से उत्पन्न –

चन्दबरदायी (अजमेर के शासक पृथ्वीराज–तृतीय का दरबारी विद्वान) ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ पृथ्वीराज रासो में राजपूतों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से बताई है। उसने लिखा है कि आबू पर्वत पर निवास करने वाले विश्वामित्र, गौतम, अगस्त्य तथा अन्य ऋषि धार्मिक अनुष्ठान करते थे। इन अनुष्ठानों को राक्षस माँस, हड्डी और मल–मूत्र डालकर अपवित्र कर देते थे। वशिष्ठ मुनि ने इनसे निपटने हेतु यज्ञ कुण्ड से तीन योद्धा उत्पन्न किये, जो परमार, चालुक्य और प्रतिहार कहलाए। किन्तु जब ये तीनों भी रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध हुए तो वशिष्ठ ने चौथा योद्धा उत्पन्न किया जो प्रथम तीन से ज्यादा ताकतवर और हथियार से सुसज्जित था, जिसका नाम चौहान रखा गया। चन्दबरदाई के अनुसार इस तरह राजपूतों की उत्पत्ति मुनि वशिष्ठ द्वारा अग्निकुण्ड (यज्ञ कुण्ड) से की गई।

यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग में इस कथा को स्वीकार नहीं किया जा सकता, किंतु इस कथा में अंतर्निहित संकेतों को विद्वानों ने समझने का प्रयास किया है। विद्वानों के अनुसार संभवतः प्राचीनकाल के क्षत्रिय जो बौद्ध बन गये थे या प्राचीन आदिवासी भील, मीणा आदि या विदेशी आक्रमणकारी शक्तियों – शक, हूण, यूची आदि की यज्ञ (अग्नि) द्वारा शुद्धि करके क्षत्रिय वर्ण में शामिल किया गया हो और यह कथा

इसी घटना की साहित्यिक प्रस्तुति हो।

ब्राह्मणों से उत्पत्ति का सिद्धांत

सर्वप्रथम डॉ. डी.आर. भण्डारकर ने गुहिल राजपूतों की उत्पत्ति नागर ब्राह्मणों से बतलाई। राजपूतों के ब्राह्मणवंशी होने के साक्ष्य के रूप में डॉ. भण्डारकर बिजौलिया शिलालेख का उल्लेख करते हैं, जिसमें वासुदेव चौहान के उत्तराधिकारी सामंत को वत्स गोत्रीय ब्राह्मण बताया गया है। इसके अतिरिक्त उनके अनुसार राजशेखर ब्राह्मण का विवाह अवंति सुंदरी के साथ होना चौहानों का ब्राह्मण वंश से उत्पत्ति का अकाट्य प्रमाण है। डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने भी मेवाड़ के गुहिलोतों को नागर जाति के ब्राह्मण गुहेदत्त का वंशज बताया है। मेवाड़ के महाराणा कुंभा ने भी जयदेव के गीत गोविन्द की टीका में यह स्वीकार किया कि गुहिलोत, नागर ब्राह्मण गुहेदत्त की सन्तान हैं। किन्तु कुछ अन्य इतिहासकार (खासकर डॉ. दशरथ शर्मा) इस मत को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार कई बार राजपूत अपने पुरोहित का गोत्र अपना लेते हैं, इस कारण यह भ्रम हो जाता है, कि राजपूत ब्राह्मण थे। डॉ. दशरथ शर्मा इस मत का तर्क–सहित खण्डन करते हैं।

विदेशियों की सन्तान –

राजस्थान के इतिहास–लेखक जेम्स टॉड ने लिखा कि, ''राजपूत शक अथवा सीथियन जाति के वंशज हैं।'' टॉड ने अग्निकुण्ड की कहानी को स्वीकार करते हुए इसी आधार पर राजपूतों को विदेशी जाति का प्रमाणित करने का प्रयास किया है। उनका मत है कि यह विदेशी जातियाँ छठी शताब्दी के लगभग आक्रमणकारी के रूप में भारत आयीं और इन्हीं विदेशी विजेताओं को, जब वे शासक बन बैठे तो उन्हें अग्नि संस्कार द्वारा पवित्र कर वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत क्षत्रिय वर्ण में ले लिया। टॉड ने राजपूतों को शक व सीथियन प्रमाणित करने के लिए तर्क दिया है कि राजपूतों के रीति–रिवाज शक, सीथियन और हूणों से मिलते हैं, जैसे– अश्वपूजा, अश्वमेध, अस्त्रपूजा, अस्त्र–शिक्षा आदि अतः दोनों जातियाँ एक ही हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार वी.ए. स्मिथ ने लिखा है कि राजपूत जाति आठवीं या नवीं शताब्दी में अचानक प्रकट हुई थी और स्मिथ ने राजपूतों को हूणों की संतान बताया है।

इन मतों को स्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रथम तो राजपूतों ने स्वयं को कभी विदेशी नहीं बताया है। इसके विपरीत वे अपनी उत्पत्ति सूर्य व चन्द्र से बताते हैं। राजपूतों के रीति–रिवाजों की शक या सीथियन के रीति–रिवाजों से साम्यता स्थापित करना भी अनुचित है, क्योंकि उनके रीति–रिवाज शक–कुषाणों के आने के पूर्व भी भारत में प्रचलित थे। सूर्य की पूजा भारत में वैदिक काल से ही प्रचलित थी और अश्वमेध यज्ञ भी यहाँ पहले से ही ज्ञात था, जैसा कि महाकाव्यों के साक्ष्य से प्रमाणित होता है।

उपर्युक्त समस्त विवरण से स्पष्ट है कि राजपूतों की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों के बीच मतभेद हैं। ऐसी परिस्थिति में अधिकांश विद्वान राजपूतों को भारतीय आर्यों के वंशज स्वीकार करते हैं, जिसमें विदेशी रक्त भी सम्मिलित है। यह भी स्थापित सत्य हैं, कि जो भी विदेशी जातियाँ भारत में आयीं और स्थायी रूप से यहीं निवास करने लगीं, उन्होंने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अपना लिया तथा हिन्दू समाज ने उन्हें स्वयं में समाहित कर लिया। डॉ. कानूनगो ने ठीक ही लिखा है कि, ''अग्निकुण्ड की कहानी इस प्रगति के युग में नहीं चल सकती, उनकी सूर्य अथवा चन्द्र से उत्पत्ति एक काल्पनिक सत्य हो सकता है। राजपूत चाहे किसी भी रूप में जन्मे हों लेकिन यह सत्य है कि इतिहास में उन्होंने महाकाव्य–काल के क्षत्रियों की परम्पराओं को बनाये रखा है।''

राजस्थान के प्रमुख राजपूत वंशों का परिचय

गुहिल वंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक –

उदयपुर, राजसमंद, चित्तौड़गढ़, प्रतापगढ़ तथा इनके आस–पास का क्षेत्र मेवाड़ कहलाता था। गुहिल वंश ने मुख्यतः मेवाड़ में शासन किया। इस वंश का नामकरण इस वंश के प्रतापी शासक 'गुहिल' के नाम से हुआ। गुहिल वंश की उत्पत्ति और मूल स्थान के बारे में अनेक मत प्रचलित हैं। अबुल फजल इन्हें

ईरान के शासक नौशेखाँ से संबंधित करता है, तो कर्नल टॉड इन्हें वल्लभी के शासकों से संबंधित मानता है, वहीं नैणसी व गोपीनाथ शर्मा इनके ब्राह्मण होने का मत प्रतिपादित करते हैं। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का मानना है कि 566 ई. के लगभग गुहिल ने अपना शासन स्थापित किया। गुहिल के बाद मेवाड़ का प्रतापी शासक बप्पा हुआ।

बप्पा रावल (734—753 ई.) — 'राज प्रशस्ति' के अनुसार बप्पा ने 734 ई. में चित्तौड़ के शासक मानमोरी को परास्त कर चित्तौड़ पर अधिकार किया। बप्पा की राजधानी 'नागदा' थी। बप्पा ने कैलाशपुरी में एकलिंगजी (लकुलीश) मंदिर का निर्माण करवाया। एकलिंगजी गुहिल वंश के कुलदेवता थे। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार, बप्पा का वास्तविक नाम कालभोज था। बप्पा कालभोज की उपाधि थी। वीर विनोद के रचनाकार कविराज श्यामलदास ने लिखा है कि बप्पा किसी राजा का नाम नहीं अपितु खिताब था। ऐसी मान्यता है कि बप्पा चित्तौड़ के शासक मानमोरी के यहाँ सेवा में था। जब चित्तौड़ पर विदेशी सेना का हमला हुआ, तो उनसे मुकाबले की चुनौती बप्पा ने स्वीकार की और उन्हें सिंध तक खदेड़ दिया। इसीलिए इतिहासकार सी.वी. वैद्य उसकी तुलना चार्ल्स मार्टेल (फ्रांसिसी सेनापति, जिसने यूरोप में सर्वप्रथम मुसलमानों को परास्त किया था।) से करते हैं।

जैत्रसिंह (1213—1253 ई.) — गुहिल के ही एक वंशज जैत्रसिंह ने परमारों से चित्तौड़ छीनकर उसे अपनी राजधानी बनाया व 1227 ई. में 'भूताला के युद्ध' में दिल्ली के गुलाम वंश के सुल्तान इल्तुतमिश की सेना को परास्त किया, जिसका वर्णन जयसिंह सूरी के ग्रंथ हम्मीर मदमर्दन में मिलता है। इस ग्रंथ में इल्तुतमिश को हम्मीर कहा गया है। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने जैत्रसिंह की प्रशंसा करते हुए लिखा है— ''दिल्ली के गुलाम वंश के सुल्तानों के समय में मेवाड़ के राजाओं में सबसे प्रतापी और बलवान राजा जैत्रसिंह ही हुआ, जिसकी वीरता की प्रशंसा उसके विरोधियों ने भी की है।''

रतनसिंह (1302—1303 ई.) — रावल रतनसिंह को 1303 ई. में दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण का सामना करना पड़ा, जिसका कारण अलाउद्दीन की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा व चित्तौड़ की सैनिक एवं व्यापारिक उपयोगिता थी। 1540 ई. में मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा लिखित पद्मावत में अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ आक्रमण का कारण रावल रतनसिंह की पत्नी पद्मिनी को प्राप्त करना बतलाया गया है। डॉ. दशरथ शर्मा इस मत को मान्यता प्रदान करते हैं। अलाउद्दीन की सेना से लड़ते हुए रतनसिंह व उसके सेनापति गोरा और बादल वीरगति को प्राप्त हुए तथा रानी पद्मिनी ने 1600 महिलाओं के साथ जौहर कर लिया। इस युद्ध में अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन इतिहासकार अमीर खुसरो भी सम्मिलित हुआ था, उसने अपने ग्रंथ खजाईन—उल—फुतुह में इस आक्रमण का वर्णन किया है। अलाउद्दीन ने अपने पुत्र खिज्रखाँ को चित्तौड़ का प्रशासक नियुक्त कर चित्तौड़ का नाम खिज्राबाद कर दिया। रतनसिंह मेवाड़ के गुहिल वंश की रावल शाखा का अंतिम शासक था।

राणा हम्मीर (1326—1364 ई.) — सिसोदा ठिकाने के जागीरदार हम्मीर ने 1326 ई. में चित्तौड़ पर अधिकार कर गुहिल वंश की पुनःस्थापना की। सिसोदा का जागीरदार होने से उसे सिसोदिया कहा गया। हम्मीर के दादा लक्ष्मणसिंह अपने पुत्रों के साथ अलाउद्दीन खिलजी के विरूद्ध लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। उसके बाद मेवाड़ के सभी शासक सिसोदिया कहलाते हैं। हम्मीर को 'मेवाड़ के उद्धारक' की संज्ञा दी जाती है। राणा हम्मीर को विषमघाटी पंचानन (विकट आक्रमणों में सिंह के सदृश्य) की संज्ञा राणा कुंभा की कीर्ति स्तम्भ प्रशस्ति में दी गई है। हम्मीर ने सिंगोली (बाँसवाड़ा) के युद्ध में मुहम्मद बिन तुगलक की सेना को परास्त किया था।

महाराणा लाखा (1382—1421 ई.) — 1382 ई. में महाराणा लाखा मेवाड़ का शासक बना। मारवाड़ के रणमल की बहन हंसाबाई का विवाह लाखा के पुत्र चूण्डा के साथ होना था, मगर परिस्थितिवश यह विवाह लाखा के साथ संपन्न हो गया। इस विवाह के साथ यह शर्त थी, कि मेवाड़ का उत्तराधिकारी हंसाबाई का पुत्र ही होगा, जिससे लाखा के योग्य पुत्र चूण्डा को राज्याधिकार से वंचित होना पड़ा। चूण्डा को राजस्थान का 'भीष्म पितामह' भी कहा जाता है। राणा लाखा के समय में जावर माइन्स से चांदी व सीसा

बहुत अधिक मात्रा में निकलने लगा, जिससे आर्थिक समृद्धि बढ़ी। इसी समय एक बनजारे ने पिछोला झील का निर्माण करवाया था।

महाराणा मोकल (1421—1433 ई.) — मोकल महाराणा लाखा व हंसाबाई का पुत्र था। 1421 ई. में जब मोकल शासक बना, तो अल्पायु का होने के कारण चूण्डा ने उसके संरक्षक के रूप में कार्य किया। पर जब चूण्डा को लगा कि मोकल की माता हंसाबाई उस पर संदेह करती है, तो वह मेवाड़ छोड़कर माँडू चला गया। 1433 ई. में मोकल की जिलवाड़ा में चाचा व मेरा ने महपा पँवार के साथ मिलकर हत्या कर दी।

महाराणा कुंभा (1433—1468 ई.) — मोकल के बाद उसका पुत्र महाराणा कुंभा 1433 ई. में मेवाड़ का शासक बना। राठौड़ों का मेवाड़ पर प्रभाव समाप्त कर उसने मेवाड़ी सामंतों का विश्वास अर्जित किया। कुंभा ने चित्तौड़ एवं कुंभलगढ़ को अपनी शक्ति का केन्द्र बनाया। 1437 ई. में सारंगपुर के युद्ध में मालवा के शासक महमूद खिलजी प्रथम को परास्त कर बंदी बना लिया। इस विजय के उपलक्ष्य में कुंभा ने विजय स्तम्भ का निर्माण करवाया। नागौर के उत्तराधिकार को लेकर मेवाड़ व गुजरात में युद्ध हुआ, जिसमें गुजरात की पराजय हुई। 1453 ई. में कुंभा ने मारवाड़ से मण्डोर छीन लिया, परंतु बाद में संधि कर अपने पुत्र रायमल का विवाह मारवाड़ की राजकुमारी से कर दिया।

1456 ई. में मालवा के महमूद खिलजी प्रथम व गुजरात के कतुबुद्दीन के बीच चम्पानेर की संधि हुई। इस संधि में यह तय किया गया कि दोनों शासक मिलकर कुंभा पर आक्रमण करके, उसे हराकर, उसके राज्य को बांट लेंगे। 1457—58 ई. में गुजरात व मालवा के शासकों ने मेवाड़ पर आक्रमण किया। मगर कुंभा की कूटनीति से दोनों शासकों में मतभेद पैदा होने के कारण वे विशेष सफलता प्राप्त नहीं कर सके।

ऐसा माना जाता है कि कुंभा ने 32 दुर्गों का निर्माण करवाया, जिनमें सिरोही, अचलगढ़ एवं कुंभलगढ़ के दुर्ग प्रसिद्ध हैं। कविराज श्यामलदास भी कुंभा को मेवाड़ के 84 में से 32 दुर्गों का निर्माता बताते हैं। कुंभलगढ़ का दुर्ग अपनी विशेष भौगोलिक स्थिति एवं बनावट के कारण प्रसिद्ध है। इसका शिल्पी मण्डन था। कुंभा ने चित्तौड़ में कुंभस्वामी तथा श्रृंगारचंवरी का मंदिर, एकलिंगजी का विष्णु मंदिर एवं रणकपुर के मंदिर बनवाये, जो अपनी विशालता एवं तक्षणकला के कारण अद्भुत हैं।

कुंभा एक विद्वान एवं विद्यानुरागी शासक था। कान्ह व्यास द्वारा रचित एकलिंग महात्म्य से ज्ञात होता है कि वह वेद, स्मृति, मीमांसा, उपनिषद्, व्याकरण एवं राजनीति में रूचि रखता था। संगीतराज, संगीत मीमांसा व सूड प्रबंध इसके द्वारा रचित ग्रंथ थे। ऐसा माना जाता है कि कुंभा ने चण्डीशतक की व्याख्या, गीत गोविन्द और संगीत रत्नाकार पर टीका लिखी थी। इसके काल में कवि अत्रि और महेश ने कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति की रचना की। तत्कालीन साहित्यिक ग्रंथों और प्रशस्तियों में महाराणा कुंभा को महाराजाधिराज, रावराय, दानगुरु, राजगुरु, परमगुरु, हालगुरु, अभिनवभरताचार्य, हिन्दू सुरताण आदि विरुदों से विभूषित किया गया।

कुंभा निःसंदेह प्रतापी शासक था, किंतु उसका अंतिम समय कष्टमय रहा। अपने जीवन के अंतिम काल में कुंभा को उन्माद रोग हो गया और उसके पुत्र उदा ने 1468 ई. में उसकी हत्या कर दी।

राणा सांगा (1509—1528 ई.) — सांगा (संग्राम सिंह) व उसके तीनों भाई पृथ्वीराज, जयमल व राजसिंह, चारों ही स्वयं को अपने पिता का उत्तराधिकारी मानते थे। इस कारण उनमें संघर्ष होना स्वाभाविक था, पर इस संघर्ष में अंततः सांगा विजयी रहा और मेवाड़ का शासक बना। इतिहास में 'हिन्दूपत' के नाम से प्रसिद्ध महाराणा सांगा 1509 ई. में मेवाड़ का शासक बना। इस समय मालवा पर सुल्तान नासिरूद्दीन शासन कर रहा था। 1511 ई. में सुल्तान की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार का संघर्ष छिड़ गया जिसमें एक राजपूत सरदार मेदिनीराय के सहयोग से महमूद खिलजी द्वितीय को सफलता मिली। इस सफलता से मेदिनीराय का कद बहुत बढ़ गया तथा अब वह एक तरह से मालवा का अप्रत्यक्ष शासक बन गया। अंततः मालवा के अमीरों ने गुजरात की सहायता से मेदिनीराय को इस स्थिति से हटा

दिया। मेदिनीराय राणा सांगा की शरण में चला गया, जिससे मालवा एवं मेवाड़ में युद्ध हुआ। मालवा का सुल्तान महमूद खिलजी–द्वितीय पराजित हुआ और राणा द्वारा बंदी बना लिया गया।

ईडर के उत्तराधिकार का प्रश्न, नागौर पर अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास व मालवा को सहयोग आदि ऐसे मसले थे, जिनको लेकर सांगा व गुजरात के सुल्तान मुजफ्फर के बीच संघर्ष हुआ, पर अंतिम रूप से सफलता किसी पक्ष को न मिली। 1517 ई. में महाराणा सांगा ने खातौली (वर्तमान में कोटा जिले में) के युद्ध में दिल्ली के सुल्तान इब्राहिम लोदी को परास्त किया। इसके बाद राणा की सेना ने बाड़ी (धौलपुर) के युद्ध में भी इब्राहिम लोदी की सेना को परास्त किया। इससे राणा की प्रतिष्ठा बढ़ गयी और राणा सांगा उत्तर भारत का शक्तिशाली शासक बन गया। 1526 ई. में बाबर ने पानीपत के युद्ध में इब्राहिम लोदी को परास्त कर आगरा पर अधिकार कर लिया। बाबर ने राणा सांगा पर विश्वासघात का आरोप लगाकर उसके विरुद्ध कूच किया। बाबर के अनुसार राणा सांगा ने उससे वादा किया था, कि जब वह इब्राहीम लोदी पर आक्रमण करेगा, तो सांगा उसकी मदद करेगा, किंतु राणा सांगा ने उसकी कोई मदद नहीं की, मगर इस आरोप की पुष्टि नहीं होती है। चूंकि दोनों ही शासक शक्तिशाली एवं महत्त्वाकांक्षी थे। अतः दोनों के मध्य युद्ध निश्चित था। यद्यपि खानवा के मैदान में सांगा पराजित हुआ था, पर इससे पहले बयाना के युद्ध (फरवरी, 1527 ई.) में उसने बाबर की सेना को पराजित किया था। 17 मार्च, 1527 को खानवा के मैदान में बाबर और राणा सांगा के बीच युद्ध हुआ। तोपखाने एवं तुलुगमा युद्ध पद्धति के कारण बाबर की विजय हुई। राणा सांगा युद्ध में घायल हुआ एवं उसे युद्ध के मैदान से दूर ले जाया गया। जब राणा सांगा ने अपनी पराजय का बदला लिये बिना चित्तौड़ लौटने से इनकार कर दिया तब उसके सामंतों ने जो युद्ध नहीं करना चाहते थे, सांगा को विष दे दिया। जिसके फलस्वरूप 30 जनवरी, 1528 को बसवा (दौसा) में सांगा की मृत्यु हो गई। माण्डलगढ़ में सांगा का समाधि स्थल है।

राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् राणा रतनसिंह (1528–1531 ई.) व उसके पश्चात् राणा विक्रमादित्य मेवाड़ का शासक बना।

राणा उदयसिंह (1537–1572 ई.) – राजस्थान के इतिहास में अपने महान बलिदान के कारण ख्याति प्राप्त पन्नाधाय ने अपने पुत्र चंदन का बलिदान करके उदयसिंह को बनवीर से बचाया था। उदयसिंह को बचाकर कुंभलगढ़ के किले में रखा गया था। यहीं मालदेव के सहयोग से 1537 ई. में उदयसिंह का राज्याभिषेक हुआ। उदयसिंह ने 1559 ई. में उदयपुर नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। यहाँ उसने उदयसागर झील तथा मोती मगरी के सुंदर महलों का निर्माण करवाया। अक्टूबर, 1567 में अकबर ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। अपने सरदारों की सलाह पर उदयसिंह किले की रक्षा का भार जयमल और फत्ता नामक अपने दो सेनानायकों को सौंपकर पहाड़ियों में चला गया। किले की रक्षा के दौरान जयमल व फत्ता वीर गति को प्राप्त हुए। अकबर ने जयमल–फत्ता की वीरता से मुग्ध होकर आगरा के किले के बाहर उनकी हाथी पर सवार पत्थर की मूर्तियाँ लगवाईं।

महाराणा प्रताप (1572–1597 ई.) – 9 मई 1540 को कुंभलगढ़ में जन्मे प्रताप 1572 ई. में मेवाड़ के शासक बने। महाराणा उदयसिंह ने जगमाल को अपना उत्तराधिकारी बनाया था, मगर सरदारों ने उसे स्वीकार नहीं किया और प्रताप को गद्दी पर बिठा दिया। इस समय दिल्ली पर मुगल बादशाह अकबर का शासन था। प्रताप के सामने दो मार्ग थे या तो वह अकबर की अधीनता स्वीकार कर सुविधापूर्ण जीवन बिताये या अपना स्वतंत्र अस्तित्व और अपने देश की प्रतिष्ठा बनाये रखे। दूसरा विकल्प चुनने की स्थिति में उसे अनेक कष्ट उठाने थे, फिर भी प्रताप ने दूसरे विकल्प 'संघर्ष' को ही चुना। इस संघर्ष की तैयारी में उसने सबसे पहले मेवाड़ को संगठित करने का बीड़ा उठाया। अपने कर्त्तव्य और विचारों से उसने सामन्तों और भीलों का एक गुट बनाया जो सदैव देश की रक्षा के लिए उद्यत रहे। प्रताप ने प्रथम बार इन्हें अपनी सैन्य व्यवस्था में उच्च पद देकर इनके सम्मान को बढ़ाया। मुगलों से बचकर युद्ध का प्रबन्ध करने के लिए उसने गोगुंदा से अपना निवास स्थान कुंभलगढ़ स्थानांतरित कर लिया। अकबर किसी भी तरह से मेवाड़

को अपने अधीन करना चाहता था। अतः उसने समझौते के प्रयास किये। 1572 ई. से 1576 ई. के मध्य उसने चार शिष्ट मण्डल क्रमशः जलाल खाँ, मानसिंह, भगवानदास एवं टोडरमल के नेतृत्व में भेजे। मगर महाराणा ने संधि करने में किसी प्रकार की रूचि नहीं दिखाई। अतः मेवाड़ को मुगल आक्रमण का सामना करना पड़ा। 1576 ई. के प्रारंभ में अकबर मेवाड़ अभियान की तैयारी हेतु अजमेर पहुँचा और वहीं उसने मानसिंह को मेवाड़ अभियान का नेतृत्व सौंपा।

18 जून 1576 ई. को खमनौर के पास मुगल सेना का प्रताप से युद्ध हुआ जो इतिहास में हल्दीघाटी के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध में मुगल सेना का मुख्य सेनापति आमेर का मानसिंह था जबकि प्रताप की सेना के हरावल (अग्रिम दस्ता) का नेतृत्व हकीम खां सूर कर रहा था। युद्ध में प्रताप के जीवन को संकट में देखकर झाला बीदा ने प्रताप का मुकुट धारण कर युद्ध किया और प्रताप को युद्धभूमि से दूर भेज दिया। यह युद्ध अनिर्णायक रहा। इस युद्ध को अबुल फजल ने खमनौर का युद्ध, बदांयूनी ने गोगुंदा का युद्ध तथा जेम्स टॉड ने हल्दीघाटी का युद्ध कहा है। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद महाराणा प्रताप ने पहाड़ों में रहते हुए वहीं से मुगलों को परेशान करने के लिए धावे मारना शुरू कर दिया।

महाराणा प्रताप

1576 से 1585 तक अकबर ने मेवाड़ पर अधिकार करने के लिए अनेक अभियान भेजे किन्तु अधिक सफलता नहीं मिली। इस कालखण्ड में दो महत्त्वपूर्ण घटनाएं घटित हुई। महाराणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह ने 1580 में अचानक शेरपुर के मुगल शिविर पर आक्रमण कर अब्दुर्रहीम खानखाना के परिवार की महिलाओं को बंदी बना लिया। इस सम्पूर्ण घटनाक्रम की जानकारी मिलने पर प्रताप ने मुगल महिलाओं को ससम्मान सुरक्षित भिजवाने के आदेश दिये। नारी सम्मान की भारतीय परम्परा का यह अनुपम उदाहरण है। 1582 में दिवेर की मुगल चौकी पर आक्रमण के समय कुंवर अमरसिंह ने वहां पर तैनात मुगल अधिकारी सुल्तान खां को भाले के एक ही वार से परलोक पहुंचा दिया। दिवेर की विजय के बाद इस पर्वतीय भाग पर प्रताप का अधिकार हो गया। एक छोटी सी मेवाड़ी सेना की यह बहुत बड़ी सफलता थी। यही कारण था कि कर्नल टॉड ने दिवेर को 'मेवाड़ का मेराथन' कहा है।

1585 ई. के बाद अकबर मेवाड़ की तरफ कोई अभियान नहीं भेज सका। 1585 से 1597 ई. के बीच प्रताप ने चित्तौड़ एवं माण्डलगढ़ को छोड़कर शेष राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया, चावण्ड को अपनी राजधानी बनाया और राज्य में सुव्यवस्था स्थापित की। 19 जनवरी, 1597 को प्रताप की मृत्यु हो गई। चावण्ड के पास 'बाडोली' नामक गाँव में प्रताप का अंतिम संस्कार किया गया। प्रताप के संबंध में कर्नल टॉड लिखते हैं कि आलप्स पर्वत के समान अरावली में कोई भी ऐसी घाटी नहीं, जो प्रताप के किसी न किसी वीर कार्य, उज्ज्वल विजय या उससे अधिक कीर्तियुक्त पराजय से पवित्र न हुई हो। हल्दीघाटी मेवाड़ की थर्मोपल्ली और दिवेर मेवाड़ का 'मेराथन' है।

राणा अमरसिंह (1597–1620 ई.) – अमरसिंह 1597 ई. में मेवाड़ का शासक बना। शासक बनने के उपरांत उसे मुगल आक्रमणों का सामना करना पड़ा। 1613 ई. में जहाँगीर स्वयं अजमेर पहुँचा और शाहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) को मेवाड़ अभियान का नेतृत्व सौंपा। उसने मेवाड़ में लूटमार एवं आगजनी

द्वारा संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी। मेवाड़ के सामंत युद्धों से ऊब गये थे एवं उनकी जागीरें भी वीरान हो गई थी। अतः उन्होंने कुँवर कर्णसिंह को अपने पक्ष में कर राणा पर मुगलों से संधि करने का दबाव डाला। सरदारों के दबाव के कारण अमरसिंह को झुकना पड़ा और मुगलों से संधि की स्वीकृति देनी पड़ी। फरवरी 1615 में मेवाड़–मुगल संधि हुई। चित्तौड़ पुनः मेवाड़ को लौटा दिया गया, मगर उसकी मरम्मत नहीं की जा सकती थी। इस प्रकार विगत 90 वर्षों से चले आ रहे मेवाड़–मुगल संघर्ष का अंत हुआ। राणा अमरसिंह अपने इस कार्य से स्वयं खुश न था और उसने स्वयं को राजकार्य से विरक्त कर लिया। जहाँगीर के जीवन की यह एक बड़ी सफलता मानी जाती है।

महाराणा राजसिंह (1652–80 ई.) – राजसिंह ने शासक बनते ही चित्तौड़ की मरम्मत के कार्य को पूरा करने का निश्चय किया। लेकिन मुगल सम्राट ने इसे 1615 ई. की मेवाड़–मुगल संधि की शर्तों के प्रतिकूल मानते हुए चित्तौड़ दुर्ग को ढहाने के लिए तीस हजार सेना के साथ सादुल्ला खाँ को भेजा। राजसिंह ने मुगलों से संघर्ष करना उचित न समझकर अपनी सेना को वहाँ से हटा लिया। मुगल सेना कंगूरे एवं बुर्ज गिराकर लौट गयी। 1658 ई. में मुगल शाहजादों में उत्तराधिकार का युद्ध छिड़ा, मगर महाराणा किसी भी पक्ष का समर्थन नहीं करना चाहता था। अतः महाराणा टालमटोल करता रहा। जब औरंगजेब दिल्ली का शासक बना, तो प्रारम्भ में तो उसके संबंध राजसिंह से अच्छे रहे। औरंगजेब ने उसे 6000 जात एवं सवार का मनसब भी प्रदान किया, किंतु किशनगढ़ की राजकुमारी चारूमति, जिसका विवाह औरंगजेब से होने वाला था, से विवाह करके राजसिंह ने 1660 ई. में औरंगजेब को अप्रसन्न कर दिया। इसके बाद 1679 ई. में औरंगजेब द्वारा जजिया कर लगाने का राजसिंह ने विरोध किया। मुगल–मारवाड़ संघर्ष छिड़ने पर महाराणा राजसिंह ने राठौड़ों का साथ दिया। 1680 ई. में राजसिंह की मृत्यु हो गयी।

अकाल प्रबंधन के उद्देश्य से राजसिंह ने गोमती नदी के पानी को रोककर राजसमंद झील का निर्माण करवाया तथा इस झील के उत्तरी किनारे पर नौ चौकी नामक स्थान पर 'राज प्रशस्ति' नामक शिलालेख लगवाया। संस्कृत भाषा में लिखित राजप्रशस्ति शिलालेख की रचना रणछोड़ भट्ट द्वारा की गई थी। यह प्रशस्ति 25 काले संगमरमर की शिलाओं पर खुदी हुई है। इसे संसार का सबसे बड़ा शिलालेख माना जाता है।

मारवाड़ का राठौड़ वंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक

जिस प्रकार दक्षिणी–पश्चिमी राजस्थान के गुहिलों का शासन मेवाड़ और वागड़ प्रांत में स्थापित हुआ, उसी प्रकार राजस्थान के उत्तरी तथा पश्चिमी भागों में राठौड़ों के राज्य भी स्थापित हुए।

राठौड़ की उत्पत्ति का विषय विवादास्पद है। विभिन्न ताम्रपत्रों, शिलालेखों और प्राचीन पुस्तकों में राठौड़ वंश की उत्पत्ति को लेकर भिन्न–भिन्न मत प्रतिपादित किये गये हैं। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि राठौड़ हिरण्यकश्यप की सन्तान हैं। जोधपुर राज्य की ख्यात में इन्हें राजा विश्वुतमान के पुत्र राजा वृहद्बल से पैदा होना लिखा है। दयालदास ने इन्हें सूर्यवंशीय माना है और इन्हें ब्राह्मण भल्लराव की सन्तान बताया है। नैणसी ने मारवाड़ के राठौड़ो को कन्नौज से आने वाली शाखा बताया है। कर्नल टॉड ने राठौड़ों की वंशावलियों के आधार पर इन्हें सूर्यवंशी माना है।

इस प्रकार राठौड़ों की उत्पत्ति सम्बन्धी मत पर एक राय नहीं है, किंतु सभी विद्वान इन्हें दक्षिण भारत के राष्ट्रकूटों से अवश्य संबंधित मानते हैं। इनमें जोधपुर और बीकानेर के राठौड़ अधिक प्रसिद्ध है। जोधपुर के राठौड़ों का मूलपुरुष (आदि पुरुष) सीहा था, जिसे कन्नौज के गहड़वाल जयचन्द का वंशज माना जाता है। सीहा केवल मारवाड़ के एक छोटे से भाग पाली के उत्तर–पश्चिम में अपना राज्य स्थापित कर पाया। सीहा ने मारवाड़ में राठौड़ राज्य की स्थापना तो कर दी, मगर उसे व्यवस्थित नहीं कर पाया।

राव चूण्डा (1394–1423 ई.) – अपने साहस और कूटनीति से राव चूण्डा ने मण्डोर पर अधिकार कर

लिया। इसने मण्डोर को राठौड़ों की राजधानी बनाया। मण्डोर पर अधिकार के बाद इसने आस–पास के क्षेत्रों खाटू, डीडवाना, सांभर, अजमेर, नाडोल आदि पर भी अधिकार कर लिया। पूंगल के भाटियों द्वारा वह धोखे से 1423 ई. में मारा गया। उसकी पत्नी चाँद कँवर ने 'चाँद बावड़ी' (जोधपुर) का निर्माण करवाया था।

राव रणमल (1427–1438 ई.) – रणमल अपने छोटे भाई कान्हा को मारवाड़ का शासक बनाये जाने से नाराज होकर मेवाड़ चला गया। इसने अपनी बहन हंसा बाई का विवाह राणा लाखा से कर दिया। यह विवाह रणमल ने इसी शर्त पर किया था, कि हंसा बाई का पुत्र ही लाखा का उत्तराधिकारी होगा। अपने भान्जे मोकल के मेवाड़ महाराणा बनने पर मेवाड़ प्रशासन में रणमल का प्रभाव बढ़ गया। रणमल की 1438 ई. में उसकी प्रेमिका भारमली के सहयोग से मेवाड़ी सामन्तों द्वारा हत्या कर दी गई।

राव जोधा (1438–1489 ई.) – राव जोधा मारवाड़ के राव रणमल का पुत्र था। 1438 ई. में चित्तौड़ में रणमल की हत्या होने के बाद उसने जंगलों में रहकर अपनी शक्ति को संगठित किया। 1453 ई. में वह मण्डोर जीतने में सफल रहा। उसने मेवाड़ से सुलह करने के लिए अपनी पुत्री का विवाह मेवाड़ी राजकुमार रायमल से कर दिया। उसने 1459 ई. में जोधपुर नगर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया। राव जोधा ने नयी राजधानी को सुरक्षित रखने के लिए चिड़ियाटूँक पहाड़ी पर एक दुर्ग बनाया जिसे मेहरानगढ़ कहते हैं। राव जोधा ने दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी की एक सेना को परास्त करके प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा राव जोधा को जोधपुर का प्रथम प्रतापी शासक मानते हैं।

राव मालदेव (1531–1562 ई.) – राव मालदेव ने खानवा के युद्ध में राणा सांगा की ओर से भाग लिया। यद्यपि खानवा के युद्ध के समय मारवाड़ का शासक इसका पिता राव गांगा था। इसने 1532 ई. में बहादुरशाह के मेवाड़ पर आक्रमण के दौरान राणा विक्रमादित्य की सहायता की। 1536 ई. में राव मालदेव ने जैसलमेर के राव लूणकरण की पुत्री उमादे से विवाह किया, जो इतिहास में 'रूठी रानी' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस घटना का कारण यह था, कि मालदेव का श्वसुर व उमादे का पिता राव लूणकरण मालदेव की हत्या करवाना चाहता था। इसकी सूचना मालदेव की सास ने मालदेव को भिजवा दी, इस घटना के बाद मालदेव व उमादे के संबंध बिगड़ गये। वह रूठकर अजमेर के तारागढ़ में रही व इतिहास में 'रूठी रानी' नाम से प्रसिद्ध हुई। मालदेव ने मेड़ता के वीरमदेव और बीकानेर के राव जैतसी पर आक्रमण कर (1542 ई.) उनके राज्यों पर अधिकार कर लिया। वीरमदेव व राव जैतसी शेरशाह की शरण में चले गये। 1539 व 1540 ई. में शेरशाह के हाथों पराजित होकर हूमायूँ दर–बदर भटक रहा था, तो मालदेव ने हुमायूँ को सहायता का संदेश भेजा, क्योंकि मालदेव जानता था, कि हुमायूँ की पूर्ण पराजय के पश्चात् शेरशाह का अगला शिकार स्वयं मालदेव ही होगा।

1543–44 ई. में मालदेव को शेरशाह सूरी के आक्रमण का सामना करना पड़ा। शेरशाह की धूर्तता ने मालदेव और उसके सेनापतियों के बीच अविश्वास उत्पन्न कर दिया जिससे मालदेव ने मैदान छोड़ दिया। मगर उसके सेनापतियों जैता और कुप्पा ने जनवरी, 1544 में गिरि सुमेल में शेरशाह से युद्ध किया और वीरगति को प्राप्त हुए। उनकी वीरता से प्रभावित होकर शेरशाह को कहना पड़ा ''एक मुठ्ठी बाजरे के लिए मैं हिन्दुस्तान की बादशाहत खो देता।''

शेरशाह की मृत्यु (1545 ई.) के बाद मालदेव ने जोधपुर, पोकरण, फलौदी, बाड़मेर, कोटड़ा, जालौर और मेड़ता पर पुनः अधिकार कर लिया। 1562 ई. में मालदेव की मृत्यु हो गई।

राव चन्द्रसेन (1562–1581 ई.) – राव मालदेव ने अपने सबसे बड़े पुत्र राम से अप्रसन्न होकर उसे राज्य से निर्वासित कर दिया। अपने दूसरे पुत्र उदयसिंह से भी मालदेव खुश न था, अतः उसे भी अपना उत्तराधिकारी नहीं बनाया। अंततः चंद्रसेन मालदेव का उत्तराधिकारी बना, जो उसका तीसरा पुत्र था। चन्द्रसेन को अपने दो बड़े भाइयों राम और उदयसिंह के विरोध का सामना करना पड़ा। 1564 ई. में राम सहायता लेने अकबर की शरण में चला गया। अकबर ने हुसैन कुली खाँ के नेतृत्व में एक सेना भेजकर

जोधपुर पर अधिकार (1564 ई.) कर लिया।

1570 ई. में अकबर के नागौर दरबार के दौरान चन्द्रसेन भी जोधपुर प्राप्ति की आशा से नागौर पहुँचा। मगर अकबर का उसके भाइयों राम और उदयसिंह की ओर झुकाव देखकर उसने नागौर छोड़ दिया और संघर्ष का रास्ता चुना। अकबर ने बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर का अधिकारी नियुक्त कर चंद्रसेन को मारवाड़ से सहायता मिलने या इस मार्ग से गुजरात में हानि पहुँचाने की सम्भावना समाप्त कर दी।

1564 ई. में जोधपुर को छोड़ने के बाद चन्द्रसेन ने कुछ समय तो भाद्राजूण में रहकर मुगलों की फौजों का मुकाबला किया, परन्तु जब मुगल सेना ने उसे चारों ओर से घेर लिया तो वहाँ से हटकर उसने सिवाना में अपना मोर्चा बनाया। सिवाना का गढ़ और पहाड़ी भाग दुर्गम थे। वहाँ जब चन्द्रसेन का पता न लगा तो मुगल अधिकारियों ने उसके समर्थकों को समाप्त करने का प्रयत्न किया। रावल सुखराज, सूजा तथा देवीदास चन्द्रसेन के साथी थे। मुगल सेनाओं ने इन्हें भी जगह–जगह खूब खदेड़ा। इसके बाद चन्द्रसेन के विरुद्ध सिवाना में मुगल शक्ति लगा दी गयी जिससे तंग आकर वह रामपुरा के पहाड़ों में चला गया। यह जानकर कि मुगलों की छोटी सेना के लिए इतने विस्तृत पहाड़ी प्रदेश को घेरना कठिन था, बादशाह ने सेना में वृद्धि कर दी। फिर भी चन्द्रसेन हाथ न आ सका। सिवाना से निकलकर चन्द्रसेन पीपलोद और वहाँ से काणूजा के पहाड़ों में चला गया और आस–पास लूट–खसोट आरम्भ कर दी। इस नीति से मारवाड़ में लोग अप्रसन्न हो गये। ऐसी स्थिति में उसने मारवाड़ छोड़कर सिरोही और फिर डूंगरपुर और बाँसवाड़ा में शरण लेनी पड़ी। फिर भी मुगल सेना ने उसका पीछा न छोड़ा। इस प्रकार निरन्तर मुगलों से चंद्रसेन संघर्ष करता रहा और 1581 ई. में अपनी मृत्यु तक इसे जारी रखा। विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने चन्द्रसेन की तुलना महाराणा प्रताप से की है, जिसे उसी के समान मुगल शक्ति का सामना करना पड़ा और पहाड़ों में भटकने के बाद भी मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की। इसी कारण चंद्रसेन को मारवाड़ का प्रताप भी कहा जाता है।

मोटा राजा उदयसिंह (1583–1595 ई.) – 1581 से 1583 ई. के मध्य मारवाड़ खालसा (सीधे केन्द्र के अधीन) क्षेत्र था। 1583 ई. में अकबर ने उदयसिंह को मुगल अधीनता में जोधपुर का शासक नियुक्त किया। यह चन्द्रसेन का भाई था। उदयसिंह ने 1587 ई. में अपनी पुत्री जोधा बाई (जगत गुसाई) का विवाह जहाँगीर के साथ किया। खुर्रम जहाँगीर की इसी पत्नी से उत्पन्न पुत्र था। इस विवाह के अवसर पर उदयसिंह को 1000 का मनसबदार बनाया गया था।

महाराजा जसवंतसिंह प्रथम (1638–1678 ई.) – जसवंत सिंह का जन्म 1626 ई. में बुरहानपुर में हुआ था। अपने पिता गजसिंह के स्वर्गवास के समय, जसवंत सिंह अपने विवाह हेतु बूंदी में था। गजसिंह की मृत्यु का समाचार प्राप्त होते ही बादशाह शाहजहाँ के द्वारा उसे आगरा पहुँचने का निमन्त्रण भी मिला। वहाँ पहुँचने पर शाही तौर से उसे टीका दिया गया और खिलअत, जड़ाऊ जमधर आदि वस्तुओं से सम्मानित किया गया। इसी अवसर पर उसे राजा का खिताब तथा 4000 जात व सवार का मनसब प्रदान किया गया। चूंकि उसकी आयु उस समय 11 वर्ष की थी, बादशाह ने आसोप ठाकुर राजसिंह कूंपावत को एक हजार जात और चार सौ सवार का मनसब देकर जोधपुर राज्य का मंत्री नियुक्त किया।

1645 ई. में इसे आगरा का प्रबंध सौंपा गया एवं 1648 ई. में कंधार अभियान पर भेजा गया। उत्तराधिकार युद्ध (1657–58 ई.) में उसने औरंगजेब के विरुद्ध धरमत के युद्ध में दारा का साथ दिया, लेकिन कासिम खाँ के विश्वासघात के कारण दारा की पराजय हुई और जसवंत सिंह को जोधपुर लौटना पड़ा।

जसवंत सिंह के जोधपुर पहुँचने पर उसकी 'उदयपुरी रानी' ने किले के द्वार खोलने से इनकार कर दिया और कहलवा भेजा कि राजपूत या तो युद्ध से विजयी लौटते हैं या वहाँ मर मिटते हैं। महाराजा पराजय के बाद नहीं लौट सकते। यह कहकर वह सती होने की तैयारी करने लगी। अंत में रानी की माँ के

समझाने एवं जसवंत सिंह द्वारा पराजय का बदला लेने का वचन देने पर दुर्ग के द्वार खोले गए। इस कथा की सत्यता पर संदेह किया जाता है, किंतु इस कथा को श्यामलदास ने मान्यता दी है। 5 जनवरी, 1659 को खजुवा के मैदान में औरंगजेब और जसवंत सिंह के आपसी अविश्वास के कारण वह शाही डेरे को लूटकर जोधपुर रवाना हो गया। बाद में जयसिंह की मध्यस्थता से जसवंत सिंह और मुगल सम्राट औरंगजेब के बीच मनमुटाव कम हो गया। फलतः उसका मनसब पुनः बहाल कर 1659 ई. में उसे गुजरात का सूबेदार बना दिया गया। 1662 ई. में जसवंतसिंह को मराठों के विरुद्ध शाइस्ता खाँ की सहायता करने के लिए दक्षिण भेजा गया। परंतु वहाँ शिवाजी के विरुद्ध कोई खास सफलता इसे नहीं मिली। 1673 ई. में जसवंत सिंह को काबुल भेजा गया। बाद में उसे जमरूद में रहने का आदेश दिया गया और वहीं 28 नवम्बर, 1678 को उसकी मृत्यु हो गई।

जसवंत सिंह विद्वानों का आश्रयदाता था। उसके समय के विद्वानों में सूरत मिश्र, नरहरिदास, नवीन कवि, बनारसीदास आदि प्रसिद्ध हैं। मुँहणोत नैणसी उसका मंत्री था। नैणसी ने नैणसी री ख्यात व मारवाड़ रा परगना री विगत नामक ग्रंथों की रचना की थी।

बीकानेर का राठौड़ वंश एवं इसके वंश के प्रतापी शासक

राव बीका (1465 –1504 ई.) – बीका मारवाड़ के शासक राव जोधा का पुत्र था। अपने पिता के द्वारा व्यंग्य किये जाने पर 1465 ई. में वह जांगल प्रदेश में आ गया। किंवदंती है कि करणी माता की कृपा से उसे नवीन राज्य स्थापित करने में सहायता मिली। एक दूसरी मान्यता के अनुसार जांगल प्रदेश को राव बीका व जाट सरदार नरा ने मिलकर जीता, दोनों के नाम पर इसे बीकानेर कहा गया। भाटी, चौहान, खींचियों, कायमखानी आदि स्थानीय शक्तियों की फूट का लाभ उठाकर उसने अनेक गाँवों पर अधिकार कर लिया। पूंगल के राव शेखा की पुत्री से विवाह कर उसने अपनी स्थिति को मजबूत किया। 1488 ई. में उसने बीकानेर की स्थापना कर उसे राठौड़ सत्ता का दूसरा केन्द्र बनाया। इसने देशनोक में करणीमाता के मूल मंदिर का निर्माण करवाया।

राव लूणकर्ण (1505 – 1526 ई.) – राव लूणकर्ण राव बीका का छोटा पुत्र था, इसने नागौर के शासक मुहम्मद खाँ को हराया। यह 1526 ई. में ढोसी के युद्ध में नारनौल के नवाब अबीमीरा से लड़ता हआ मारा गया। बीठू सूजा ने अपने ग्रंथ राव जैतसी रो छन्द में इसे 'कलियुग का कर्ण' कहा है। कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकाव्यम नामक ग्रंथ में इसकी दानशीलता की तुलना कर्ण से की गई हैं। 'लूणकरणसर' झील का निर्माता भी इसे स्वीकार किया जाता है।

राव जैतसी (1526 – 1541 ई.) – जैतसी ने 1534 ई. में काबुल के मुगल शासक कामरान (हूमायूँ का भाई) को पराजित किया। इस युद्ध का वर्णन बीठू सूजा ने अपने ग्रंथ 'राव जैतसी रो छन्द' में किया। इसने बीकानेर पर मालदेव के आक्रमण के दौरान अपने मंत्री नागराज को शेरशाह से सहायता प्राप्त करने भेजा। मगर सहायता आने से पूर्व ही 1541 ई. में साहेबा/पाहेबा (जोधपुर) के युद्ध में राव जैतसी मालदेव की सेना से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ।

राव कल्याणमल (1541–1574 ई.) – कल्याणमल ने खानवा के युद्ध (1527 ई.) में राणा सांगा की ओर से भाग लिया। कल्याणमल ने 1544 ई. में गिरि सुमेल के युद्ध में मालदेव के विरुद्ध शेरशाह की ओर से भाग लिया। इसने भटनेर के किले पर अधिकार किया तथा 1570 ई. में अकबर के 'नागौर दरबार' में उपस्थित होकर मुगल अधीनता स्वीकार कर ली। कल्याणमल मुगल अधीनता स्वीकार करने वाला पहला राठौड़ शासक था। कल्याणमल के दो पुत्र थे – रायसिंह व पृथ्वीराज। रायसिंह को अकबर ने 1572 में जोधपुर का प्रशासक नियुक्त किया था, वहीं उसका दूसरा पुत्र पृथ्वीराज अकबर का दरबारी कवि था, जिसने बेलि किसन रूकमणी री नामक ग्रंथ की रचना की।

राव रायसिंह (1574 – 1612 ई.) – यह 1570 ई. के अकबर के 'नागौर दरबार' के समय मुगल सेना में

सम्मिलित हुआ। इसने अकबर के गुजरात अभियान व कंधार अभियान में अपनी वीरता दिखाई। अकबर ने 1572 ई. में इसे जोधपुर का प्रशासक नियुक्त किया। 1574 ई. में रायसिंह 'महाराजाधिराज' की उपाधि के साथ बीकानेर का शासक बना। रायसिंह ने बीकानेर के जूनागढ़ दुर्ग का निर्माण करवाया तथा किले के दरवाजे पर जयमल–फत्ता की पाषाण मूर्तियाँ लगवाई। किले के भीतर इसने एक प्रशस्ति लिखवाई, जिसे रायसिंह प्रशस्ति कहा जाता है। इसके समय में भीषण अकाल पड़ा, जिससे निपटने हेतु इसने बहुत धन खर्च किया था। मुंशी देवीप्रसाद ने इसे 'राजपूताने का कर्ण' की संज्ञा दी।

राव कर्णसिंह (1631 – 1668 ई.) – कर्णसिंह ने मुगल सम्राट शाहजहाँ के दक्षिण अभियानों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जाखणियाँ गाँव के सीमा विवाद को लेकर इसका नागौर के शासक अमरसिंह से युद्ध (1642–1644 ई.) हुआ, जो 'मतीरे की राड़' के नाम से जाना जाता है। मुगल उत्तराधिकार युद्ध के समय कर्णसिंह तटस्थ रहा। मगर युद्ध में औरंगजेब का पलड़ा भारी देखकर अपने पुत्र पद्मसिंह व केसरीसिंह को औरंगजेब की सहायतार्थ भेजा। औरंगजेब के शासक बनने के उपरान्त वह उसकी सेवा में चला गया। चिंतामणि भट्ट के ग्रंथ शुकसप्तति में कर्णसिंह को 'जांगलधर बादशाह' कहा गया है। कर्णसिंह ने साहित्य कल्पद्रमु और उसके दरबारी विद्वान गंगानन्द मैथिल ने कर्णभूषण और काव्य डाकिनी नामक ग्रंथ लिखे।

शाकम्भरी का चौहान वंश व इस वंश के प्रतापी शासक

इस चौहान वंश की उत्पत्ति के विषय में बहुत विवाद है। वंशावलियों और ख्यातों ने इनको अग्निवंशीय माना है। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के विचार से ये सूर्यवंशीय क्षत्रिय थे और अचलेश्वर मंदिर के लेख में इन्हें चन्द्रवंशीय माना गया है। कई विद्वान इन्हें आर्य मानकर विदेशी मानते हैं। इन सभी मतों का विवेचन करते हुए डॉ. दशरथ शर्मा चौहानों की उत्पत्ति ब्राह्मण वंश से मानते हैं।

बिजौलिया शिलालेख के अनुसार सांभर झील का प्रवर्तक वासुदेव चौहानों का आदि पुरुष था, जिसका समय 551 ई. के लगभग माना जाता है। प्रारम्भ में चौहान गुर्जर–प्रतिहारों के सामन्त थे परन्तु गूवक प्रथम ने गुर्जर प्रतिहारों की अधीनता से चौहानों को मुक्त करवाया। इसी का वंशज सामंत साँभर का शासक था, जो वत्सगोत्र ब्राह्मणवंश में पैदा हुआ था। वाक्पतिराज चौहानों का शक्तिशाली शासक हुआ, जिसने प्रतिहारों को परास्त कर अपनी शक्ति का परिचय दिया। विग्रहराज द्वितीय चौहानों का एक अन्य शक्तिशाली शासक था। 973 ई. का हर्षनाथ लेख उसकी विजयों का उल्लेख करता है। उसने गुजरात के चालुक्य शासक मूलराज को परास्त किया। विग्रहराज द्वितीय के बाद दुर्लभराज और गोविन्द तृतीय शासक हुए। पृथ्वीराज विजय नामक ग्रंथ में गोविन्द तृतीय की उपाधि 'वैरीघट्ट' (शत्रुसंहारक) मिलती है। फरिश्ता के अनुसार गोविन्द तृतीय ने गजनी के शासक को मारवाड़ में आगे बढ़ने से रोका था।

अजयराज (1105–1133 ई.) – अजयराज, जो 1105 ई. में शासक बना, इस वंश का एक प्रतापी शासक था। 1113 ई. में इसने 'अजयमेरु' (अजमेर) नगर बसाया तथा चाँदी एवं ताँबे के सिक्के चलाये जो 'अजयप्रिय द्रम्भ' कहलाये। कुछ मुद्राओं पर उसकी रानी सोमलवती का नाम भी अंकित मिलता है। अजयराज शैव मतावलम्बी होने के साथ–साथ एक धर्म–सहिष्णु शासक था। उसने जैन और वैष्णव धर्मावलम्बियों को सम्मान की दृष्टि से देखा। उसने नये नगर में जैन धर्मावलम्बियों को मन्दिर बनाने की अनुमति दी और पार्श्वनाथ के मन्दिर के लिए स्वर्ण कलश प्रदान किया।

अर्णोराज (1133 –1155 ई.) – अर्णोराज ने तुर्कों एवं मालवा के शासकों को परास्त किया, मगर गुजरात के शासक कुमारपाल चालुक्य से परास्त हुआ। इसने अजमेर में 'आनासागर झील' एवं पुष्कर में 'वराह मंदिर' का निर्माण करवाया। अर्णोराज शैव था, किन्तु उसमें अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति सहिष्णुता की भावना थी। उसने अजमेर में खतरगच्छ के अनुयायियों के लिए भूमिदान दिया। देवबोध और धर्मघोष उसके समय के प्रकाण्ड विद्वान थे जिनको उसने सम्मानित किया था। वैसे तो चालुक्यों के हाथों पराजय

से उसे कुछ मान–हानि उठानी पड़ी थी, फिर भी गजनवियों को परास्त कर तथा मालवा और हरियाणा अभियानों का नेतृत्व कर उसने अपने वंश के प्रभुत्व को नहीं घटने दिया।

विग्रहराज चतुर्थ (1158–1163 ई.) – विग्रहराज ने तोमरों को पराजित कर दिल्ली पर अधिकार किया। यह दिल्ली पर अधिकार करने वाला पहला चौहान शासक था। इसने गजनी के खुशरूशाह को भी परास्त किया। जयानक भट्ट ने इसे 'कवि बान्धव' की उपाधि दी। विग्रहराज ने हरकेलि और उसके दरबारी विद्वान सोमदेव ने ललित विग्रहराज नाटक की रचना की। इसने अजमेर में एक संस्कृत पाठशाला बनवाकर उस पर हरकेलि नाटक की पंक्तियां खुदवाई। कुतुबुद्दीन ऐबक ने इसे तुड़वाकर वहाँ 'ढाई दिन का झोंपड़ा' मस्जिद बनवाई। विग्रहराज ने बीसलपुर बसाकर वहाँ बीसलपुर झील बनवाई।

विग्रहराज चतुर्थ के मूल्यांकन में डॉ. दशरथ शर्मा लिखते हैं कि उसकी महत्ता निर्विवाद है, क्योंकि एक सेनाध्यक्ष के साथ–साथ वह एक विजेता, साहित्य का संरक्षक, अच्छा कवि और सूझ–बूझ वाला निर्माता था। पृथ्वीराज विजय का लेखक लिखता है कि जब विग्रहराज की मृत्यु हो गयी तो 'कविबान्धव' की उपाधि निरर्थक हो गयी, क्योंकि इस उपाधि को धारण करने की किसी में क्षमता नहीं रही थी। सोमदेव तो विग्रहराज को वीरों में ही नहीं वरन् विद्वानों में भी अग्रणी मानता था। ये केवल उसकी मिथ्या प्रशंसा नहीं है, हरकेलि नाटक से उसकी योग्यता आँकी जा सकती है। किलहोर्न ने भी उसकी विद्वत्ता की प्रशंसा करते हुए स्वीकार किया है कि वह उन हिन्दू शासकों में से एक व्यक्ति था जो कालिदास और भवभूति की होड़ कर सकता था। विग्रहराज का समय सपादलक्ष का स्वर्ण काल था।

पृथ्वीराज तृतीय (1177–1192 ई.) – शाकम्भरी के चौहान शासकों में सबसे प्रसिद्ध पृथ्वीराज तृतीय 11 वर्ष की आयु में शासक बना। 1182 ई. में इसने सतलज प्रदेश के भण्डानकों को परास्त किया। इसी वर्ष इसने महोबा के चन्देल शासक परमर्दीदेव को पराजित किया, जिसमें प्रसिद्ध वीर 'आल्हा–ऊदल' लड़ते हुए मारे गए। पृथ्वीराज ने कन्नौज के गहड़वाल शासक जयचन्द को परास्त किया एवं स्वयंवर के समय उसकी बेटी संयोगिता का अपहरण कर उससे विवाह कर लिया। तराइन के प्रथम युद्ध (1191 ई.) में तो गौरी को उसने पराजित किया, मगर 1192 ई. में तराइन के द्वितीय युद्ध में वह मुहम्मद गौरी से पराजित हुआ, जिससे चौहान राज्य का तो पतन हुआ ही, भारत में तुर्की शासन की नींव भी पड़ी।

पृथ्वीराज तृतीय वीर, विद्यानुरागी एवं गुणीजनों का सम्मान करने वाला था। पृथ्वीराज विजय का रचयिता जयानक, पृथ्वीराज रासो का लेखक चन्दबरदाई उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे।

संयोगिता–स्वयंवर कथा – कन्नौज के शासक जयचन्द ने राजसूय यज्ञ किया तथा अपनी पुत्री संयोगिता के विवाह के लिए स्वयंवर का आयोजन भी किया, जिसमें पृथ्वीराज को छोड़कर कई राजा, महाराजाओं को आमंत्रित किया गया था। इतना ही नहीं पृथ्वीराज को अपमानित करने के लिए जयचंद ने स्वयंवर–स्थल के बाहर द्वारपाल के रूप में पृथ्वीराज की मूर्ति रख दी। संयोगिता एवं पृथ्वीराज एक–दूसरे को मन से चाहते थे। अतः संयोगिता वरमाला लेकर एक–एक राजा, महाराजा को देखती हुई आगे बढ़ती जा रही थी। पृथ्वीराज को न पाकर वह मन ही मन बड़ी दुःखी थी किन्तु जब वह दरवाजे तक पहुँची तो उसे द्वारपाल के रूप में अपने प्रेमी की मूर्ति नजर आई। उसने माला उस मूर्ति के गले में डाल दी। उस समय तक पृथ्वीराज भी वहाँ पहुँच चुका था। उसने संयोगिता को वहाँ से अपने साथ लेकर अजमेर की ओर प्रस्थान किया और चौहान सैनिकों ने गहड़वालों को उसका पीछा करने से रोका। अजमेर पहुँचकर पृथ्वीराज ने संयोगिता से विवाह कर लिया, पर इस घटना से जयचंद व पृथ्वीराज के बीच शत्रुता और बढ़ गई।

संयोगिता–कथा की ऐतिहासिकता – इस कथा की सत्यता एवं ऐतिहासिकता के संबंध में इतिहासकार एक मत नहीं है। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसे कपोल कल्पना मानते हुए कहा है कि प्रबन्ध कोष, हम्मीर महाकाव्य, पृथ्वीराज प्रबन्ध एवं प्रबन्ध चिन्तामणि जैसे समकालीन ग्रन्थों में इस घटना का कोई जिक्र नहीं है। डॉ. रोमिला थापर एवं डॉ. आर. एस. त्रिपाठी ने भी इसे सही नहीं माना है।

समकालीन फारसी तवारीखों में इस घटना का वर्णन नहीं मिलता। किन्तु अबुल फजल ने इसका वर्णन अवश्य किया है। डॉ. दशरथ शर्मा ने बताया है कि हम्मीर महाकाव्य तथा रंभामंजरी में ढेर सारी गलतियां हैं तथा इनमें वर्णन न मिलने से सारी घटना को ही काल्पनिक मान लिया जाय यह उचित नहीं है। उन्होंने घटना की सत्यता को स्वीकार करते हुए बताया कि प्रेम जीवन का एक अंग है और वह सत्य एवं वास्तविक है। अतः यह घटना घटी हो तो कोई आश्चर्य नहीं। सी. वी. वैद्य एवं डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने भी इसे स्वीकार किया है।

इस प्रकार संयोगिता अपहरण की घटना में कोई संदेह नहीं रह जाता है। सदियों से चली आ रही इस कथा में समय के साथ उतार–चढ़ाव या अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों का आना स्वाभाविक है किन्तु इससे इस घटना की सत्यता पर शंका करना उचित प्रतीत नहीं होता।

रणथम्भौर का चौहान वंश व इस वंश के प्रतापी शासक

रणथम्भौर के चौहान वंश का संस्थापक गोविन्दराज (1194 ई.), पृथ्वीराज तृतीय का पुत्र था। उसके उत्तराधिकारी क्रमशः वाल्हण, प्रल्हादन और वीर नारायण थे। वीरनारायण का संघर्ष इल्तुतमिश से हुआ, जिसमें उसकी मृत्यु हो गई थी। उसके उत्तराधिकारी वागभट्ट ने भी दिल्ली से भेजे गये तुर्क अधिकारियों से अपने पैतृक राज्य को बचाया। उसके पुत्र जैत्रसिंह ने नासिरुद्दीन द्वारा भेजी गयी सेना को रणथम्भौर नहीं जीतने दिया, परन्तु उसे कर देने के लिए विवश होना पड़ा।

हम्मीर (1282–1301 ई.) – 1282 ई. में हम्मीर ने अपने राज्यारोहण के बाद दिग्विजय की नीति अपनाई। आबू, काठियावाड़, पुष्कर, चम्पा, धार आदि राज्यों को इसने अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया एवं मेवाड़ के शासक समरसिंह को परास्त किया। 1291 ई. में जलालुद्दीन खिलजी ने रणथम्भौर पर आक्रमण किया, मगर उसे सफलता नहीं मिली।

हम्मीर द्वारा मंगोल विद्रोहियों (मुहम्मदशाह व केहब्रू) को शरण देने से दिल्ली का सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी हम्मीर से नाराज हो गया। हम्मीर ने जब विद्रोहियों को लौटाने से इनकार कर दिया, तब 1299 ई. में उसे खिलजी के आक्रमण का सामना करना पड़ा। मगर तुर्क सेना को उसने पराजित कर दिया। 1301 ई. में अलाउद्दीन स्वयं सेना लेकर रणथम्भौर आया, मगर जब युद्ध में उसे सफलता नहीं मिली तो उसने छल–कपट का सहारा लिया। अलाउद्दीन ने हम्मीर के सेनानायक रणमल और रतिपाल को किला देने का लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। इनके विश्वासघात के कारण किले पर तुर्कों का अधिकार हो गया। हम्मीर लड़ता हुआ मारा गया और किले में हम्मीर की पत्नी रंगदेवी के नेतृत्व में महिलाओं ने जौहर कर लिया।

हम्मीर वीर, उदार एवं शरणागत की रक्षा करने वाला शासक था। नयनचंद्र सूरी के हम्मीर महाकाव्य, जोधराज के हम्मीर रासो एवं चन्द्रशेखर के हम्मीर हठ नामक ग्रंथों से हम्मीर के शौर्य की जानकारी मिलती है। आज भी जनमानस में हम्मीर के लिए यह दोहा प्रसिद्ध है –

सिंह–सवन सत्पुरूष–वचन, कदली फळै इक बार।

तिरिया–तेल हमीर–हठ, चढ़ै न दूजी बार।।

जालोर का चौहान वंश व इस वंश के प्रतापी शासक

जालोर मध्यकालीन इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। दिल्ली से गुजरात व मालवा जाने वाले मार्ग पर स्थित जालोर पर अधिकार स्थापित करना, दिल्ली के प्रत्येक शासक के लिए एक आवश्यक कार्य था। दिल्ली सल्तनत (1206–1526 ई.) के समय जालोर पर चौहानों का अधिकार था। जालोर के इस चौहान वंश का संस्थापक कीर्तिपाल था, जिसने 1181 ई. में इस राजवंश की नींव डाली थी।

कान्हड़देव (1305–1311 ई.) – कान्हड़देव जालौर के चौहान शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली था। अलाउद्दीन खिलजी की सेना के गुजरात आक्रमण के समय, रास्ता देने को लेकर कान्हड़देव एवं अलाउद्दीन खिलजी के मध्य विवाद हुआ। 1305 ई. में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने सेनानायक ऐन–उल–मुल्क मुल्तानी को सेना सहित जालोर भेजा। वह कान्हड़देव को समझा–बुझाकर दिल्ली ले आया। दिल्ली दरबार का माहौल कान्हड़देव के स्वाभिमान के विरुद्ध था। कान्हड़देव दिल्ली दरबार से चला आया, जिसके बाद कान्हड़देव व अलाउद्दीन के बीच संघर्ष हुआ। नैणसी ने युद्ध का कारण कान्हड़देव के पुत्र वीरमदेव द्वारा सुल्तान की पुत्री फिरोजा से विवाह करने से इन्कार करना बताया है। 1308 ई. में सुल्तान ने जालोर के शक्तिशाली किले सिवाना पर अधिकार कर लिया और उसका नाम 'खैराबाद' रखा तथा कमालुद्दीन गुर्ग को वहाँ का प्रतिनिधि नियुक्त किया। 1311 ई. में अलाउद्दीन ने जालोर पर घेरा डाल दिया, लेकिन सुल्तान को सफलता नहीं मिल सकी। अंत में कान्हड़देव के एक दहिया सरदार बीका के विश्वासघात के कारण दुर्ग पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया। कान्हड़देव लड़ता हुआ मारा गया और किले की महिलाओं ने जौहर किया। अलाउद्दीन ने जालोर जीतकर उसका नाम 'जलालाबाद' रख दिया।

आमेर का कच्छवाहा वंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक

कच्छवाहा अपनी उत्पत्ति राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश से मानते हैं। सूर्यमल्ल मीसण के अनुसार कूर्म नामक रघुवंशी शासक की संतति होने से ये कूर्मवंशीय कहलाने लगे और साधारण भाषा में उन्हें कच्छवाहा कहा जाने लगा। ढूंढाड़ प्रदेश में अपना राज्य स्थापित करने के लिए कच्छवाहों को मीणाओं तथा बडगूजरों से संघर्ष करना पड़ा। इनकी प्रथम राजधानी दौसा रही। कच्छवाहा प्रारंभ में चौहानों के सामंत थे। 1137 ई. में दुलहराय ने बडगूजरों को परास्त कर ढूंढाड़ में नवीन राज्य स्थापित किया। दुलहराय ने ही जमवारामगढ़ में मीणाओं को परास्त कर उसे अपनी राजधानी बनाया। 1207 ई. में कोकिलदेव ने आमेर में मीणाओं को परास्त कर उसे अपनी राजधानी बनाया।

भारमल (1547–1573 ई.) – भारमल बहुत ही कठिन परिस्थितियों में आमेर का शासक बना था। अपनी सत्ता के लिए उसे मजबूत सहारे की आवश्यकता थी और यह मजबूत सहारा उसे मुगल शासक अकबर के रूप में मिला। भारमल मुगल अधीनता स्वीकार करने वाला पहला राजपूत था। अकबर जनवरी, 1562 ई. में अजमेर की यात्रा पर आया था, अजमेर से लौटते समय 'सांभर' में भारमल ने 1562 ई. में अपनी पुत्री हरखाबाई (जिसे कालांतर में मरियम उज्जमानी नाम से जाना गया) का विवाह अकबर के साथ किया। जहाँगीर इसी हरखाबाई का पुत्र था। 1562 ई. में सांभर में ही अपने पुत्र भगवानदास और पौत्र मानसिंह सहित इसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली।

भगवानदास (1573–1589 ई.) – भगवानदास 1573 ई. में आमेर की गद्दी पर बैठा। इसने सरनल के युद्ध में अपनी वीरता का परिचय दिया। यह सात वर्ष तक पंजाब का सूबेदार रहा। इसने 1585 ई. में अपनी पुत्री मानबाई का विवाह जहाँगीर के साथ किया। खुसरो मानबाई व जहाँगीर का पुत्र था। 1589 ई. में लाहौर में भगवानदास की मृत्यु हुई।

मानसिंह (1589–1614 ई.) – मानसिंह केवल 12 वर्ष की आयु में ही मुगलों की सेवा में चला गया था। इसने अकबर एवं जहाँगीर दो मुगल सम्राटों की सेवा की। अकबर के रणथम्भौर अभियान में (1569 ई.) सुर्जन हाड़ा को मुगल अधीनता स्वीकार कराने में मानसिंह ने भूमिका निभाई। गुजरात अभियान के दौरान 1573 ई. में मानसिंह महाराणा प्रताप के पास संधि का दूसरा प्रस्ताव लेकर गया और 1576 ई. में हल्दीघाटी के युद्ध में अकबर की सेना का नेतृत्व किया। यह अकबर के नवरत्नों में सम्मिलित था। अकबर ने इसे 'फर्जन्द' (बेटा) की उपाधि व 7000 का मनसब दिया। 1589 ई. में जब यह बिहार का सूबेदार था, तो इसके पिता भगवानदास की मृत्यु हो गई और यह 1589 ई. में आमेर का शासक बना। मानसिंह ने 1592 ई. में उड़ीसा जीतकर पहली बार उसे मुगल साम्राज्य का अंग बनाया। मानसिंह की मृत्यु 1614 ई. में इलिचपुर में हुई। मानसिंह विद्वानों का आश्रयदाता था। इसके समय में मान–चरित्र महाराजकोष नामक

ग्रंथ रचे गये। इसी के समय मुरारीदान ने मान प्रकाश व जगन्नाथ ने मानसिंह कीर्ति मुक्तावली की रचना की। मानसिंह के समय ही रानी कंकावती ने अपने पुत्र जगतसिंह की स्मृति में जगत शिरोमणी मंदिर का निर्माण करवाया था।

मिर्जा राजा जयसिंह (1621–1667 ई.) – 11 वर्ष की आयु में 1621 ई. में जयसिंह आमेर का शासक बना। इसे तीन मुगल सम्राटों जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब की सेवा में रहने का अवसर प्राप्त हुआ। 1623 ई. में इसे मलिक अम्बर के विरुद्ध दक्षिण में भेजा गया, जहाँ इसने अद्‌भुत साहस और वीरता का परिचय दिया। 1629 ई. में इसने उत्तर–पश्चिमी सीमांत में उजबेगों के विद्रोह को दबाया। 1630 ई. में जयसिंह ने खान–ए–जहाँ लोदी के विद्रोह को दबाया। यह 1636 ई. में शाहजहाँ के साथ बीजापुर और गोलकुण्डा अभियान पर दक्षिण भारत गया।

1637 ई. में जयसिंह को मिर्जा राजा की पदवी देकर शुजा के साथ कंधार भेजा गया। उत्तराधिकार युद्ध के समय इसे शुजा के विरुद्ध भेजा गया, जहाँ बहादुरपुर के युद्ध (1658 ई.) में इसने शुजा को पराजित किया। उत्तराधिकार युद्ध के अंत में इसने औरंगजेब का पक्ष लिया। जयसिंह की सैनिक योग्यता और कूटनीति से प्रभावित होकर औरंगजेब ने इसे दक्षिण में मराठों के विरुद्ध भेजा। दक्षिण में जयसिंह ने अपनी कूटनीति से शिवाजी को अकेला कर दिया और पुरंदर को जीतने में सफल रहा। जयसिंह ने शिवाजी के विरुद्ध अभियान पर जाते समय कहा था, कि हम शिवा को वृत्त के केन्द्र की तरह घेर लेंगे। जयसिंह की कुशलता का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है, कि महान मराठा शासक शिवाजी को वह रोकने में सफल रहा, जिसने अफजल खाँ जैसे सेनानायक को पराजित किया था। अंत में शिवाजी और जयसिंह के मध्य संधि हो गयी जो पुरंदर की संधि (1665 ई.) के नाम से जानी जाती है। पुरंदर की संधि जयसिंह की दूरदर्शिता एवं शक्ति की पराकाष्ठा थी। वह अनेक भाषाओं का ज्ञाता एवं विद्वानों का सम्मान करने वाला था। प्रसिद्ध कवि बिहारी का वह आश्रयदाता था। बिहारी ने बिहारी सतसई नामक ग्रंथ की रचना की थी।

सवाई जयसिंह (1700–1743 ई.) – 3 दिसम्बर, 1688 को जन्मे जयसिंह में जयसिंह प्रथम की तुलना में वीरता और वाक्‌पटुता को अधिक मात्रा में पाकर औरंगजेब ने इसका नाम सवाई जयसिंह रख दिया था, क्योंकि वह जयसिंह प्रथम से बढ़कर (सवाया) था। इसी समय से जयपुर के सभी राजा अपने नाम के पहले 'सवाई' पद का प्रयोग करने लगे। 1700 ई. में जयसिंह ने आमेर का राज्य भार संभाला। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद हुए उत्तराधिकार युद्ध में जयसिंह ने आजम का पक्ष लिया, मगर जाजऊ के युद्ध में मुअज्जम विजयी रहा। अतः मुअज्जम, जो बहादुरशाह के नाम से शासक बना, ने आमेर पहुँचकर विजयसिंह को शासक घोषित कर दिया तथा आमेर का नाम मोमिनाबाद रख दिया।

मेवाड़ की सहायता से जयसिंह ने आमेर पुनः प्राप्त कर लिया, मुगल सम्राट ने भी इसे आमेर का शासक स्वीकार कर लिया। फर्रुखसियर ने 1713 ई. में जयसिंह को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया। जयसिंह के प्रयासों से 17 जुलाई, 1734 को राजपूत राजाओं का हुरड़ा में सम्मेलन बुलाया गया ताकि संगठित होकर मराठों का मुकाबला किया जा सके। किंतु आपसी अविश्वास से यह योजना कार्यरूप न ले सकी। सवाई जयसिंह ने 1729 ई. में बूंदी के मामले में हस्तक्षेप किया, जिससे मराठों को राजस्थान की आंतरिक राजनीति में हस्तक्षेप करने का अवसर मिला। जयसिंह ने मराठों एवं मुगल सम्राट में समझौता कराने के लिए मध्यस्थता की। 1743 ई. में जयसिंह की मृत्यु हो गई। इसने सात मुगल शासकों का शासन काल देखा था।

1725 ई. में सवाई जयसिंह ने नक्षत्रों की शुद्ध सारणी बनवायी और उसका नाम जीज मोहम्मदशाही रखा। उसने जयसिंह कारिका नामक ज्योतिष ग्रंथ की रचना भी की। जयसिंह ने जयपुर, दिल्ली, मथुरा, उज्जैन और बनारस में वेधशालाएँ बनवाईं। जयपुर की वेधशाला सबसे बड़ी है, जिसे जंतर–मंतर कहा जाता है। जुलाई 2010 में इसे यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर सूची में शामिल किया गया है। जयसिंह ने एक बंगाली वास्तुशास्त्री विद्याधर से एक नगर का नक्शा बनवाकर 1727 ई. में आयताकार खण्डों वाले एक

नगर का निर्माण किया, जो आज जयपुर के नाम से प्रसिद्ध है। वह अंतिम हिंदू नरेश था, जिसने अश्वमेध यज्ञ संपन्न करवाया। 1734 ई. में इसने जयपुर में नाहरगढ़ किले का निर्माण करवाया। इसने जयगढ़ में जयबाण तोप का निर्माण करवाया। सवाई जयसिंह ने चन्द्रमहल, सिसोदिया रानी का महल व जलमहल का निर्माण करवाया। सवाई जयसिंह पहला राजपूत हिंदू शासक था, जिसने सती प्रथा की रोकथाम हेतु प्रयास किये तथा विधवा विवाह को मान्यता प्रदान करने हेतु नियम बनाये।

जैसलमेर का भाटी राजवंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक

जैसलमेर का भाटी राजवंश स्वयं को चन्द्रवंशीय यादवों से संबंधित करता है और ये अपना संबंध श्रीकृष्ण से जोड़ते हैं। विजयराज के शासनकाल से भाटियों का नियमित इतिहास मिलता है। विजयराज का पुत्र भोज हुआ, वह गौरियों के विरुद्ध लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। इसका उत्तराधिकारी जैसल हुआ, जिसने जैसलमेर की नींव रखी।

जैसलमेर के किले का इतिहास 'ढाई साके' के लिए प्रसिद्ध है। पहला साका, जैसलमेर के शासक मूलराज के समय हुआ, जब अलाउद्दीन खिलजी ने जैसलमेर पर आक्रमण किया था। दूसरा साका, रावल दूदा के समय हुआ, जब फिरोजशाह तुगलक ने जैसलमेर पर आक्रमण किया था। तीसरा अर्द्ध साका, 1550 ई. में हुआ, जब जैसलमेर के शासक लूणकरण ने कंधार के शासक अमीर अली को शरण दी थी और अमीर अली ने विश्वासघात करते हुए, लूणकरण पर आक्रमण कर दिया, लूणकरण अपने साथियों के साथ लड़ता हुआ मारा गया, किंतु अंतिम रूप से भाटी विजयी रहे, अतः जौहर नहीं हुआ। यह घटना 'अर्द्ध साका' कही जाती है।

अकबर के नागौर दरबार (1570 ई.) में हरराय भाटी ने अकबर की अधीनता स्वीकार की तथा उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह किया। भाटी वंश का अंतिम शासक जवाहर सिंह था।

भरतपुर का जाट राजवंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक

जाट एक कृषक जाति है, जिसका एक राजनैतिक शक्ति के रूप में उत्थान औरंगजेब के शासनकाल में हुआ। 1669 ई. में मथुरा क्षेत्र के जाटों ने अपने नेता गोकुल के नेतृत्व में औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। गोकुल को मार दिया गया, किंतु उसके द्वारा शुरू किये गये संघर्ष को राजाराम ने जारी रखा। 1688 ई. में राजाराम की मृत्यु के बाद उसके भतीजे चूड़ामन ने जाटों को नेतृत्व प्रदान किया।

चूड़ामन (1695–1721 ई.) – भरतपुर के स्वतंत्र जाट राज्य का संस्थापक चूड़ामन था। चूड़ामन ने मथुरा एवं आगरा के मुगल इलाकों में धावे बोलकर मुगल शक्ति को झकझोर दिया। मुगल सम्राट ने कच्छवाहा नरेश बिशनसिंह को चूड़ामन का दमन करने के लिए भेजा, पर उसे पूर्ण सफलता नहीं मिली। धीरे–धीरे चूड़ामन ने शक्ति प्राप्त की ओर थून नामक स्थान पर किला बनाकर अपना राज्य स्थापित किया।

बदन सिंह (1723–1756 ई.) – बदनसिंह जाट नेता चूड़ामन का उत्तराधिकारी था। जयसिंह ने इसे ब्रजराज की उपाधि एवं जागीरें प्रदान कीं। बदनसिंह ने डीग को अपना निवास बनाया और वहाँ एक सुदृढ़ गढ़ का निर्माण कर सुंदर जलमहल बनाए और बाग–बगीचे लगाए। डीग के अतिरिक्त बदन सिंह ने कुम्हेर, भरतपुर व वैर में भी दुर्गों का निर्माण करवाया था। बदन सिंह शांतिप्रिय शासक था, उसने जाट–कच्छवाहा मैत्री कर अपने राज्य का विस्तार किया। 1756 ई. में डीग में उसकी मृत्यु हो गई।

महाराज सूरजमल (1756–1763 ई.) – महाराज सूरजमल बदनसिंह (1723–56 ई.) का पुत्र और उत्तराधिकारी था। सूरजमल ने भरतपुर में नवीन गढ़ का निर्माण करवाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। इसने जयपुर के साथ मैत्री और सहयोग की नीति का अनुसरण किया। जयसिंह की मृत्यु के बाद जयपुर

की गद्दी के लिये हुए उत्तराधिकार युद्ध (1743–50 ई.) में इसने ईश्वरीसिंह के पक्ष में युद्ध किया। 1760 ई. में यह अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध मराठों के पक्ष में लड़ने गया, मगर मराठा सेनानायक सदाशिवराव भाऊ के व्यवहार से खिन्न होकर यह भरतपुर लौट आया। पानीपत की पराजय के बाद मराठों को सूरजमल ने शरण एवं सहायता दी। 1763 ई. में रूहेलों के विरुद्ध युद्ध में इसकी मृत्यु हो गई। इस युद्ध में सूरजमल का प्रतिद्वंद्वी नजीब खान था, जिसने सूरजमल की मृत्यु की पुख्ता पुष्टि होने पर ही विश्वास किया था। यह सूरजमल का अपने शत्रुओं के मन में खौफ का एक बड़ा उदाहरण है।

महाराज सूरजमल

महाराज सूरजमल के बारे में लिखते हुए कालिकारंजन कानूनगो ने लिखा है, ''उसमें अपनी जाति के सभी गुण–शक्ति, साहस, चतुराई, निष्ठा और कभी पराजय स्वीकार न करने वाली अदम्य भावना, विद्यमान थे।

करौली का यादव वंश

करौली का राजवंश स्वयं को मथुरा की शूरसेन शाखा से संबंधित करते हुए अपना संबंध श्रीकृष्ण से जोड़ता है। करौली के यादव वंश की स्थापना विजयपाल द्वारा 1040 ई. में की गई। इसने बयाना (भरतपुर) को अपनी राजधानी बनाया। 1348 ई. में अर्जुनपाल ने कल्याणपुर बसाया, जिसे वर्तमान में करौली के नाम से जाना जाता है। धर्मपाल द्वितीय ने 1650 ई. में करौली को अपनी राजधानी बनाया। गोपालपाल ने करौली में 'मदनमोहन मंदिर' का निर्माण करवाया।

महाराजा हरबक्षपाल ने 9 नवम्बर, 1817 को अंग्रेजों से संधि कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। 1852 ई. में नरसिंहपाल की मृत्यु के बाद डलहौजी ने करौली का विलय कंपनी राज्य में करने के लिए बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स से सिफारिश की, लेकिन डायरेक्टर्स ने इसकी अनुमति नहीं दी। डेढ़ वर्ष तक विचार–विमर्श के बाद मदनपाल (1854–1869 ई.) को करौली का शासक बनाया गया।

परमार वंश

परमार का शाब्दिक अर्थ शत्रु को मारने वाला होता है। प्रारंभ में परमारों का शासन आबू के आस–पास के क्षेत्रों तक ही सीमित था। प्रतिहारों की शक्ति के कम होने के उपरांत परमारों की राजनीतिक शक्ति में वृद्धि हुई।

आबू के परमार – आबू के परमार वंश का संस्थापक 'धूमराज' था, लेकिन इनकी वंशावली उत्पलराज से प्रारंभ होती है। पड़ौसी होने के कारण आबू के परमारों का गुजरात के शासकों से लगातार संघर्ष चलता रहा। गुजरात के शासक मूलराज सोलंकी से पराजित होने के कारण आबू के शासक धरणीवराह को राष्ट्रकूट धवल की शरण लेनी पड़ी। लेकिन कुछ समय बाद धरणीवराह ने आबू पर पुनः अधिकार कर लिया।

विक्रमदेव का प्रपौत्र धारावर्ष (1163–1219 ई.) आबू के परमारों का शक्तिशाली शासक था। इसने मोहम्मद गौरी के विरुद्ध युद्ध में गुजरात की सेना का सेनापतित्व किया। उसने सोलंकियों की अधीनता का जुआ उतार फेंका। उसने नाड़ौल के चौहानों से भी अच्छे संबंध रखे। उसके पुत्र सोमसिंह के शासनकाल में तेजपाल ने आबू के देलवाड़ा गाँव में 'लूणवसही' नामक नेमिनाथ का मंदिर बनवाया। 1311 ई. के लगभग नाड़ौल के चौहान शासक राव लूम्बा ने परमारों की राजधानी चन्द्रावती पर अधिकार कर लिया और वहाँ चौहान प्रभुत्व की स्थापना कर दी।

मराठों का राजस्थान में प्रवेश

औरंगजेब की मृत्यु (1707 ई.) के बाद मुगल साम्राज्य धीरे–धीरे पतन की ओर बढ़ रहा था। इसी

दौरान पेशवाओं के कुशल नेतृत्व में मराठे अपनी ताकत बढ़ा रहे थे। यद्यपि गुजरात और मालवा – दोनों पर ही मराठों का प्रभाव कायम होता जा रहा था, किन्तु अभी तक किसी मराठा सेनानायक ने राजपूताना में प्रवेश नहीं किया था। पर यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं रही, पारस्परिक गृहकलह के कारण राजपूताना में भी मराठों का प्रवेश हो गया। राजस्थान में पारस्परिक गृह–कलह के मुख्य तीन केन्द्र बन गये थे – बूंदी, जयपुर और जोधपुर।

बूंदी–उत्तराधिकार संघर्ष – सवाई जयसिंह अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता था। उसके राज्य की सीमा पर स्थित बूंदी राज्य का राजा बुद्धसिंह, जयसिंह का बहनोई था। 1727 ई. तक साले–बहनोई में घनिष्ठ सम्बन्ध बने रहे, परन्तु फिर अचानक दोनों के सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये और अन्त में बिल्कुल टूट गये और दोनों एक दूसरे के विरोधी बन गये। महाराव बुद्धसिंह जयसिंह की बहिन (कच्छवाही रानी) से घृणा करने लगा और अपनी चूण्डावत रानी के इशारे पर काम करने लगा। कुछ दिनों बाद बुद्धसिंह ने कच्छवाही रानी से उत्पन्न पुत्र भवानीसिंह को अपना पुत्र मानने से भी इन्कार कर दिया। इस पर जयसिंह का क्रोधित होना स्वाभाविक ही था। अतः उसने बुद्धसिंह को सिंहासनच्युत करने का निश्चय कर लिया। जब महाराव बुद्धसिंह किसी कारणवश अपनी राजधानी से दूर गया हुआ था तो उसकी अनुपस्थिति में जयसिंह ने अपनी सेना भेजकर बूंदी दुर्ग पर अधिकार कर लिया तथा करवड़ के जागीरदार हाड़ा सालिमसिंह के द्वितीय पुत्र दलेलसिंह को 1730 ई. में बूंदी की गद्दी पर बैठा दिया। जयसिंह की इस कार्यवाही ने कुछ ही वर्षों बाद मराठों को राजपूताना की राजनीति में हस्तक्षेप करने का मौका दे दिया। 1732 ई. में जयसिंह ने अपनी पुत्री कृष्णाकुमारी का विवाह दलेलसिंह के साथ कर दिया। जयसिंह ने दलेल सिंह का रास्ता साफ करने हेतु भवानी सिंह की हत्या भी करवा दी थी। इस घटना ने कच्छवाही रानी को जयसिंह का विरोधी बना दिया और उसने मराठों से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। मराठे इस अवसर की तलाश में ही बैठे थे।

अतः 18 अप्रैल, 1734 ई. को मल्हार राव होल्कर और राणोजी सिन्धिया के नेतृत्व में मराठा सेना ने बूंदी पर चढ़ाई कर दी। चार दिन के संघर्ष के बाद 22 अप्रैल को बूंदी पर मराठों का अधिकार हो गया। बूंदी में महाराव उम्मेदसिंह (यह बुद्धसिंह का पुत्र था, इस समय बुद्धसिंह अफीम व शराब की मस्ती में अपना जीवन व्यतीत कर रहा था।) का शासन स्थापित हो गया। अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए कच्छवाही रानी ने होल्कर के राखी बाँधकर उसे अपना भाई बनाया। चूँकि उम्मेदसिंह अभी छोटा था अतः प्रतापसिंह को शासन कार्य सौंपा गया। प्रतापसिंह दलेल सिंह का बड़ा भाई था।

हुरड़ा सम्मेलन – मालवा, गुजरात और बुन्देलखण्ड में मराठों को रोकने में मुगल शासन की असफलता तथा राजपूत शासकों के आन्तरिक झगड़ों में मराठों के इस प्रथम हस्तक्षेप ने राजस्थान (यद्यपि यह नाम उस समय प्रचलन में नहीं था) के समस्त विचारशील शासकों की आँखें खोल दीं।

मराठों का सफलतापूर्वक सामना कर सकने के आवश्यक उपाय सोच निकालने के लिए सवाई जयसिंह ने राजस्थान के सारे शासकों को हुरड़ा में एकत्रित करने का प्रयास किया। 16 जुलाई, 1734 ई. को पूर्व–निश्चित स्थान हुरड़ा में सम्मेलन आरम्भ हुआ, जिसकी अध्यक्षता मेवाड़ के नये महाराणा जगतसिंह द्वितीय ने की। सम्मेलन में सवाई जयसिंह के अलावा, जोधपुर का अभयसिंह, नागौर का बख्तसिंह, बीकानेर का जोरावरसिंह, कोटा का दुर्जनसाल, बूंदी का दलेलसिंह, करौली का गोपालदास, किशनगढ़ का राजसिंह आदि छोटे–बड़े नरेश उपस्थित हुए। विचार–विमर्श के बाद 17 जुलाई को सभी शासकों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये। समझौते के अनुसार सभी शासक एकता बनाये रखेंगे, एक का अपमान सभी का अपमान समझा जायेगा। कोई राज्य, दूसरे राज्य के विद्रोही को अपने राज्य में शरण नहीं देगा। मराठों के विरुद्ध वर्षा ऋतु के बाद कार्यवाही आरम्भ की जायेगी जिसके लिए सभी शासक अपनी सेनाओं के साथ रामपुरा में एकत्रित होंगे और यदि कोई शासक किसी कारणवश उपस्थित होने में असमर्थ होगा तो वह अपने पुत्र अथवा भाई को भेजेगा। किंतु इस सम्मेलन की योजनाएं कभी धरातल पर नहीं उतर पाई, प्रत्येक शासक के अपने स्वार्थ थे, इसलिए उनमें एकजुटता स्थापित होना

असम्भव था। हुरड़ा सम्मेलन इस प्रकार एक असफल प्रयास साबित हुआ।

जयपुर का उत्तराधिकार संघर्ष – 1708 ई. में सवाई जयसिंह ने मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह द्वितीय की पुत्री चन्द्रकुंवर बाई से विवाह किया था। विवाह से पूर्व जयसिंह ने एक इकरारनामे पर हस्ताक्षर किये थे, जिसमें मेवाड़ की राजकुमारी से उत्पन्न पुत्र को ही, चाहे वह छोटा ही क्यों न हो, जयपुर के राजसिंहासन पर बैठाने की बात कही गयी थी। तत्पश्चात् 1722 ई. में जयसिंह की खींची रानी सूरजकुंवर से एक पुत्र, ईश्वरीसिंह उत्पन्न हुआ और 1728 ई. में मेवाड़ की राजकुमारी चन्द्रकुँवर से एक पुत्र, माधोसिंह उत्पन्न हुआ। अतः जयसिंह के बाद माधोसिंह और ईश्वरीसिंह के बीच उत्तराधिकार का संघर्ष निश्चित हो गया।

सितम्बर, 1743 ई. में सवाई जयसिंह की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह गद्दी पर बैठा। किंतु माधोसिंह ने 1708 ई. के इकरारनामे के आधार पर जयपुर राज्य की गद्दी का दावा किया। इस प्रकार ईश्वरीसिंह और माधोसिंह में गृह–कलह आरम्भ हो गया। दोनों पक्षों की ओर से मराठों से सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न आरम्भ हो गये। माधोसिंह की ओर से मल्हारराव होल्कर से सैनिक सहायता प्राप्त की गयी और इसके बदले में होल्कर को 20 लाख रुपये देने का आश्वासन दिया। उधर ईश्वरीसिंह ने राणोजी सिन्धिया से सहायता प्राप्त कर ली। फरवरी 1745 ई. में माधोसिंह ने जयपुर पर चढ़ाई कर दी, किन्तु ईश्वरी सिंह ने अपने मराठा साथियों की सहायता से माधोसिंह और उसके सहयोगियों को परास्त कर खदेड़ दिया। माधोसिंह ने एक बार फिर मल्हारराव से सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिए उन्होंने एक प्रतिनिधि को कालपी भेजा और सैनिक सहायता के लिए उसे दो लाख रुपये देने का वचन दिया। मल्हारराव ने अपने पुत्र खांडेराव को एक हजार सवारों के साथ इन तीनों राजपूतों की सहायता करने भेजा। फलस्वरूप 1 मार्च, 1747 ई. को दोनों पक्षों के बीच राजमहल नामक स्थान पर पुनः भीषण युद्ध हुआ। राजमहल के इस युद्ध में ईश्वरीसिंह विजयी हुआ।

राजमहल के युद्ध तक पेशवा का बहुत–कुछ झुकाव ईश्वरीसिंह की ओर था, किन्तु राजमहल के युद्ध के बाद जब महाराणा जगत सिंह (मेवाड़ का शासक) की ओर से अधिक रुपया देने का लालच दिया गया, तब ऋण भार से दबे हुए पेशवा ने ईश्वरीसिंह का साथ छोड़कर माधोसिंह का पक्ष ले लिया। इसके बाद बगरू नामक स्थान पर मराठों के साथ ईश्वरीसिंह की मुठभेड़ हुई। छः दिनों के युद्ध में ईश्वरीसिंह पराजित हुआ (यद्यपि इस समय जाट शासक सूरजमल ने ईश्वरी सिंह की तरफ से लड़ते हुए बड़े साहस का परिचय दिया था) और उसे माधोसिंह को चार परगने देने, उम्मेदसिंह को बूंदी का राज्य लौटाने तथा मराठों को भारी धनराशि देने का वायदा करने को विवश होना पड़ा।

बगरू के युद्ध (अगस्त, 1748) के बाद ईश्वरीसिंह ने जो रुपया मराठों को देने का वायदा किया था, वह उन्हें नहीं दे सका। होल्कर इस धन की वसूली हेतु जयपुर की ओर बढ़ा, मार्ग में उससे जयपुर का राजदूत 2 लाख रुपयों के साथ मिला, पर होल्कर इस राशि से खुश न था, उसने जयपुर की ओर बढ़ना जारी रखा। जयपुर के राजदूत ने लौटकर जब ईश्वरीसिंह को यह सूचना दी तो ईश्वरीसिंह बड़ा भयभीत हुआ, क्योंकि मराठों को देने के लिए उसके पास रकम नहीं थी। तब निराश होकर 13 दिसम्बर, 1750 ई. को ईश्वरी सिंह ने आत्महत्या कर सारे राजनैतिक जंजालों से अपने को आजाद कर लिया।

अब होल्कर ने माधोसिंह को बुलवाकर उसे जयपुर की गद्दी पर बैठाया। माधोसिंह के गद्दी पर बैठते ही मराठों ने उसके सामने धन संबंधी अपनी लम्बी–चौड़ी मांग रखी, माधोसिंह मराठों को सबक सिखाना चाहता था। 10 जनवरी, 1751 ई. को उसे एक सुनहरा अवसर मिल गया। इस दिन लगभग चार हजार मराठों ने नवनिर्मित जयपुर नगर के कलात्मक मन्दिरों व बाजारों को देखने के लिए नगर में प्रवेश किया। दोपहर में माधोसिंह ने नगर के सभी द्वार बन्द करवा दिये और अचानक राजपूत सैनिकों और नागरिकों ने मराठों का कत्लेआम शुरू कर दिया। राजस्थान की राजनीति में राजपूत–मराठा संघर्ष की एक नयी उलझन यहीं से आरम्भ हुई, जो आगे चलकर इन दोनों जातियों के साथ–साथ राजस्थान के लिए भी घातक सिद्ध हुई।

तूंगा का युद्ध

जयपुर राज्य और मराठों के मध्य चौथ को लेकर बार–बार विवाद होता था। फलस्वरूप मराठे महादजी सिंधिया के नेतृत्व में जयपुर राज्य में लूटमार मचाया करते थे। मराठों की इन हरकतों से परेशान जयपुर का तत्कालीन शासक प्रतापसिंह इनसे मुक्ति का प्रयास कर रहा था।

प्रतापसिंह ने मराठों के विरुद्ध जोधपुर महाराजा विजयसिंह से गठबंधन किया तथा शिवपुर व करौली के शासकों ने भी इस संघ को सैनिक सहयोग दिया। इनके अतिरिक्त महादजी का साथी मुगल फौजदार मोहम्मद बेग हमदानी भी राजपूतों के साथ हो गया था। अतः 28 जुलाई, 1787 को लालसोट के पास तूंगा नामक स्थान पर मराठों (महादजी सिंधिया) और 'राठौड़ कच्छवाहा गठबंधन' की सेनाओं के मध्य युद्ध हुआ। भंयकर रक्तपात के बाद भी युद्ध अनिर्णायक रहा। महादजी पीछे हट गया और राजपूत सेना का पलड़ा भारी रहा।

तूंगा के युद्ध के बाद भी मराठे राजपूत राज्यों पर अपना प्रभुत्व छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। अतः मराठों व राजपूतों के मध्य 20 जून, 1790 को पाटन का युद्ध हुआ जिसमें मराठा सेना को निर्णायक विजय मिली। राजपूत सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया।

जयपुर शासक प्रतापसिंह ने मराठों से मुक्ति का एक प्रयास और किया। उसने जोधपुर की सहायता से 16 अप्रेल, 1800 को मालपुरा में पुनः मराठों से युद्ध किया। किंतु इस बार भी विजय मराठों के हाथ ही लगी। अतः जयपुर राज्य को पुनः मराठों से संधि करनी पड़ी।

कृष्णाकुमारी विवाद

मेवाड़ की राजकुमारी कृष्णाकुमारी से विवाह को लेकर जयपुर के शासक जगतसिंह और जोधपुर के शासक मानसिंह के मध्य युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी। कृष्णाकुमारी मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह की पुत्री थी, जिसकी सगाई मारवाड़ के शासक भीमसिंह के साथ तय हुई थी, किंतु विवाह से पूर्व ही भीमसिंह की मृत्यु हो गई। भीमसिंह की मृत्यु के बाद मेवाड़ के शासक भीमसिंह ने कृष्णाकुमारी का रिश्ता जयपुर के शासक जगतसिंह के साथ तय कर दिया, पर इस रिश्ते को मारवाड़ के नये शासक मानसिंह ने मारवाड़ का अपमान माना और मानसिंह ने मेवाड़ पर आक्रमण का निश्चय किया। इस घटनाक्रम के कारण एक बार पुनः मराठों एवं अमीर खाँ पिण्डारी को मेवाड़ व मारवाड़ की आन्तरिक स्थिति में हस्तक्षेप का अवसर प्राप्त हुआ। मारवाड़ के शासक मानसिंह का पक्ष लेते हुए अमीर खाँ पिण्डारी ने मेवाड़ में डेरा डाल दिया। अमीर खाँ पिण्डारी ने कृष्णाकुमारी की शादी मानसिंह से करने या कृष्णाकुमारी की हत्या करने का प्रस्ताव रखा और उसकी बात नहीं मानने पर मेवाड़ को उजाड़ने की धमकी दी। अंत में 21 जुलाई 1810 को कृष्णाकुमारी के जीवन की समाप्ति के साथ ही इस विवाद का पटाक्षेप हो पाया। राजस्थान में मराठा हस्तक्षेप का यह सबसे काला अध्याय था।

जोधपुर का उत्तराधिकार संघर्ष

राजस्थान में सबसे महत्त्वपूर्ण उलझन जोधपुर राज्य के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर उत्पन्न हुई थी और वह कई वर्षों तक चलती रही। जोधपुर के महाराजा अभयसिंह का भाई बख्तसिंह, अभयसिंह को गद्दी से हटाकर कर स्वयं जोधपुर का शासक बनना चाहता था। जून, 1749 ई. में अभयसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र रामसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठा। नवम्बर, 1750 ई. में बख्तसिंह ने रामसिंह को परास्त कर उससे जोधपुर की गद्दी हथिया ली। रामसिंह भागकर जयपुर आया और माधोसिंह से शरण प्राप्त कर मराठों से सहायता प्राप्त करने का प्रयास करने लगा। 1752 ई. में जब बख्तसिंह ने अजमेर पर अधिकार कर लिया तब उसका विरोध करने के लिए मराठों को एक नया कारण मिल गया, क्योंकि मराठे स्वयं अजमेर पर अधिकार करना चाहते थे।

21 सितम्बर, 1752 ई. को बख्तसिंह की मृत्यु हो गयी, तब उसका पुत्र विजयसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठा। उधर रामसिंह जोधपुर की गद्दी प्राप्त करने हेतु मराठों से सहायता प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था। अतः जून, 1753 ई. में रघुनाथराव ने रामसिंह को पुनः जोधपुर की गद्दी पर बैठाने के लिए जयप्पा सिन्धिया को जोधपुर पर आक्रमण करने भेजा। 15 सितम्बर, 1753 ई. को मेड़ता के पास दोनों पक्षों में भीषण युद्ध हुआ, जिसमें विजयसिंह परास्त होकर नागौर की तरफ भागा और नागौर दुर्ग में शरण ली। विजयसिंह मराठों से लम्बे समय तक मुकाबले की स्थिति में न था। वह उनसे संधि करने को विवश हो गया, फरवरी 1756 में इनके बीच संधि हुई। इस सन्धि की शर्ते इस प्रकार थीं – (1) अजमेर और गढ़ बीटली (तारागढ़) मराठों के अधिकार में रहेंगे। (2) जालोर सहित आधा मारवाड़ जिसमें साम्भर, मारोठ, सोजत, परबतसर और केकड़ी के 84 गाँव सम्मिलित थे, पर रामसिंह का अधिकार मान लिया गया और जोधपुर, नागौर तथा मेड़ता पर विजयसिंह का प्रभुत्व मान लिया गया। (3) विजयसिंह ने युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में 50 लाख रुपये मराठों को देना स्वीकार किया जिसमें 25 लाख प्रथम वर्ष में और शेष राशि आगामी दो वर्षों में दो किश्तों में देनी थी। (4) रामसिंह ने अपनी सहायता के बदले मराठों को 5 लाख रुपये देना स्वीकार किया। (5) जोधपुर राज्य डेढ़ लाख रुपये वार्षिक कर के रूप में मराठों को देगा। (6) रामसिंह द्वारा विजयसिंह की सीमा का अतिक्रमण करने पर विजयसिंह सैनिक कार्यवाही के लिये स्वतन्त्र था।

राजस्थान के उपर्युक्त प्रमुख राज्यों के साथ–साथ लगभग सभी राज्यों में मराठों का प्रवेश और उनका हस्तक्षेप आरम्भ हो गया था। केवल बीकानेर और जैसलमेर ऐसे राज्य थे जो मराठों की लूटमार से बचे रहे। शेष सम्पूर्ण राजस्थान पर धीरे–धीरे मराठों का वर्चस्व स्थापित हो गया। आगे चलकर मराठों के सहयोगी रहे पिण्डारियों ने भी अपने स्वतन्त्र दल संगठित कर राजस्थान में लूटमार आरम्भ कर दी। राजस्थान के राज्य कभी भी अधिक सम्पन्न न रहे और अब तो उनकी आर्थिक दशा अत्यंत खराब हो गई थी।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. कालीबंगा राजस्थान के किस जिले में स्थित है?
   (अ) सीकर (ब) जयपुर
   (स) श्रीगंगानगर (द) हनुमानगढ़
2. राजपूतों की अग्निकुंड से उत्पत्ति का सिद्धांत किसने दिया था?
   (अ) चंदरबरदाई (ब) अमीर खुसरो
   (स) चंद्रशेखर (द) बरनी
3. पद्मिनी किस शासक की पत्नी थी?
   (अ) सांगा (ब) रतन सिंह
   (स) राज सिंह (द) मानसिंह
4. पृथ्वीराज तृतीय ने किस वर्ष महोबा के चंदेल शासक को परास्त किया था?
   (अ) 1181 ई. (ब) 1182 ई.
   (स) 1191 ई. (द) 1192 ई.
5. कृष्णा कुमारी किस राज्य की राजकुमारी थी?
   (अ) मेवाड़ (ब) जयपुर
   (स) मारवाड़ (द) बीकानेर

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. गणेश्वर सभ्यता किस जिले में तथा किस नदी के किनारे अवस्थित है?
2. राजपूतों को विदेशी आक्रमणकारी किसने स्वीकार किया है?
3. राजस्थान के चार उत्तर पाषाणकालीन स्थलों के नाम लिखिये?
4. महाभारत काल में मत्स्य जनपद का शासक कौन था?
5. अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय चित्तौड़ का शासक कौन था?
6. राणा सांगा की समाधि कहां स्थित है?
7. दिवेर का युद्ध कब व किनके मध्य लड़ा गया था?
8. 'रूठी रानी' के नाम से कौन प्रसिद्ध है?
9. सुमेलित कीजिए

राजवंश	संस्थापक
1. राठौड़	वासुदेव
2. चौहान	सीहा
3. जाट	दुलहराय
4. कच्छवाहा	चूड़ामन

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. मुगलकाल में राजस्थान की सामंत प्रथा में क्या परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए थे?
2. तूंगा के युद्ध (1787 ई.) पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
3. हुरड़ा सम्मेलन क्यों असफल रहा? कारण सहित समझाइए।
4. आबू के परमार वंश का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
5. कान्हड़देव तथा अलाउद्दीन खिलजी के संबंधों पर प्रकाश डालिये।
6. संयोगिता–स्वयंवर कथा की ऐतिहासिकता का परीक्षण कीजिये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. राजपूतों की उत्पत्ति को लेकर प्रचलित विभिन्न मतों का परीक्षण कीजिये।
2. अकबर व मेवाड़ के शासकों के संबंधों पर एक विस्तृत लेख लिखिये।

परियोजनात्मक कार्य :

1. राजस्थान के विभिन्न राजवंशों को मानचित्र में अंकित कीजिए तथा उनके राजाओं के चित्र एकत्रित कीजिए।

कल्पना करें :

1. आप मध्यपाषाण काल के निवासी होते तो आपका जीवन कैसा होता, इस हेतु आप अन्य पुस्तकों की भी मदद ले।

अध्याय

2

राजस्थान के प्रमुख संत एवं लोक देवता

लोक देवता – तेरहवीं सदी से राजस्थान में इस्लाम के प्रवेश एवं तुर्क आक्रमणों के कारण राजस्थान के जन–जीवन में एक नवीन परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इस्लामी संस्कृति के प्रभावों तथा रूढ़िवाद और बाह्याडम्बर से उत्पन्न वातावरण में प्रबुद्ध मनीषियों की चिंतन–धारा मंदिरों और मूर्तियों की अपेक्षा ध्यान, मनन एवं नाम–स्मरण की दिशा की ओर प्रवाहित होने लगी।

इसी कालखंड में राजस्थान में कुछ ऐसे महान व्यक्तियों ने जन्म लिया, जिन्होंने अपने आचरण व दृढ़ता से समाज को एक नई राह दिखाई। आमजन ने इनकी दिखाई राह का न केवल अनुसरण किया, वरन इन्हें देवता तुल्य मानते हुए, इन्हें लोक देवता व लोक संत का दर्जा प्रदान किया। इस अध्याय में हम ऐसे ही कुछ महान व्यक्तित्वों का अध्ययन करेंगे।

गोगाजी

गोगाजी का नाम राजस्थान के पांच पीरों में बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है।

पाबू, हरभू, रामदे, मांगलिया, मेहा।
पांचू पीर पधारज्यो, गोगाजी जेहा।।

इनके पिता का नाम जेवर और माता का नाम बाछल था। इन्हें गोरखनाथ व महमूद गजनवी के समकालीन माना जाता है।

गोगाजी का अपने मौसेरे भाइयों अरजन–सुर्जन के साथ सम्पत्ति का विवाद चल रहा था। अरजन–सुर्जन द्वारा मुसलमानों की फौज लाकर गोगाजी की गायों को घेर लेने के कारण इनका गोगाजी के साथ भीषण युद्ध हुआ। इसमें अरजन–सुर्जन के साथ गोगाजी भी वीरगति को प्राप्त हुए।

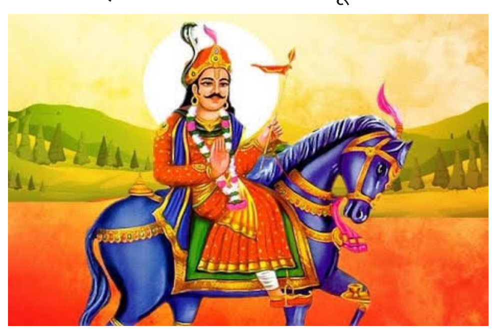

गोगाजी

गोगाजी का जन्म स्थल ददेरवा शीर्ष मेड़ी तथा इनका समाधि स्थल धुरमेड़ी कहलाता है। गोगाजी की स्मृति में गोगामेड़ी (हनुमानगढ़) एवं समस्त राजस्थान में भाद्रपद कृष्ण नवमी गोगानवमी के रूप में मनायी जाती है। इस दिन गोगाजी की अश्वारोही भाला लिये योद्धा के प्रतीक रूप में अथवा सर्प के प्रतीक रूप में पूजा की जाती है। इनका पत्थर पर उत्कीर्ण सर्प मूर्तियुक्त पूजा स्थल प्रायः गाँवों में खेजड़ी के वृक्ष के नीचे होता है। मान्यता है कि गोगाजी को 'जाहिर पीर' कहकर पूजने से सर्प–दंश का विष प्रभावहीन हो जाता है। हिंदू 'नागराज' तो मुस्लिम 'गोगापीर' के रूप में इनकी पूजा करते हैं।

तेजाजी

वीर तेजा का जन्म खड़नाल (नागौर) ग्राम के ताहड़जी और रामकुंवरी के यहाँ माघ शुक्ल चतुर्दशी को 1073 ई. में हुआ था। जब तेजाजी अपनी पत्नी पेमल को लेने अपने ससुराल पनेर गये हुए थे, तब

उसी दिन मेर लोग लाछा गूजरी की गायें चुरा कर ले गये। गूजरी की प्रार्थना पर वे गायों को मुक्त कराने जा ही रहे थे की रास्ते में इन्हें सुरसुरा नामक स्थान पर इन्हें एक सर्प मिला। तेजाजी ने सर्प को डसने से रोकते हुए वचन दिया कि वे गायों को मुक्त कराने के बाद स्वयं यहाँ आयेंगे। भीषण संघर्ष के बाद तेजाजी ने गायें मुक्त कराने में सफलता प्राप्त की। परन्तु अत्यधिक घायल होने पर भी वे अपने वचन के अनुसार वापस सर्प के पास आये। पूरे शरीर पर घाव होने के कारण इन्होंने सर्प के डसने के लिए जिह्वा आगे कर दी। सर्प–दंश के कारण सुरसुरा (किशनगढ़) में भाद्रपद शुक्ल दशमी को इनकी मृत्यु हो गई। तेजा दशमी (भाद्रपद शुक्ल दशमी) के अवसर पर पंचमी से पूर्णिमा तक परबतसर (नागौर) में विशाल पशु–मेला लगता है।

तेजाजी

तेजाजी भी गोगाजी की ही तरह नागों के देवता के रूप में पूजनीय है। तेजाजी को तलवार धारण किये घोड़े पर सवार योद्धा के रूप में दर्शाया जाता है, जिनकी जिह्वा को सर्प डस रहा है। मान्यता है कि यदि सर्प–दंशित व्यक्ति के दायें पैर में तेजाजी की तांत (डोरी) बांध दी जाये तो उसे विष नहीं चढ़ता।

लोक देवताओं से संबंधित यह मान्यताएं व कथाएं अक्षरशः सत्य हों आवश्यक नहीं है, इनका मूल उद्देश्य इन कथाओं से जुड़ी शिक्षाओं, यथा–निर्बल की रक्षा, वचन का पालन आदि आमजन तक पहुँचाना रहा है।

पाबूजी

पाबूजी का जन्म धांधलजी राठौड़ के यहाँ 1239 ई. में कोलू में हुआ था। इतिहासकार मुहणौत नैणसी, महाकवि मोडजी आशिया तथा लोगों में प्रचलित मान्यता के अनुसार पाबूजी का जन्म वर्तमान बाड़मेर से आठ कोस आगे खारी खाबड़ के जूना नामक ग्राम में अप्सरा के गर्भ से हुआ। पाबूजी का विवाह अमरकोट के सूरजमल सोढ़ा की पुत्री सोढ़ी के साथ हुआ था। विवाह के मध्य ही उनके प्रतिद्वंद्वी बहनोई जायल (नागौर) नरेश जींदराव खींची ने पूर्व वैर के कारण देवल चारणी की गायों को घेर लिया। देवल ने पाबूजी से गायों को छुड़ाने की प्रार्थना की। तीन फेरे लेने के पश्चात् चौथे फेरे से पूर्व ही वे देवल चारणी की केसर कालमी घोड़ी पर सवार होकर गायों की रक्षार्थ रवाना हो गये। कड़े संघर्ष में 1276 ई. में पाबूजी अनेक साथियों सहित वीर–गति को प्राप्त हुए। वीरता, प्रतिज्ञापालन, त्याग, शरणागत वत्सलता एवं गौ–रक्षा हेतु बलिदान होने के कारण जनमानस इन्हें लोक देवता के रूप में पूजता है। इनका मुख्य पूजा स्थल कोलू (फलौदी) में है। जहाँ प्रतिवर्ष इनकी स्मृति में मेला लगता है। इनका प्रतीक चिह्न हाथ में भाला लिए अश्वारोही के रूप में प्रचलित है।

पाबूजी की ऊँटों के देवता के रूप में पूजा की जाती है। मारवाड़ में सर्वप्रथम ऊँट लाने का श्रेय पाबूजी को है। ऊँटों के स्वस्थ होने पर भोपे–भोपियों द्वारा 'पाबूजी की फड़' गाई जाती है। ग्रामीण जनमानस इन्हें लक्ष्मणजी का अवतार मानता है।

पाबूजी

देवनारायणजी

देवनारायणजी

देवनारायण बगड़ावत प्रमुख भोजा और सेढू गुर्जर के पुत्र थे, जिनका जन्म 1243 ई. के लगभग हुआ। इनके पिता इनके जन्म के पूर्व ही भिनाय के शासक से संघर्ष में अपने तेइस भाइयों सहित मारे गए थे। भिनाय शासक से इनकी रक्षा हेतु इनकी माँ सेढू इन्हें लेकर अपने पीहर मालवा चली गई। दस वर्ष की अल्पायु में वे पिता की मृत्यु का बदला लेने राजस्थान की ओर लौट रहे थे तो मार्ग में धारा नगरी में जयसिंह देव परमार की पुत्री पीपलदे से उन्होंने विवाह किया। कुछ समय बाद वे बदला लेने हेतु भिनाय पहुँचे। जहाँ गायों को लेकर भिनाय ठाकुर से हुए संघर्ष में देवजी ने उसे मौत के घाट उतार दिया।

इनका मुख्य पूजा स्थल आसींद (भीलवाड़ा) में है। जहाँ भाद्रपद शुक्ल सप्तमी को मेला लगता है। इनके मुख्य अनुयायी गूर्जर हैं, जो 'देवजी की फड़' तथा देवजी और बगड़ावतों से संबद्ध काव्य 'बगड़ावत' के गायन द्वारा इनका यशोगान करते हैं। किंवदंती है कि हर रात तीन पहर गाये जाने पर यह छः माह में पूर्ण होता है।

मल्लीनाथजी

मल्लीनाथजी का जन्म मारवाड़ के रावल सलखा और जाणीदे के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में 1358 ई. में हुआ। पिता की मृत्यु के पश्चात् वे चाचा कान्हड़दे के यहाँ महेवा में शासन प्रबंध देखने लगे। चाचा कान्हड़देव की मृत्यु के बाद वे 1374 ई. में महेवा के स्वामी बन गए। राज्य विस्तार के क्रम में 1378 ई. में फिरोज तुगलक के मालवा के सूबेदार निजामुद्दीन की सेना को इन्होंने मार भगाया।

अपनी रानी रूपांदे की प्रेरणा से वे 1389 ई. में उगमसी भाटी के शिष्य बन गये और योग–साधना की दीक्षा प्राप्त की। किंवदन्तियों के अनुसार वे भविष्यद्रष्टा एवं देवताओं की तरह चमत्कार–प्राप्त सिद्ध पुरुष बन गए थे।

मल्लीनाथजी ने मारवाड़ के सारे संतों को एकत्र करके 1399 ई. में एक वृहत् हरि–कीर्तन आयोजित करवाया। इसी वर्ष चैत्र शुक्ल द्वितीया को इनका स्वर्गवास हो गया। लूनी नदी के तटवर्ती तिलवाड़ा (बाड़मेर) गाँव में इनका मंदिर है। जहाँ प्रतिवर्ष चैत्र कृष्ण एकादशी से चैत्र शुक्ल एकादशी तक विराट पशु–मेला लगता है। जोधपुर के पश्चिमी परगने का नामकरण इन्हीं के नाम पर 'मालानी' किया गया था। इनकी आज भी मालानी (बाड़मेर) में अत्यधिक मान्यता है।

रामदेवजी

रामदेवजी

तंवर वंशीय अजमालजी और मैणादे के पुत्र रामदेवजी का जन्म बाड़मेर जिले की शिव तहसील के ऊँडूकासमेर गाँव में हुआ। इन्हें मल्लीनाथजी के समकालीन माना जाता है। बालपन में ही इन्होंने पोकरण क्षेत्र मल्लीनाथजी से प्राप्त करने के पश्चात् वहाँ भैरव नामक क्रूर व्यक्ति का अंत करके अराजकता एवं आतंक खत्म किया। इनका विवाह अमरकोट के दलजी सोढ़ा की पुत्री नेतलदे से हुआ था। अपनी भतीजी को पोकरण दहेज में दे देने के बाद इन्होंने 'रामदेवरा' (रुणेचा) गाँव बसाया और वहीं 1458 ई. में भाद्रपद शुक्ल एकादशी को जीवित समाधि ले ली। यहाँ भाद्रपद शुक्ल द्वितीया को विशाल मेला लगता है। सांप्रदायिक सद्भाव इस मेले की मुख्य विशेषता है।

हिन्दू जहाँ श्रीकृष्ण के अवतार के रूप में इनकी आराधना करते हैं, वहीं मुसलमान 'रामसा–पीर' के रूप में रामदेवजी को पूजते हैं। सामान्यतः गाँवों में किसी वृक्ष के नीचे ऊँचे चबूतरे पर रामदेवजी के प्रतीक चिह्न 'पगलिये' स्थापित किये जाते है। ये स्थान 'थान' कहलाते हैं।

रामदेवजी द्वारा कामड़िया पंथ की स्थापना की गई। इस पंथ के अनुयायियों द्वारा रामदेवजी के मेले में तेरहताली नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। रामदेवजी वीर होने के साथ–साथ समाज–सुधारक भी थे। इन्होंने जाति प्रथा, मूर्तिपूजा और तीर्थयात्रा का विरोध किया।

मेहाजी मांगळिया

मेहाजी मांगळिया राजस्थान के पंचपीरों में गिने जाते हैं। ये राव चूण्डा के समकालीन थे। इनका जन्म पंवार क्षत्रिय परिवार में हुआ था किंतु पालन–पोषण अपने ननिहाल में मांगळिया गोत्र में हुआ था। इसलिए ये मेहाजी मांगळिया के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके स्वाभिमानी स्वभाव के कारण इनके अनेक शत्रु हो गये। अंत में जैसलमेर के राव राणगदेव भाटी से युद्ध करते हुए वे वीरगति को प्राप्त हुए। वे अच्छे शकुन शास्त्री थे। लोगों की सेवा, सहायता करने एवं उन्हें संरक्षण देने के कारण वे लोक देवता के रूप में पूजे गये। बापणी में इनका मन्दिर है, जहाँ भाद्रपद कृष्णा अष्टमी को मेला भरता है।

हरभूजी

हरभूजी भूंडेल (नागौर) के महाराज सांखला के पुत्र और राव जोधा (1438–89 ई.) के समकालीन थे। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् वे भूंडेल छोड़कर हरभमजाल में आकर रहने लगे। यहाँ रामदेवजी की प्रेरणा से इन्होंने अस्त्र–शस्त्र त्यागकर उनके गुरु बालीनाथजी से दीक्षा ले ली। लोक–मान्यता है कि राव जोधा को मेवाड़ के अधिकार से मण्डोर को मुक्त कराने के प्रयासों के दौरान इन्होंने आशीष के साथ एक कटार भी दी थी। इस सहायता व आशीर्वाद से जब यह भूभाग जोधा के अधीन आ गया तो जोधा ने इन्हें 'बेंगटी' गाँव प्रदान किया।

हरभूजी को बहुत बड़ा शकुन शास्त्री, वचनसिद्ध और चमत्कारी महापुरुष माना जाता था। इनका प्रमुख स्थान बेंगटी (फलौदी) में है। मनौती पूर्ण होने पर श्रद्धालु यहाँ इनके मंदिर में संस्थापित 'हरभूजी की गाडी' की पूजा अर्चना करते हैं।

क्या आप जानते हैं?

अकबर के चित्तौड़दुर्ग पर आक्रमण के समय अपूर्व वीरता व साहस दिखाने वाले कल्लाजी की मेवाड़ अंचल में चार हाथों वाले लोक देवता के रूप में प्रसिद्धि है। मान्यता है कि सिर कटने के बाद भी कल्लाजी का धड़ मुगलों से लड़ता हुआ रूण्डेला तक जा पहुँचा।

संत

धन्ना

राजस्थान में धार्मिक आंदोलन का श्रीगणेश करने का श्रेय धन्ना को ही है। धन्ना का जन्म टोंक जिले के धुवन गाँव में 1415 ई. में जाट परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से ही इनकी प्रवृत्ति धार्मिक थी। कालांतर में धन्ना काशी जाकर आचार्य रामानन्द के शिष्य बन गए। गुरु रामानंद के प्रभाव से ये निर्गुण उपासक हो गये। गुरु रामानंद ने इन्हें घर पर रहकर ही भक्ति करने का आदेश दिया। इन्होंने अपने पैतृक व्यवसाय कृषि में रत रहते हुए ही आत्म शुद्धि का प्रयास किया।

धन्ना गुरु भक्ति में बड़ी निष्ठा रखते थे। इनका मत था कि गुरु भक्ति से ही परम पद की प्राप्ति हो सकती है। इन्होंने नाम–स्मरण को ही ईश्वर प्राप्ति का प्रमुख साधन माना है तथा औपचारिकताओं और बाह्याडम्बरों का विरोध किया।

पीपा

खींची राजपूत पीपा गागरौन (झालावाड़) के शासक थे। इनका जन्म 1425 ई. में हुआ माना जाता है। कालोपरान्त पीपा काशी जाकर रामानन्द के शिष्य बन गए। धन्ना के समान ही इन्हें भी गृहस्थ जीवन में रहते हुए भक्ति का आदेश प्राप्त हुआ। पीपा के निवेदन पर आचार्य रामानन्द अपने शिष्यों सहित द्वारिका यात्रा पर जाते हुए गागरौन पधारे। तब पीपा भी राज्य त्यागकर छोटी रानी सीता सहित उनके संग हो लिए।

इसके पश्चात् घूमते हुए वे टोडा (टोंक) आये और वहाँ के शासक शूरसेन को, अपनी दौलत संतों में बांट देने पर अपना शिष्य बनाया। अनेक स्थानों की यात्रा करते हुए वे पुनः गागरोन लौट आये और आहू तथा कालीसिंध के पवित्र संगम पर एक गुफा में रहने लगे। यहाँ इनका मंदिर, निवास स्थान और गुफा प्रसिद्ध है। बाड़मेर जिले के समदड़ी गाँव में पीपाजी का भव्य मंदिर है। यहाँ इनके प्रमुख अनुयायी दर्जी–समाज का प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को विशाल समागम आयोजित होता है।

पीपा से संबंधित विस्तृत साहित्य हस्तलिखित ग्रंथ–भंडारों में उपलब्ध है। जिनमें पीपा की कथा, पीपा–परची, पीपा की वाणी, साखियाँ, पद आदि मुख्य हैं। 17वीं शताब्दी के एक हस्तलिखित ग्रंथ में पीपा द्वारा रचित एक चितावनी नामक ग्रंथ भी प्राप्त हुआ है।

ईश्वर–प्राप्ति में गुरु के निर्देशन को पीपा ने आवश्यक बताया है। भक्ति (नाम–स्मरण) को ये मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन मानते हैं। पीपा मूर्ति–पूजा का विरोध करते हुए ईश्वर–उपासना करने पर जोर देते हैं। पीपा ऊँच–नीच में विश्वास नहीं करते थे। वे प्राणी–मात्र की समानता का समर्थन करते हुए कहते हैं कि ईश्वर की दृष्टि में सभी प्राणी समान हैं।

जांभोजी

विश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक जांभोजी का जन्म 1451 ई. की भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को पीपासर (नागौर) के पंवार वंशीय राजपूत लोहटजी तथा हांसा देवी के घर में हुआ। 1483 ई. में माता–पिता के देहांत के पश्चात् वे गृह त्यागकर सम्भराथल (बीकानेर) में रहते हुए सत्संग तथा हरि–चर्चा में अपना समय व्यतीत करने लगे।

1485 ई. में इसी स्थान पर इन्होंने 'विश्नोई' सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। इनके जीवन तथा विचारों पर आचरण करने वाले विश्नोई कहलाये। इन्होंने अपने अनुयायियों को उनतीस सिद्धांतों का पालन करने का आदेश दिया। जीव कल्याण तथा वृक्षों की रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग करना इस सम्प्रदाय का इतिहास रहा है। पर्यावरण के प्रति लगाव के कारण 'जांभोजी' को पर्यावरण वैज्ञानिक भी कहा जाता है। जांभोजी द्वारा रचित प्रमुख ग्रंथ जम्भ संहिता, जम्भ सागर शब्दावली, विश्नोई धर्मप्रकाश तथा जम्भसागर है।

1536 ई. में लालासर गाँव में इन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया तथा तालवा गाँव के निकट इन्हें समाधिस्थ किया गया। यह स्थान 'मुकाम' कहलाता है। वर्ष में दो बार फाल्गुन और आश्विन की अमावस्या को यहाँ मेला लगते हैं।

जसनाथजी

जसनाथी संप्रदाय के प्रवर्तक जसनाथजी का जन्म 1482 ई. को कतरियासर (बीकानेर) में हुआ था। इन्हें हमीरजी जाणी जाट और रूपांदे का पौष्य पुत्र माना जाता है। लोक–विश्वास के अनुसार इन्होंने गोरखमालिया (बीकानेर) में बारह वर्ष तक कठोर तपस्या करते हुए सभी को जीवों पर दया करने का संदेश दिया था।

जसनाथजी ने लोह पांगल नामक तांत्रिक का घमण्ड चकनाचूर किया। रावलूणकरण को बीकानेर का राजपद पाने का वरदान भी दिया है। इनके चमत्कारों से प्रभावित होकर दिल्ली सुल्तान सिकन्दर लोदी तक ने इन्हें कतरियासर के पास भूमि दी थी। 1500 ई. में जसनाथजी तथा जांभोजी का परस्पर मिलन हुआ था। जसनाथजी ने आश्विन शुक्ल सप्तमी 1506 ई. में चौबीस वर्ष की अल्प आयु में कतरियासर में जीवित समाधि ले ली। इनके उपदेश सिंभूधड़ा व कोंडा नामक ग्रंथ में संग्रहित है।

कतरियासर ही जसनाथजी की तपोभूमि व कर्मस्थली हैं। यहाँ वर्ष में तीन बार–आश्विन शुक्ल सप्तमी, माघ शुक्ल सप्तमी और चैत्र शुक्ल सप्तमी को विशाल मेले लगते हैं।

लालदास

लालदासी संप्रदाय के प्रवर्तक लालदास का जन्म मेवात प्रदेश (अलवर) के धोलीदूब गाँव में श्रावण कृष्ण पंचमी 1504 ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम चांदमल और माता का समदा था। लालदास ने तिजारा के फकीर गदन चिश्ती से दीक्षित होकर उन्हीं की प्रेरणास्वरूप धोलीदूब छोड़कर बांधोली ग्राम में 'सिंह शिला' पहाड़ पर कुटिया बना ली।

मेवात क्षेत्र में फैली धार्मिक व सामाजिक कुरीतियों को दूर करने हेतु लालदासजी ने नैतिक शुद्धता पर बल दिया। संत लालदास ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों की अच्छाइयों को अपनाने के उपदेश दिए। इनका मानना था कि ईश्वर व अल्लाह एक हैं, जो दूसरों को कष्ट पहुँचाता है, स्वयं उसका जीवन कष्टमय हो जाता है। मेव मुसलमान लालदासजी को पीर मानते हैं। लालदास की चेतावनियां इनका मुख्य काव्य ग्रंथ है। नगला में 1648 ई. में 108 वर्ष की दीर्घायु में इनका निधन हुआ। इनकी समाधि शेरपुर में है जहाँ पर आश्विन मास की एकादशी व माघ पूर्णिमा को मेला लगता है।

संत हरिदास

निरंजनी संप्रदाय के संस्थापक संत हरिदास का जन्म डीडवाना तहसील के कापड़ोद गाँव में 1455 ई. में हुआ। इनका मूल नाम हरिसिंह सांखला था और प्रारम्भ में लूटमार करना इनका पेशा था, लेकिन एक संन्यासी के उपदेशों से इनका जीवन बदल गया। 1513 ई. में इन्होंने 'बोध' (ज्ञान) प्राप्त किया और अपना नाम हरिदास रख लिया। इन्होंने निर्गुण भक्ति पर जोर दिया तथा कुरीतियों का विरोध किया। इन्होंने निरंजनी संप्रदाय प्रारम्भ किया, इस संप्रदाय में परमात्मा को 'अलख निरंजन' या 'हरि निरंजन' कहा जाता है। संत हरिदास के आध्यात्मिक विचार मंत्र राजप्रकाश और हरिपुरुष की वाणी नामक ग्रंथों में संकलित हैं। डीडवाना में 1543 ई. में इनका देहान्त हुआ।

दादूदयाल

'राजस्थान के कबीर' दादूदयाल का जन्म अहमदाबाद (गुजरात) में फाल्गुन शुक्ल अष्टमी 1544 ई. का माना जाता है। बुड्ढन (वृद्धानन्द) नामक संत से दीक्षा ग्रहण करके दादू 1568 ई. में सांभर आकर रहने लगे तथा धुनिया का कार्य आरम्भ कर दिया। यहाँ से दादू ने उपदेश देना आरम्भ किया।

दादूदयाल

1575 ई. में दादू अपने 25 शिष्यों के साथ आमेर चले आये। जहाँ अगले 14 वर्षों तक इन्होंने निवास किया। दादू ने 1585 ई. में मुगल सम्राट अकबर से भेंट करने हेतु फतेहपुर सीकरी की यात्रा भी की थी।

दादू तत्कालीन ढूंढाड़ और मारवाड़ राज्यों में यात्रा करते व उपदेश देते हुए 1602 ई. में फुलेरा के समीपवर्ती ग्राम नरायणा में आ गये और यहीं ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी 1603 ई. को इन्होंने देह त्याग किया। दादू के पार्थिव शरीर को उनके निर्देशानुसार ही समीपस्थ 'भेराणा' की पहाड़ी के नीचे 'दादू खोल' नामक स्थान पर रख दिया गया था। दादू–पंथी इस स्थान को अत्यन्त पवित्र मानते हैं।

दादू ने ब्रह्म, जीव, जगत और मोक्ष पर अपने उपदेश सरल भाषा (सधुक्कड़ी) में दिए। दादूजी की वाणी तथा दादू रा दूहा नामक ग्रंथों में दादू के उपदेश और विचार मिलते हैं। दादू कबीर की ही तरह सुधारवादी, आचरण और मोक्ष के मूल्यों को मानने वाले, परमतत्व की तलाश करने वाले थे। दादू ने कर्मकाण्ड, जातिप्रथा, मूर्तिपूजा, रूढ़िवादिता आदि का घोर विरोध किया। गरीबदास, मिस्किनदास, सुन्दरदास, बखनाजी, रज्जब, माधोदास आदि दादू के प्रसिद्ध शिष्य थे।

मीरा बाई

कृष्ण भक्त कवयित्री व गायिका मीरा बाई सोलहवीं सदी के भारत के महान् संतों में से एक थी। मीरा को 'राजस्थान की राधा' भी कहा जाता है। इनका जन्म मेड़ता के राठौड़ राव दूदा के पुत्र रतनसिंह के घर में कुड़की (पाली) नामक ग्राम में 1498 ई. के लगभग हुआ था। इनके पिता रतनसिंह राठौड़ बाजोली के जागीरदार थे। मीरा का लालन–पालन अपने दादाजी के यहाँ मेड़ता में हुआ। इनका विवाह 1516 ई. में राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र युवराज भोजराज के साथ हुआ था, पर विवाह के कुछ वर्ष पश्चात् ही पति की मृत्यु हो जाने से यह तरुण अवस्था में ही विधवा हो गई। मीरा का साधु–संतों में उठना–बैठना और उनके साथ भजन–कीर्तन करना इनके देवर राणा विक्रमादित्य को पसंद नहीं आया। विक्रमादित्य ने मीरा को जहर देने तथा सर्प से कटवाने का भी प्रयत्न किया, किंतु मीरा की कृष्ण भक्ति कम नहीं हुई।

कृष्ण भक्ति का विचार मीरा को अपनी दादी से प्राप्त हुआ था। एक बार एक बारात को दूल्हे सहित जाते देखकर बालिका मीरा अत्यधिक प्रभावित हुई और अपनी दादी के पास जाकर उत्सुकता से अपने दूल्हे के बारे में पूछने लगी। दादी ने तुरंत ही गिरधर गोपाल का नाम बता दिया। मीरा को तभी से गिरधर गोपाल की लगन लग गई।

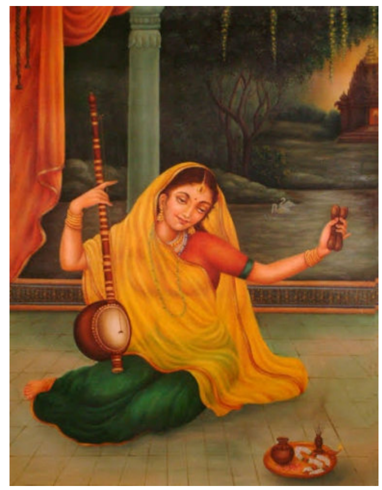
मीरा बाई

मीरा अपने अंतिम समय में गुजरात में द्वारिका के डाकोर स्थित रणछोड़ मंदिर में चली गई और वहीं 1547 ई. में अपने गिरधर गोपाल में विलीन हो गई। मीरा जी की पदावलियाँ प्रसिद्ध हैं।

इनकी भक्ति की मुख्य विशेषता यह थी कि उन्होंने ज्ञान से अधिक भावना व श्रद्धा को महत्व दिया। मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की रही।

संत राना बाई

'राजस्थान की दूसरी मीरा' संत राना बाई का जन्म मारवाड़ के हरनांवा (मकराना के पास) गाँव में वैशाख शुक्ल तृतीया को 1504 ई. में एक जाट परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम रामगोपाल तथा माता का नाम गंगाबाई था। पालड़ी के संत चतुरदास की शिष्या राना बाई कृष्ण भक्त थी। 66 वर्ष की उम्र में हरनांवा गाँव में फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी को 1570 ई. में राना बाई ने जीवित समाधि ली। यहाँ प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी को एक विशाल मेला आयोजित किया जाता है।

संत मावजी

संत मावजी का जन्म 1714 ई. में साबला गाँव में हुआ था। संत मावजी ने अपने विचारों को स्थायी एवं साकार रूप देने हेतु निष्कलंक (यानि पवित्र एवं पाप–रहित) नामक सम्प्रदाय की स्थापना की।

कहा जाता है कि जब इनकी आयु 12 वर्ष थी, तो यह घर छोड़कर माही और सोम नदी के संगम पर एक गुफा में तपस्या करने लगे। इसी स्थान पर संवत् 1784 माघ शुक्ला एकादशी गुरुवार को इन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और उसी दिन वहाँ पर मावजी ने बेणेश्वर (वेण वृन्दावन) नामक धाम की स्थापना की। इसके बाद इन्होंने धर्मोपदेश देना आरम्भ कर दिया और अपने शिष्यों में बिना किसी भेदभाव के सभी जातियों के लोगों को शामिल किया।

इन्होंने लसाड़ा के पटेल भक्त की दान–राशि से अहमदाबाद से कागज मंगवाया और धोलागढ़ में एकान्तवास करके पांच बड़े ग्रंथों की रचना की, जिनके छन्दों की संख्या 72 लाख 96 हजार बतलाई जाती है। वाद–विवाद की शैली में लिखे ये ग्रंथ चौपड़ा कहलाते हैं।

मावजी के ये चौपड़े केवल दीपावली के दिन ही बाहर निकाले जाते हैं। मावजी के अनुयायी इन्हें

विष्णु का दसवां अवतार 'कल्कि अवतार' मानते हैं। डूंगरपुर जिले में इनके अनुयायी बड़ी संख्या में हैं। इनका मुख्य मंदिर साबला में है जहाँ मावजी की शंख, चक्र, गदा और पद्म सहित घोड़े पर सवार चतुर्भुज मूर्ति है। बेणेश्वर धाम पर माघ शुक्ल पूर्णिमा को सोम, जाखम और माही नदियों के त्रिवेणी संगम पर मेला लगता है।

रामचरण

जयपुर राज्य के अंतर्गत सोडा गाँव में माघ शुक्ल चतुर्दशी 1719 ई. को वैश्य–कुल में बखतराम ओर देऊजी के यहाँ रामकिशन (रामचरण का मूल नाम) का जन्म हुआ।

मेवाड़ के दांतड़ा ग्राम में महाराज कृपारामजी से 1751 ई. को दीक्षा प्राप्त करके रामकिशन रामचरण बन गए। 1758 ई. में गलताजी के मेले के समय साधुओं के धर्म के प्रतिकूल व्यवहार को देखकर इनका मन संसार से उचट गया तथा रामचरणजी वैरागी हो गये।

इसके बाद भीलवाड़ा में साधना करते हुए इन्होंने निर्गुण भक्ति और सभी के प्रति प्रेम का उपदेश दिया। मूर्तिपूजकों द्वारा परेशान करने पर रामचरण कुहाड़ा गाँव चले गए। शाहपुरा से निमंत्रण प्राप्त होने पर वह शाहपुरा चले गए। शाहपुरा नरेश रणसिंह ने इनके रहने के लिए एक छतरी का निर्माण करवाया और एक मठ भी स्थापित किया। राम नाम स्मरण करते हुए 1798 ई. में शाहपुरा में ही इनका निधन हुआ। इनके आध्यात्मिक उपदेश अणभैवाणी नामक ग्रंथ में संकलित हैं।

रामचरणजी द्वारा प्रवर्तित पंथ 'रामस्नेही सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्प्रदाय की चार प्रधान शाखाएं मानी गई हैं। इन शाखाओं में रामचरण को शाहपुरा शाखा का संस्थापक बताया गया है। अन्य तीन शाखाओं–रेण, सिंहथल और खेड़ापा शाखा के संस्थापक क्रमशः दरियावजी, हरिरामदासजी तथा रामदासजी माने गए हैं। रामस्नेही सम्प्रदाय का 'फूलडोल महोत्सव' इस सम्प्रदाय की अपनी विशिष्टता है।

महर्षि नवलराम

नवल संप्रदाय के संस्थापक नवलराम का जन्म भाद्रपद कृष्णा अष्टमी विक्रम संवत् 1840 को हरसोलाव (नागौर) में दलित समुदाय से संबंधित एक मेहतर परिवार में हुआ। बचपन में आध्यात्मिकता की ओर इनका झुकाव देखकर इनके पिता खुशालराम ने इन्हें रामानंद संप्रदाय के संत करताराम के पास भेज दिया। गुरू करताराम ने ही इनका नाम 'नवलराम' रखा और इन्हें निर्गुण व निराकार ईश्वर का उपदेश दिया। महर्षि नवलराम ने देश में जगह–जगह भ्रमण कर शिक्षा के महत्त्व पर बल दिया। उन्होंने समाज में व्याप्त रूढ़िवादी दृष्टिकोण, आडम्बरों, जादू–टोना, सती प्रथा, अस्पृश्यता, पर्दा प्रथा, बाल विवाह आदि धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों का विरोध करते हुए जनमानस को जागरूक किया। महर्षि ने सत्य, गुरू और ईश्वर भक्ति को मोक्ष प्राप्त करने में सहायक माना। उन्होंने एकेश्वरवाद का समर्थन किया और निराकार ईश्वर की उपासना पर बल दिया –

साधो भाई हम निर्गुण दीदारा
नाम अनाम में ना ही, अभे अखंड स्वरूप हमारा।

महर्षि नवलराम ने मारवाड़ी भाषा में अनेक भजन, दोहे, श्लोक, छंद एवं चौपाइयों की रचना की। मारवाड़ के शासक मानसिंह इनका बड़ा सम्मान करते थे। नवल सम्प्रदाय की प्रमुख पीठ जोधपुर में है।

सांगलिया धूणी (सीकर)

सीकर जिले की धोद तहसील के सांगलिया गांव में स्थित यह आश्रम सर्वंगी सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र है जिसकी स्थापना लक्कड़दास महाराज द्वारा 1649 ई. में की गई। यह सम्प्रदाय जाति–पांत के भेद के स्थान पर मानव मात्र की समानता में विश्वास करता है। झाड़–फूंक व ताबीज में अविश्वास

प्रकट करते हुए अनुयायियों को सद्मार्ग पर चलने की शिक्षा दी जाती है। अनुयायियों का मुख्य अभिवादन 'जय साहेब' है। आश्रम में प्रत्येक महिने की अमावस्या व पूर्णिमा को सत्संग का आयोजन होता है जिसमें आडम्बरों के स्थान पर केवल आध्यात्मिक भजन किए जाते है। ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए आश्रम द्वारा बाबा खींवादास महाविद्यालय का संचालन भी किया जा रहा है। इस महाविद्यालय की स्थापना के लिए राष्ट्रपति के.आर. नारायणन द्वारा आश्रम के पीठाधीश्वर खींवादास महाराज को सम्मानित किया गया।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. निम्नलिखित में से कौन पंच पीरों में शामिल नहीं है–
   (अ) पाबूजी (ब) गोगाजी
   (स) रामदेवजी (द) तेजाजी
2. तेजाजी का जन्म किस जिले में हुआ था?
   (अ) नागौर (ब) अजमेर
   (स) पाली (द) जोधपुर
3. धन्ना किसके शिष्य थे?
   (अ) कबीर (ब) रामानन्द
   (स) पीपा (द) दादू
4. विश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन थे?
   (अ) असनाथजी (ब) जांभोजी
   (स) लालदास (द) कबीर

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. देवनारायणजी का मुख्य पूजा स्थल कहाँ स्थित है?
2. रामदेवजी के माता–पिता का नाम क्या था?
3. 'राजस्थान का कबीर' किसे कहा जाता है?
4. मीरा बाई का विवाह कब व किसके साथ सम्पन्न हुआ था?
5. रामस्नेही सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन थे?
6. मावजी का मुख्य मंदिर कहाँ स्थित है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. लोक देवता तेजाजी पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
2. संत हरिदास के प्रमुख विचारों का उल्लेख कीजिये।
3. कृष्ण भक्त मीरा के जीवन के प्रमुख पहलुओं पर प्रकाश डालिये।
4. संत राना बाई को 'दूसरी मीरा' क्यों कहा जाता है?

निबंधात्मक प्रश्न –

1. राजस्थान के पंच पीरों पर एक विस्तृत लेख लिखिये।
2. राजस्थान की दो प्रमुख महिला संतों का चरित्र–चित्रण कीजिये।
3. दादू दयाल के जीवन व शिक्षाओं पर प्रकाश डालिये।

परियोजनात्मक कार्य :

1. अपने जिले के प्रमुख लोक देवताओं व संतों का एक चार्ट तैयार कीजिए।

कल्पना करें :

1. आप रामदेवजी के भक्त हैं, आप रामदेवरा के मेले में भाग लेकर लौटे हैं, अपने अनुभव अपने मित्रों को बताइये।

अध्याय

3

राजस्थान के उत्सव, त्यौहार एवं मेले

उत्सव व त्यौहार – राजस्थान में एक कहावत प्रचलित है– 'सात वार, नौ त्यौहार' अर्थात् सप्ताह के सात दिनों में यहाँ नौ त्यौहार होते हैं। यहाँ की स्थानीय संस्कृति की अभिव्यक्ति लोकोत्सवों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। ये त्यौहार, उत्सव व मेले इस प्रकार रचे गये है कि मौसम, समय तथा लोक भावना सबका संतुलन इनमें दिखाई देता है। अक्सर फसलों की कटाई व बदलते मौसम के साथ संयोजित ये अवसर आमजन को एक नवीन ऊर्जा प्रदान करते हैं। ये उत्सव, त्यौहार और मेले सांसारिक–उलझनों में फँसे लोगों को कुछ समय के लिये शारीरिक एवं मानसिक शांति तथा आनंद प्रदान करते हैं। राजस्थान की इन्द्रधनुषी–संस्कृति की पहचान प्रकट करने वाले कुछ प्रमुख उत्सव, त्यौहार व मेलों की झलक यहाँ प्रस्तुत है –

गणगौर

गणगौर राजस्थान का एक प्रमुख त्यौहार है। 'गण' अर्थात् शिव, 'गौर' अर्थात् गौरी पार्वती। इस अवसर पर शिव व पार्वती की आराधना द्वारा अविवाहित लड़कियां अपने लिये योग्य वर तथा वहीं विवाहित स्त्रियां अखण्ड सुहाग की कामना करती हैं। यह त्यौहार होली के दूसरे दिन चैत्र कृष्णा प्रतिपदा से लेकर चैत्र शुक्ला तृतीया तक चलता है। इस मौके पर होली की राख के पिण्ड बनाकर जौ के अंकुरों के साथ इनका पूजन किया जाता है। अविवाहित लड़कियां उपवनों से फूलों को कलश में सजाकर गणगौर के गीत गाती हुई इन्हें अपने घर ले जाती हैं।

गणगौर का त्यौहार शिव–पार्वती के रूप में ईसरजी और गणगौर की प्रतिमाओं के पूजन द्वारा मनाया जाता है। जनश्रुति के अनुसार इसका आरम्भ पार्वती के गौने या अपने पिता के घर पुनः लौटने और अपनी सखियों द्वारा स्वागत गान को लेकर हुआ था। इसकी स्मृति में स्त्रियां गणगौर की काष्ठ की प्रतिमाओं को सजा कर मिट्टी की प्रतिमाओं के साथ किसी जलाशय पर जाती हैं। नृत्य और गीतों के साथ मिट्टी की प्रतिमाओं को विसर्जित कर काष्ठ प्रतिमाओं को पुनः लाकर स्थापित करती हैं। इस त्यौहार को जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, कोटा रियासतों में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था।

हमेशा से ही गणगौर के अवसर पर गणगौर की सवारी का रिवाज रहा है। उदयपुर की गणगौर की सवारी का कर्नल टॉड ने बड़ा रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है, जहाँ अट्टालिकाओं में बैठकर सभी जातियों की महिलाएं, बच्चे और पुरुष रंग–बिरंगे वस्त्रों व आभूषणों से सुसज्जित हो गणगौर की सवारी को देखते थे। यह सवारी तोप के धमाके और नगाड़े की आवाज से राजप्रासाद से प्रारंभ होकर पिछौला झील के गणगौर घाट तक बड़ी धूमधाम से पहुँचती थी और नौका विहार तथा आतिशबाजी के प्रदर्शन के पश्चात् समाप्त होती थी।

तीज

राजस्थान में एक कहावत प्रचलित है– 'तीज त्यौहारा बावरी, ले डूबी गणगौर। अर्थात् त्यौहारों के चक्र की शुरुआत श्रावण माह में तीज से होती है तथा इसका अंत गणगौर से होता है।

वर्षा ऋतु में श्रावण माह में मनाया जाने वाला तीज का त्यौहार राजस्थान की स्त्रियों का सर्वाधिक

प्रिय त्यौहार है। श्रावण शुक्ला तृतीया को बालिकाएं एवं नवविवाहिताएं इस त्यौहार को मनाती हैं। यह त्यौहार विवाह के पश्चात् पहली बार पीहर में मनाने की परम्परा है। मान्यता है कि विवाह के बाद के पहले सावन में सास और बहू को एक साथ नहीं रहना चाहिए, इसीलिए ससुराल पक्ष किसी अनिष्ट की आशंका से उसे पीहर भेज देता है।

इस अवसर पर सभी नवविवाहिताएं पेड़ों पर झूला डालकर झूलती हैं तथा साथ में ऋतु तथा शृंगार संबंधी गीत भी गाती हैं। तीज से एक दिन पूर्व वे हाथों और पाँवों में मेहन्दी लगाती हैं। तालाबों के किनारों पर मेलों का आयोजन होता है। इस त्यौहार के आस–पास खेतों में मोठ, बाजरा, फली आदि की बुवाई भी शुरू होती है।

राजस्थान में गुलाबी नगर जयपुर का तीज का त्यौहार प्रसिद्ध है। तीज की सवारी में सजे–सजाए हाथी, घोड़े, ऊँट और वर्दी पहने हुए उनके महावत, घुड़सवार आदि तीज की प्रतिमा के साथ जुलूस में चलते हैं। इस त्यौहार का आनंद उठाने के लिए राज्यभर से हजारों की संख्या में लोग आते हैं। राजस्थानी वेशभूषा में लोग राजस्थानी लोकगीत और नृत्य करते नजर आते हैं। इस दृश्य का विदेशी पर्यटक घंटों ठहर कर आनंद उठाते रहते हैं।

क्या आप जानते हैं?

बूंदी की कजळी तीज : तीज का त्यौहार पूरे राजस्थान में जहाँ श्रावणी तीज को मनाया जाता है, बूंदी में यह भाद्रपद कृष्णा तृतीया को मनाया जाता है। इसमें सुसज्जित पालकियों में तीज का उल्लास मय जुलूस मनोरम नवल सागर से शुरु होकर, कुंभा स्टेडियम पर समाप्त होता है।

होली

होली का त्यौहार फाल्गुन पूर्णिमा को पूरे भारत में बड़े उत्साह व उल्लास से मनाया जाता है। ऋतु परिवर्तन और रबी की फसल की कटाई से जनमानस मनोरंजन के लिए उत्साही हो जाता है। इस अवसर पर होलिका की पूजा की जाती है। गोबर के कंडों को एकत्रित करके कुछ कंडों की मालाएं होलिका दहन के लिए समर्पित की जाती हैं। नृत्य, गान और गुलाल से त्यौहार का महत्व प्रदर्शित होता है।

होली पर रंग डालने की परम्परा लगभग सभी जगह एक समान है किंतु कुछ स्थानों पर इसमें विविधता भी दिखाई देती है। भिनाय में कोड़ा मार खेली जाती है जिसमें लोग दो दलों में बंटकर एक दूसरे पर कोड़ों से प्रहार करते हैं। मेवाड़ में उदयपुर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर तथा दक्षिणी राजस्थान में आदिवासी लोगों में भगौरिया खेला जाता है। मेवाड़ के अनेक अंचलों में होली के मौके पर गैर नृत्य किया जाता है।

प्रसिद्ध जैन तीर्थ स्थली श्रीमहावीरजी में लट्ठमार होली में महिलाएं हाथों में लट्ठ लेकर पुरुषों पर प्रहार करती हैं। शेखावाटी क्षेत्र में होली के अवसर पर गीन्दड़ नृत्य किया जाता है। बाड़मेर की पत्थर होली में ईलोजी की बारात भी निकाली जाती है जो बाद में रोने–बिलखने में बदल जाती है। इसी से लोगों का मनोरंजन होता है।

जयपुर में पिछले कुछ वर्षों से होली के अवसर पर 'जन्म, मरण और परण' का सभ्य समाज के द्वारा आयोजन होता है। इस कार्यक्रम में बाप की अर्थी, बेटे की बारात तथा पौत्र का जन्म दिखाया जाता है। कोटा के आवां तथा सांगोद कस्बों का दो सौ वर्ष पुराना 'न्हाण' आयोजन भी प्रसिद्ध है। यहाँ होली पर खेल तमाशों के जरिये मनोरंजन किया जाता है।

अक्षय तृतीया

वैशाख माह की शुक्ल पक्ष की तृतीया को अक्षय तृतीया कहते हैं। अक्षय तृतीया को जन सामान्य 'अबूझ सावे' के रूप में मानते हैं। ग्रामीण अंचलों में बिना मुहूर्त निकलवाये ही इस दिन बड़ी संख्या में बाल–विवाह होते थे जो अब प्रशासन के कड़े रुख व जागरूकता के कारण बहुत कम हो गये हैं। कृषक

इस दिन खेतों में हल चलाकर अच्छी वर्षा एवं फसल की कामना करते हैं। बाजरा, गेहूँ, चावल, तिल, जौ इत्यादि सात अन्नों की पूजा की जाती है। इस दिन गेहूं–बाजरे आदि का खीचड़ा, गुड़ की गलवाणी व मंगोड़ी का साग बनाया जाता है। बीकानेर का स्थापना दिवस होने के कारण इसे वहाँ और भी उत्साह के साथ मनाया जाता है।

पूरे देश में मनाए जाने वाले सभी पर्व, त्यौहार आदि राजस्थान में भी उतने ही हर्षोल्लास से मनाए जाते हैं। ॠतु तथा धर्म के परिप्रेक्ष्य में भारतीय जनसामान्य के कई अन्य उत्सव हैं जिनमें रक्षाबंधन, जन्माष्टमी, गणेश चतुर्थी, नवरात्रि, दशहरा, दीपावली, मकर–संक्राति, शरद–पूर्णिमा, बसंत–पंचमी, नाग–पंचमी आदि प्रमुख हैं।

इनके अतिरिक्त जैन सम्प्रदाय से संबंधित अनेक उत्सव राजस्थान में बड़ी श्रद्धा के साथ मनाये जाते हैं। जैनों का सबसे पवित्र और महत्वपूर्ण उत्सव पर्यूषण भाद्रपद में मनाया जाता है। श्रावकगण इस मौके पर मंदिर जाकर, पूजन, अर्चन, स्तवन, कीर्तन, व्रत, उपवास आदि प्रक्रियाओं द्वारा आत्म–शुद्धि, संयम एवं नियम का पालन करते हैं। इस उत्सव का अंतिम दिन संवत्सरी कहलाता है। अश्विन कृष्णा प्रतिपदा को क्षमावाणी पर्व के मौके पर सभी श्रावक एक जगह एकत्रित होकर एक–दूसरे से क्षमा याचना करते हैं।

मुसलमानों के उत्सवों में ईदुलजुहा, जिसे बकरा ईद भी कहते हैं, जिलहिज्ज की दसवीं तारीख को इब्राहम द्वारा अपने प्रिय पुत्र इस्माइल की कुर्बानी की याद में मनाया जाता है।

मुहर्रम के गमी के मौके पर वे दस दिन तक उपवास रखते हैं और अंतिम दिन मुहम्मद साहब के नाती हुसैन इमाम की कुर्बानी के उपलक्ष में ताजिये निकालते हैं। शबेरात का त्यौहार बड़ी खुशी का होता है। ऐसा माना जाता है कि उस दिन सभी मानवों के कर्मों की जांच होकर उनके कर्मों के अनुसार उनके भाग्य का निर्धारण किया जाता है। मुहम्मद साहब के पवित्र जन्म एवं मरण की स्मृति में बारावफात का त्यौहार मुस्लिम समाज बड़ी श्रद्धा से मनाता है। रमजान की समाप्ति का दिन इदुल–फितर कहलाता है, जिस दिन नई पोशाक में मुस्लिम समाज आपसी मेल–मिलाप करता दिखाई देता है।

ईसाई उत्सवों में पहली जनवरी, ईस्टर, गुड फ्राइडे, क्रिसमस–डे आदि प्रमुख हैं जिन्हें लोग गिरजाघरों एवं ईसाइयों के निवास स्थान में बड़े उल्लास से मनाते हैं।

इन प्रमुख लोकोत्सवों के अतिरिक्त महापुरुषों की जयन्ती, व्रत तथा उपवास के अवसर पर भी उत्सव मनाये जाते हैं। इनमें महावीर जयन्ती, नृसिंह जयन्ती, हनुमान जयन्ती, बुद्धजयन्ती आदि मुख्य हैं। व्रत के उत्सवों में अमावस्या व्रत, वट सावित्री व्रत, निर्जला एकादशी, देवझूलनी एकादशी, हरितालिका तीज, पवित्रा चतुर्दशी, ॠषि पंचमी, अनन्तचतुर्दशी, गोपाष्टमी, आंवला एकादशी आदि प्रमुख हैं।

मेले

मेले का अर्थ है– एक स्थान विशेष पर जनसमूह का मिलना और उत्सवों का मनाना। लोक जीवन पूरी सक्रियता से मेलों तथा त्यौहारों के आयोजन में शामिल होता है। इससे यहाँ की लोक–संस्कृति जीवंत हो उठती है। इन उत्सव, त्यौहारों एवं मेलों के अपने गीत और अपनी संस्कृति हैं।

प्रायः इन मेलों और त्यौहारों के मूल में धर्म होता है। किंतु कई मेले और त्यौहार अपने सामाजिक और आर्थिक महत्त्व के कारण अधिक प्रसिद्ध हैं। अजमेर में पुष्करजी का मेला, अन्नकूट पर नाथद्वारा का मेला, सवाईमाधोपुर के शिवाड़ क्षेत्र में शिवरात्रि का मेला, चुरू जिले में सालासर हनुमानजी का मेला, नागौर में गोठ मांगलोद में दधिमति माता का मेला, उदयुपर के पास चारभुजा का मेला, करौली में कैलादेवी का मेला, एकलिंगजी में शिवरात्रि का मेला, केसरियाजी का धुलेव का मेला, अलवर के पास भर्तृहरि का मेला आदि धर्म–प्रधान मेले हैं।

डूंगरपुर का बैणेश्वर का मेला, बाँरा जिले की शाहबाद तहसील का सहरियों का सीताबाड़ी मेला आदि आदिवासियों के मेलों का प्रतिनिधित्व करते हैं। परबतसर में तेजाजी का मेला, पोकरण के रूणीचा

में रामदेवजी का मेला, कोलूगढ़ में पाबूजी का मेला, ददेरवा में गोगाजी का मेला आदि लोक नायकों के मेले हैं। मौसमी मेलों में तीज, गणगौर आदि के मेले प्रमुख हैं। प्रमुख मेलों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है–

पुष्कर का मेला

अजमेर जिले का पुष्कर हिन्दुओं की आस्था का एक प्रमुख केन्द्र है। पूरे भारत में यही ब्रह्माजी का एकमात्र ऐसा मंदिर है जिसमें उनकी विधिवत पूजा होती है। इसी मंदिर के पीछे की पहाड़ियों पर सावित्री माता का मंदिर भी है। पुष्कर में लगने वाला कार्तिक माह की पूर्णिमा का मेला अपनी विशालता के कारण अनुपम माना जाता है।

पौराणिक कथाओं के अनुसार प्राचीन समय में पुष्कर में विज्रनाथ नामक एक राक्षस था। जिसने पुष्कर में आतंक मचा रखा था। इस राक्षस द्वारा ब्रह्माजी की संतानों की हत्या की बात जब स्वयं ब्रह्माजी को ज्ञात हुई तो उन्होंने प्रकट होकर कमल के फूल से राक्षस का संहार किया। कमल की पंखुड़ियां जिन तीन स्थानों पर गिरी वहाँ झीलें बन गई– ज्येष्ठ पुष्कर कनिष्ठ और मध्यम पुष्कर। इनमें ज्येष्ठ पुष्कर का ही महात्म्य अधिक है। तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने इसी स्थान पर एक यज्ञ का आयोजन किया। जिसमें समस्त देवी–देवताओं और ऋषि–मुनियों को आमंत्रित किया। यह यज्ञ कार्तिक मास में सम्पन्न हुआ था।

पुष्कर में कार्तिक माह में दीपदान की परम्परा अत्यन्त महत्वपूर्ण और पौराणिक है। इसी समय पशु मेला भी लगता है। विदेशी पर्यटक भी इस समय बड़ी संख्या में यहाँ आते हैं। रंग–बिरंगे वस्त्रों में जनसमुदाय, गेरुए वस्त्रों में भस्म लपेटे साधु, हजारों मवेशी और खूबसूरत जीनों से सजे ऊँट–इन सबसे सुसज्जित पुष्कर मेला अत्यंत आकर्षक और जीवंत दृश्य उपस्थित करता है।

जीणमाता का मेला

सीकर जिले के रेवासा ग्राम में पहाड़ी की तलहटी में जीणमाता मंदिर अवस्थित है। इस मंदिर का निर्माण विक्रम संवत् 1121 में मोहिल के हठड़ द्वारा करवाया गया। यहाँ माता की अष्टभुजी प्रतिमा है। इसके सामने घी और तेल के दो दीपक अखण्ड रूप से कई सौ वर्षों से प्रज्ज्वलित हैं। माना जाता है कि इन दीपकों की ज्योतियों की व्यवस्था दिल्ली के चौहान राजाओं ने शुरु की थी।

जीणमाता के संबंध में जनश्रुति है कि यहाँ हर्ष और जीण भाई–बहन थे। इनके माता–पिता का बचपन में स्वर्गवास हो गया था। भावज के तानों से दुःखी होकर जीण अपने भाई का घर छोड़कर रैवासा की पहाड़ियों पर तप करने आ गई। जब हर्ष को इस बात का पता चला तो उसने जीण से घर लौटने का आग्रह किया। जब जीण किसी भी प्रकार घर आने को तैयार नहीं हुई तो हर्ष भी उसी के साथ इस स्थान पर देवी को प्राप्त करने के लिए कठोर तपस्या करने लगा। अंत में देवी साक्षात हुई और आज तक वहाँ विद्यमान है।

राजस्थान के अलावा अन्य राज्यों से भी लाखों तीर्थ यात्री मनोकामना पूर्ति हेतु यहाँ आते हैं। चैत्र और अश्विन माह में नवरात्रों के समय यहाँ विशेष चहल–पहल हो जाती है।

खाटूश्यामजी का मेला

सीकर जिले में स्थित खाटूश्यामजी का मंदिर बहुत ही विख्यात है। जिला मुख्यालय से करीब 50 किमी. दूरी पर स्थित श्रीकृष्ण के ही एक स्वरूप श्रीश्यामजी के इस मंदिर में वर्ष भर भक्तों की भीड़ लगी रहती है। शीश के दानी के रूप में विख्यात श्रीश्यामजी के मंदिर में फाल्गुन के शुक्ल पक्ष की दशमी से द्वादशी तक वार्षिक मेला लगता है। इस मंदिर के निकट स्थित श्याम बगीचा और श्याम कुण्ड भी दर्शनीय हैं।

भर्तृहरि का मेला

अलवर से 40 किमी. दूर भर्तृहरि नामक स्थान पर वर्ष में दो बार वैशाख और भाद्रपद में लक्खी मेला आयोजित होता है। हाथों में चिमटा–कमण्डल, शरीर पर राख लपेटे लम्बी दाढ़ी और लम्बे बालों वाले

सैकड़ों कनफटे बाबाओं से यह स्थान लघु कुंभ के रूप में जीवंत हो उठता है। जनश्रुति है कि गोपीचन्द भर्तृहरि बहुत बड़े राजा थे। उनकी पत्नी रानी पिंगला अत्यंत सुंदर थी। किन्हीं कारणों से राजा के मन में विरक्ति आने पर उन्होंने अपना राजपाट त्याग कर सन्यास ले लिया। भर्तृहरि को यह जंगल बहुत भाया और वे मृत्यु पर्यन्त यहीं रहे। यहीं उनकी समाधि भी है।

डिग्गी के कल्याण का मेला

जयपुर से करीब 75 किमी दूर टोंक जिले की मालपुरा तहसील में डिग्गीपुरी में भगवान विष्णु के स्वरूप राजा कल्याणजी का श्रावण माह की अमावस्या को मेला लगता है।

डिग्गी के बारे में जनश्रुति है कि इन्द्र ने अपने दरबार की अप्सरा उर्वशी को किसी बात पर क्रोधित होकर बारह वर्ष के लिए मृत्यु लोक में रहने का दण्ड दिया। उर्वशी मृत्युलोक में आकर रहने लगी। यहाँ वह चंद्रगिरि के राजा के उद्यान में घोड़ी का रूप धारण कर रात भर चरा करती थी। क्रोधित चंद्रगिरि के राजा ने एक दिन घोड़ी का पीछा कर उसे पकड़ लिया। घोड़ी ने सुंदरी का रूप धर लिया। राजा डिग्व उर्वशी पर मोहित हो उसे अपने महल लाने के लिए आतुर हो गया। उर्वशी ने साथ चलने के लिए एक शर्त रखी कि दण्ड समाप्ति पर इन्द्र जब उसे लेने आये तो वह उसे बचायेगा। यदि वह नहीं बचा पाया तो वह उन्हें शाप दे देगी। दण्ड की समाप्ति पर इन्द्र उर्वशी को लेने के लिए मृत्यु लोक में आये। राजा डिग्व के प्रतिरोध करने पर इन्द्र ने भगवान विष्णु की सहायता से उसे हरा दिया और उर्वशी को ले गये। उर्वशी ने राजा को शाप दिया कि वह कोढ़ी बन जाये। भगवान विष्णु को राजा डिग्व पर दया आयी और उन्होंने राजा को कुष्ठ से निवारण का उपाय बताया। उन्होंने कहा कि कुछ समय बाद में उनकी एक प्रतिमा पास के समुद्र से बहती हुई आयेगी जिसके दर्शन से राजा का रोग मिटेगा। कालान्तर में वह प्रतिमा आई और उसके दर्शन मात्र से राजा का रोग मिट गया। चूंकि भगवान विष्णु ने राजा डिग्व का कुष्ठ रोग से कल्याण किया था, इसीलिए इस मंदिर का नाम कल्याण मंदिर पड़ा।

श्री महावीरजी का मेला

करौली जिले की हिन्डौन तहसील में गंभीर नदी के किनारे पर अवस्थित चंदनगांव (श्री महावीरजी) में महावीर स्वामी की स्मृति में प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला त्रयोदशी से वैशाख कृष्णा प्रतिपदा तक लक्खी मेला भरता है। यह जैनों का सबसे बड़ा मेला है। जनश्रुति है कि किरपादास नामक चर्मकार एक टीले पर अपने पशु चराया करता था। वर्तमान में यह टीला उसके नाम से जाना जाता है। एक बार उसकी एक गाय ने कई दिनों तक दूध नहीं दिया। कारण जानने के लिए उस गाय का पीछा करने पर उसने देखा कि गाय एक टीले पर स्वतः अपना दूध गिरा रही है। टीले को खोदने पर उसे वहाँ से गहरे लाल रंग की एक भव्य प्रतिमा मिली। किरपादास ने उस प्रतिमा को एक झोंपड़ी में रख दिया। बसवा के जैन अमरचंद बिलाला ने महावीरजी की इस प्रतिमा को सर्वप्रथम पहचाना और मंदिर बनवाने के लिए बड़ी रकम दान दी।

आज भी जब मेले का शुभारंभ होता है तो रथ यात्रा से पूर्व रथ को पहले उस चर्मकार के वंशजों का हाथ लगवाना पहली परम्परा है। श्री महावीरजी का यह मेला अपने आप में अनूठा और सर्वधर्म का अद्वितीय आयोजन है।

करणी माता का मेला

बीकानेर जिले की नोखा तहसील के देशनोक में बीकानेर के राठौड़ राजघराने की कुल देवी 'करणी माता' का मंदिर स्थित है। यह 'चूहों के मंदिर' के नाम से विख्यात है। यहाँ चूहे लोगों से बिना भयभीत हुए स्वतंत्र विचरण करते हैं। यहाँ प्रतिवर्ष चैत्र एवं अश्विन नवरात्रा में मेलों का आयोजन होता है।

शीतला माता का मेला

जयपुर जिले में चाकसू तहसील के शील की डूंगरी गांव में चैत्र कृष्णा सप्तमी अष्टमी को शीतला माता का मेला भरता है। शीतला माता का मंदिर पहाड़ी पर स्थित है, जिसका निर्माण जयपुर के महाराज माधोसिंह ने करवाया था। 'बैलगाड़ी मेले' के नाम से प्रसिद्ध इस मेले में दूर–दूर से ग्रामीण रंगीन कपड़ों में सजे, अपनी सुसज्जित बैलगाड़ियों से आते हैं। इस अवसर पर पशु मेला भी लगता है।

शीतला माता मातृरक्षिका देवी के रूप में पूजित है। इसे उत्तर भारत में 'महामाई', पश्चिम भारत में 'माई अनामा' और राजस्थान में सेढ़, शीतला तथा सैढ़ल माता के रूप में जाना जाता है। ऐसी मान्यता है कि माता की रुष्टता के कारण ही चेचक का प्रकोप होता है।

कैलादेवी का मेला

करौली जिले में त्रिकूट पर्वत की घाटी में कैलादेवी का भव्य मंदिर है। यहाँ चैत्र शुक्ला अष्टमी को मेला भरता है। मेले में बड़ी संख्या में भक्तों के आने के कारण इसे लक्खी मेला भी कहते हैं। कैलामाता के मंदिर में दो मूर्तियां हैं। दाहिनी तरफ कैला देवी की मूर्ति है जिन्हें लक्ष्मी नाम से भी जाना जाता है। बायीं तरफ चामुंडा माता की मूर्ति है। कैलादेवी के मंदिर के सामने ही हनुमानजी का मंदिर भी है जिन्हें स्थानीय लोग लांगुरिया कहते हैं।

लोककथा के अनुसार जब कंस ने वासुदेव और देवकी को कारागृह में डाल दिया तो वहीं पर देवकी ने एक बालिका को जन्म दिया। कंस ने जब उस नवजात बालिका को मारना चाहा तो वह हाथ से छूट कर आकाश की ओर उड़ गई। यही योगमाया जब पृथ्वी पर अवतरित हुई तो कैलादेवी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

कपिल मुनि का मेला

बीकानेर जिले के कोलायत में कार्तिक पूर्णिमा को कपिल मुनि का मेला भरता है। स्कंद पुराण के अनुसार महर्षि कर्दन ब्रह्मा के पुत्र थे। उनका विवाह महर्षि मनु की पुत्री से हुआ था, जिनसे कपिल मुनि का जन्म हुआ। कपिल मुनि उच्च धार्मिक ज्ञान प्राप्त कर हिमालय में निवास करने लगे। अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने एक नखलिस्तान देखा। इसकी सुंदरता से मोहित होकर उनकी आत्मा का एक भाग वहीं रहकर दुनिया के लिए तप करने लगा और शेष भाग हिमालय चला गया। उस नखलिस्तान को बाद में कपिलस्तान कहा जाने लगा। समयांतर पर यह स्थान विख्यात हो गया और अनेक भक्तगण यहाँ आने लगे। लेकिन देवताओं ने ईर्ष्यावश इसे रेगिस्तान में छिपा दिया। शिव पार्वती के पुत्र स्कंददेव ने दुःखी मानवता की सहायता हेतु इस स्थान को फिर से खोज निकाला। इस पवित्र झील में स्नान का अत्यधिक महत्व है। माना जाता है कि इससे भक्तों के पाप कट जाते हैं।

ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती का उर्स, अजमेर

सूफी संत ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती 1192 में ईरान से भारत आए थे और अपना शेष जीवन अजमेर में बिताया। 'गरीब नवाज' के नाम से जाने वाले ख्वाजा साहब ने अपना संपूर्ण जीवन मानवता की सेवा में समर्पित कर दिया। अजमेर में उनकी मजार पूरी दुनिया के मुस्लिम धर्मावलम्बियों की आस्था का प्रमुख केन्द्र है। इस्लामिक कैलेण्डर के अनुसार रजब माह की पहली से छठी तारीख तक अजमेर में ख्वाजा साहब का उर्स मनाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि निन्यानवें वर्ष की आयु में रजब की छह तारीख को ख्वाजा मोहनुद्दीन चिश्ती ने अनुभव किया कि अब महबूबे हकीकी से मिलने का वक्त आ गया है। जब ख्वाजा साहब छह दिन तक हुजरे से बाहर नहीं आए तो खदिम भीतर गए। वहाँ उन्होंने पाया कि ख्वाजा साहब की रूह जिस्म से परवाज कर गई है। इसी की याद में प्रतिवर्ष उर्स मनाया जाता हैं।

इस उर्स के दौरान जायरीन उनकी मजार पर फातिया पढ़कर चादर भी चढ़ाते है। अकबर द्वारा निर्मित अकबरी मस्जिद तथा महफिलखाने में कव्वालियों का कार्यक्रम होता है। उर्स चाँद दिखाई देने पर दरगाह शरीफ के बुलन्द दरवाजे पर झण्डा फहराने के साथ प्रारम्भ होता है। रजब की छठी तारीख को कुल की रस्म में जायरीनों पर गुलाब जल के छींटे मारे जाते हैं। इसके तीन दिन बाद नवीं तारीख को बड़े कुल की रस्म अदा की जाती है। उर्स के दौरान अकबर व जहांगीर द्वारा क्रमशः प्रदत्त बड़ी देग व छोटी देग में चावल पकाकर तबर्रुक यानि प्रसाद बांटा जाता है।

ख्वाजा साहब का यह उर्स संपूर्ण भारत में मुस्लिम समुदाय का कदाचित सबसे बड़ा मेला है जो सर्वधर्म समभाव की अनूठी मिसाल पेश करता है।

गलियाकोट का उर्स

डूंगरपुर जिले की सागवाड़ा तहसील के गलियाकोट कस्बे में संत सैयद फखरुद्दीन की मजार है। यह दाऊदी बोहरा सम्प्रदाय की आस्था का प्रमुख केन्द्र है। इसे मजार–ए–फखरी भी कहते है। मुहर्रम की 27वीं तारीख को होने वाले उर्स के मौके पर मजार शरीफ को फूलों से सजाया जाता है और दीपक प्रज्ज्वलित किये जाते हैं। सामूहिक इबादत होती है तथा कुरान शरीफ का पाठ किया जाता है।

बेणेश्वर का मेला

बेणेश्वर मेला राजस्थान के 'आदिवासियों का कुंभ' कहलाता है। इस मेले में आदिवासी संस्कृति के तमाम रंग दिखाई देते है। यह मेला माघ पूर्णिमा (शिवरात्रि) के अवसर पर डूंगरपुर जिले की आसपुर तहसील के नवातपुरा नामक स्थान पर भरता है।

बेणेश्वर नाम भगवान शिव के लिंग पर आधारित है। जनश्रुति है कि यह शिवलिंग स्वयं उद्भूत हुआ। यह स्वयंभू शिवलिंग पाँच स्थानों पर से खण्डित है। इसके बारे में एक कथा प्रचलित है कि नवातपुरा गाँव से एक गाय प्रतिदिन शिव मंदिर में आती और शिवलिंग पर दुग्धाभिषेक कर चली जाती थी। एक दिन ग्वाला परेशान होकर गाय के पीछे चला आया। पीछा करते हुए वह शिव मंदिर पहुंचा जहां गाय को लिंग पर दुग्धाभिषेक करते हुए ग्वाले ने देख लिया। फलतः वह वहाँ से भागी। भागने के प्रयास में खुर से लिंग को धक्का लगा जिससे यह पाँच हिस्सों में टूट गया। यह आश्चर्यजनक है कि टूटने के बावजूद भी इसकी पूजा होती है, क्योंकि टूटी प्रतिमा की पूजा नहीं की जाती है।

इन पारम्परिक मेलों के अतिरिक्त राष्ट्रीय दशहरा मेला– कोटा, सरस मेला (हस्तशिल्प), अंतर्राष्ट्रीय पतंग महोत्सव, धुलण्डी उत्सव, हाथी महोत्सव, तीज व गणगौर मेला, जयपुर लिट्रेचर फेस्टिवल (साहित्यिक उत्सव)–जयपुर, आभानेरी उत्सव–दौसा, थार महोत्सव–बाड़मेर, ऊँट उत्सव–बीकानेर, मरू महोत्सव–जैसलमेर, मारवाड़ उत्सव–जोधपुर, रणकपुर उत्सव, गोड़वाड़ मेला–पाली, ग्रीष्म व शरद समारोह–माउंट आबू, मेवाड़ समारोह–उदयपुर, मीरां महोत्सव–चित्तौड़गढ़, मत्स्य उत्सव–अलवर, चंद्रभागा मेला–झालावाड़ भी बहुत बड़ी संख्या में पर्यटकों को आकृष्ट करते हैं।

क्या आप जानते हैं?

जयपुर के पास भावगढ़ बंध्या गांव में खलकाणी माता गर्दभ मेला आयोजित किया जाता है। इस मेले में गधों और खच्चरों के अतिरिक्त अन्य कोई जानवर नहीं होता। कहा जाता है कि मेले की शुरुआत 500 वर्ष पहले कछवाहों ने चन्द्रा मीणा को युद्ध में हराने की खुशी में की थी।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. भर्तृहरि का मेला किस जिले में भरता है?
   (अ) अलवर (ब) सीकर
   (स) बूंदी (द) उदयपुर
2. बूंदी में कजली तीज का पर्व किस माह में मनाया जाता है?
   (अ) श्रावण (ब) फाल्गुन
   (स) चैत्र (द) भाद्रपद
3. राजस्थान में लठ्ठमार होली कहाँ खेली जाती है?
   (अ) श्री महावीरजी (ब) सालासर
   (स) पुष्कर (द) कैलादेवी
4. निम्नलिखित में कौनसा त्यौहार ईसाई धर्म से संबंधित नहीं है?
   (अ) गुड फ्राइडे (ब) क्रिसमस
   (स) ईस्टर (द) नौरोज

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. सुमेलित कीजिये

मेला	स्थान
1. कल्याणजी	देशनोक
2. कपिल मुनि	सवाईमाधोपुर
3. श्री महावीरजी	कोलायत
4. करणी माता	डिग्गी

2. मुस्लिम समुदाय के तीन पर्वों के नाम लिखिये।
3. 'अबूझ सावा' किस तिथि को माना जाता है?
4. राजस्थान के आदिवासी समाज का सबसे बड़ा मेला कौनसा है?
5. जीणमाता मंदिर राजस्थान के किस जिले में स्थित है?
6. 'चूहों के मंदिर' के नाम से कौनसा मंदिर विख्यात है?
7. खाटूश्यामजी किस भगवान के ही एक रूप माने जाते हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. डिग्गी के कल्याणजी मेले के बारे में बताइये।
2. राजस्थान के विभिन्न भागों में आयोजित होली के स्वरूप पर एक टिप्पणी लिखिये।
3. 'तीज त्यौहार बावरी, ले डूबी गणगौर' इस पंक्ति की व्याख्या कीजिये।
4. ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती के उर्स पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. राजस्थान के चार प्रमुख मेलों पर एक लेख लिखिये।

2. सीकर जिले के दो प्रमुख मेलों का वर्णन कीजिये।
3. गणगौर के उत्सव पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिये।

परियोजनात्मक कार्य :

1. अपने नजदीक आयोजित होने वाले किसी मेले में शामिल हो कर उस पर एक लेख तैयार करें।

कल्पना करें :

1. आप अजमेर की यात्रा पर है, आप वहाँ किन–किन प्रमुख धार्मिक स्थलों की यात्रा करेंगे?

अध्याय

4

राजस्थान के वस्त्र और आभूषण

किसी भी क्षेत्र की वेशभूषा वहां की जलवायु, उपलब्ध संसाधनों व संस्कृति से प्रभावित होती है। अगर हम राजस्थान की बात करें तो तमाम आधुनिकता के बाद भी यहाँ की वेशभूषा पर संस्कृति की अमिट छाप बरकरार है। राजस्थानी वेशभूषा की सबसे खास बात है–इसका रंग– बिरंगापन।

वैसे तो सभी रंग राजस्थान में प्रयुक्त होते हैं, पर लाल रंग में जितनी विविधता व जितने प्रकार मिलते हैं, वह अद्भुत है। इसीलिए तो कहा भी गया है कि ''मारू थारे देश में उपजै तीन रतन, इक ढोला, दूजी मारवण तीजो कसूमल रंग'', (कसूमल अर्थात् लाल)।

पुरुष परिधान

कालीबंगा और आहड़ सभ्यता के काल से ही राजस्थान में सूती वस्त्रों का चलन था। इन स्थानों से उत्खनन में प्राप्त रूई कातने के चक्र और तकली, इस बात के प्रमाण हैं कि उस काल के लोग रूई के वस्त्रों का उपयोग करते थे। जनसाधारण में वस्त्रों का प्रचलन कम था। यह परिपाटी हमें आज भी दिखाई देती है जहां राजस्थान में प्रत्येक गांव में धोती व ऊपर ओढ़ने के ''पछेवड़े'' के सिवाय अन्य वस्त्रों का प्रयोग कम किया जाता है। सर्दी में अंगरखी का प्रयोग प्राचीन परम्परा के अनुकूल है।

विभिन्न प्रमाणों से ज्ञात होता है कि राजस्थान में पुरुषों में छपे हुए तथा काम वाले वस्त्रों को पहनने का प्रचलन था। सिर पर गोलाकार मोटी पगड़ी पल्लों को लटका कर पहनी जाती थी। धोती घुटनों व अंगरखी जांघों तक होती थी। विविध व्यवसाय करने वालों के परिधानों में भी अंतर था।

राजस्थान में चित्रित अनेक कल्पसूत्र सामान्य व्यक्ति से लेकर राजा–महाराजाओं के परिधान पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। इनमें राजाओं के मुकुट और पल्ले वाली पगड़ियां, दुपट्टे, कसीदा की गई धोतियां और मोटे अंगरखे बड़े रोचक दिखाई देते हैं।

मुगलों के सम्पर्क से इन परिधानों में विविधता और परिवर्तन आया। पगड़ियों में विभिन्न शैलियों की पगड़ियां जैसे अटपटी, अमरशाही, उदेशाही, खंजरशाही, शिवशाही, विजयशाही और शाँहजहानी मुख्य हैं। विविध पेशे के लोगों में पगड़ी के पेच और आकार में अंतर था। सुनार आँटे वाली पगड़ी तथा बनजारे मोटी पट्टेदार पगड़ी का प्रयोग करते थे। मौसम के अनुसार रंगीन पगड़ियां पहनने का रिवाज था। मोठड़े की पगड़ी विवाहोत्सव पर, लहरिया श्रावण में, दशहरे पर मदील तथा फूल–पत्ती की छपाई वाली पगड़ी होली पर काम में लाते थे। पगड़ी को चमकीली बनाने के लिए तुर्रे, सरपेच, बालाबन्दी, धुगधुगी, गोसपेच, पछेवड़ी, लटकन, फतेपेच आदि का प्रयोग होता था। उच्च वर्ग के लोग चीरा और फेंटा बांधते थे।

वस्त्रों में पगड़ी का महत्वपूर्ण स्थान था। अपने गौरव की रक्षा के लिए आज भी राजस्थान में यह कहावत प्रचलित है कि ''पगड़ी की लाज रखना''। इसका प्रयोग तेजधूप से सिर की रक्षा के साथ–साथ व्यक्ति की सामाजिक स्थिति और धार्मिक भावना को व्यक्त करने के लिए भी किया जाता है। राजस्थान में पगड़ी द्वारा विवाहादि उत्सवों में सम्मान देने की प्रथा आज भी विद्यमान है।

'अंगरखी' जो सामान्य जन का पहनावा था समय के अनुसार परिवर्तित हुई और इसे विविध नामों से पुकारा जाने लगा। 'अंगरखी' को विविध प्रकार तथा आकार में बनाया जाने लगा। जिन्हें तनसुख, दुतई,

गाबा, गदर, मिरजाई, डोढी, कानो, डगला आदि कहते थे। सर्दी के मौसम में इनमें रूई भरी जाती थी। शरद ऋतु में कंधों पर खेस, शाल, पामड़ी डाल लिये जाते थे।

अब पुरुष वेशभूषा के मामले में लगभग सम्पूर्ण भारत ने पश्चिमी वेशभूषा को अपना लिया है। पैंट कमीज सर्व स्वीकृत परिधान बन गया है, फिर भी राजस्थान का बन्द गला या जोधपुरी कोट अलग से अपना स्थान बनाए हुए है।

स्त्री परिधान

जिस प्रकार पुरुष परिधानों के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं, उसी प्रकार स्त्रियों के परिधानों के प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। प्रारंभिक मध्यकाल में स्त्रियां एक विशेष प्रकार का अधोवस्त्र पहनती थी जो अब राजस्थान में घाघरा नाम से प्रचलित है। पूर्व मध्यकाल तक स्त्रियों की वेशभूषा में अलंकरण, छपाई और कसीदे का काम भी प्रचलित हो गया था। राजस्थान की घुमक्कड़ जाति की और आदिवासी स्त्रियों की वेशभूषा में यह परम्परा आज भी देखी जा सकती है। प्रारम्भ में जो अधोवस्त्र कमर में लपेटा जाता था वही कालान्तर में घाघरा और घेरदार कलियों वाला घाघरा बना। इसका छोटा रूप लहंगा है। ऊपर पहने जाने वाले वस्त्रों में कुर्ती विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आज भी मारवाड़ में इसका प्रचलन है। कुर्ती के नीचे कांचली अर्थात् बांह वाली अंगिया पहनी जाती थी।

साड़ियों के विविध नाम प्रचलित थे यथा– चोल, निचोल, पट, दुकूल, अंसुक, वसन, चीर–पटोरी, चोरसो, ओढ़नी, चूँदड़ी, धोरावाली, साड़ी आदि। चूँदड़ी और लहरिया राजस्थान की प्रमुख साड़ी रही हैं।

स्त्रियों के परिधानों के लिए कई प्रकार के कपड़े प्रचलित थे जिन्हें जामादानी, किमखाब, टसर, छींट, मलमल, मखमल, पारचा, मसरू, चिक, इलायची, महमूदी चिक, मीर–ए–बादला, नौरंगशाही, बहादुरशाही, फरूखशाही छींट, बाफ्ता, मोमजामा, गंगाजली आदि नाम से जाना जाता था।

राजस्थान के वस्त्र उद्योग की प्रमुख विशेषताएं

सवाई जयसिंह द्वारा स्थापित छत्तीस कारखानों में से कुछ वस्त्रों से संबंधित थे। यथा– सींवन खाना, रंगखाना, छापाखाना जहां क्रमशः कपड़े सिले, रंगे एवं छापे जाते थे।

सामान्यतः रंगाई का काम रंगरेज या नीलगर करते हैं। रंगे जाने वाले वस्त्रों में पगड़ियां, साफे, ओढ़नी, घाघरे तथा अंगरखी प्रमुख है। रंगाई के प्रमुख प्रकार पोमचा, लहरिया एवं चूनरी हैं। इनके अलावा रंगरेज चौकड़ी, चौकड़ी का जाल, पतंगा और धनक आदि भाँतें भी रंगते हैं।

पोमचा का अर्थ है कमल फूल के अभिप्राय युक्त ओढ़नी। नवजात शिशु की मां के लिए मातृ पक्ष की ओर से बेटे के जन्म पर पीला पोमचा और बेटी के जन्म पर गुलाबी पोमचा देने की परम्परा है।

श्रावण में विशेषकर तीज के अवसर पर राजस्थान की स्त्रियां लहरिया भांत की ओढ़नी तथा पुरुष लहरिया पगड़ी पहनते हैं। लहरिए एक, दो, तीन, पांच और सात रंगों में बनाए जाते हैं। पांच संख्या शुभ मानी जाती है अतः मांगलिक अवसरों पर पंचरंग लहरिया पहना जाता है।

लहरिये की कई भांते प्रचलित थी। 'प्रतापसाही' लहरिया का उल्लेख साहित्य में मिलता है। जयपुर के रंगरेज और नीलगर 'राजाशाही' लहरिया रंगते थे जिसमें चमकदार गुलाबी रंग की आड़ी रेखाएं बनती थी। यदि आड़ी धारियां केवल एक ओर से हो तो वह लहरिया तथा दोनों ओर से एक–दूसरे को काटती हुई आ रही हो तो मोठड़ा कहलाता है। 'समुद्र लहर' का लहरिया जयपुर के रंगरेज रंगते हैं, इसमें चौड़ी–चौड़ी आड़ी धारियां बनती हैं, समुद्र लहर भी दो, तीन, पांच और सात रंगों में बनता है।

'बद्ध' तकनीक में चुनरी के बंधेज सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। कोई भी मांगलिक कार्य चुनरी के बिना अपूर्ण है। 'जोधाणा' अर्थात् जोधपुर की बनी चुनरी के रंग बड़े चमकीले, टिकाऊ और बंधेज बारीक होती है। सीकर (शेखावाटी) के बंधेज की गिनती भी बारीक बंधेजों में होती है।

पहले राजस्थान में 'मलागिरि' (मलयगिरि) अर्थात् भूरे रंग में रंगा हुआ वस्त्र वर्षों तक सुगंधित रहता था। सिटी पैलेस, जयपुर में रखी हुई महाराजा सवाई रामसिंह द्वितीय की अंगरखियां अभी तक सुगंधित हैं। 'अमोवा' का प्रयोग शिकारी करते थे जो खाकी रंग से मिलता–जुलता था।

आज छपाई का काम संपूर्ण राजस्थान में होता है। पीपाड़, जोधपुर एवं पाली में बड़े एवं सशक्त अलंकरण छपते हैं, जिनमें लाल, काले, नीले और हरे रंगों की प्रमुखता रहती है। बाड़मेर अजरख पद्धति से छपे वस्त्रों के लिए विख्यात है। लाल और नीले रंग में छपने वाले अजरख की विशेषता है दोनों ओर की छपाई। इसके अलंकरण ज्यामितीय होते हैं और तुर्की टाइलों से बहुत मिलते हैं। आहड़ और भीलवाड़ा में मुख्य रूप से लाल और काले रंग में चुनरी की छपाई होती है, पर ओढ़नी को आकर्षक बनाने के लिए तोता, मोर या ऐसे ही फूल, पत्ती, पीले, गुलाबी और हरे रंग से बना देते हैं। अकोला में बड़े पैमाने पर छपाई के कारण यह कस्बा 'छीपों का अकोला' कहलाता है। बगरू (जयपुर) अपने स्याह बैगर (काला लाल) छपाई के लिए विख्यात है। जिसमें मटिया रंग की जमीन पर लाल–काले में फूल–पत्ती, पशु–पक्षी और अनेक प्रकार के संयोजन बनाये जाते है।

सांगानेर (जयपुर) में अन्य स्थानों से भिन्न प्रकार के अत्यन्त ही उत्तम प्रकार के सुरुचिपूर्ण अलंकरण छपते हैं। यहाँ के छीपों का प्रमुख योगदान सुन्दर, सौम्य और मोहक रंगों तथा लयात्मक बूटियों में है। पंखुड़ियों के घुमाव, पत्तियों के झुकाव एवं फूलों की बारीकी देखकर प्रतीत होता है कि मानों ठप्पा बनाने वाले खरादी ने इन फूलों का वैज्ञानिक अध्ययन किया होगा।

क्या आप जानते हैं?

सांगानेरी हैण्डब्लाक प्रिंट, बगरू हैण्डब्लॉक प्रिंट तथा कोटा डोरिया को हैण्डीक्राफ्ट से संबंधित श्रेणी में भौगोलिक संकेतक प्राप्त हो चुका है। भौगोलिक संकेतक औद्योगिक संपत्ति का एक पहलू है, जो किसी उत्पाद के देश या उत्पत्ति स्थान का हवाला देते हैं। जो ऐसी गुणवत्ता एवं विशिष्टता का आश्वासन देते हैं, जिनका संबंध अनिवार्य रूप से उस परिभाषित भौगोलिक स्थान, क्षेत्र या देश के साथ होता है।

बुनकरों द्वारा उत्कृष्ट कपड़े में कैथून, माँगरोल (बारां) का मसूरिया, तनसुख, मथानियाँ (जोधपुर) की मलमल, बीकानेर–जैसलमेर की ऊन विविध मूल्यवान परिधान बनाने के काम आते थे। टुकड़ी मारवाड़ के देशी कपड़ों में सर्वोत्तम मानी जाती थी। यह जालोर तथा मारोठ कस्बों में अच्छी बनती थी।

वस्त्रों को सजाने के लिए 'चटापटी' के अंतर्गत किसी आकृति को कपड़े में काट कर, दूसरे कपड़े पर टांक दिया जाता था। इसका प्रयोग जानवरों के वस्त्रों–ऊँट, बैल आदि की झूले, बहली, रथ आदि के परदे और तम्बू कनातों को सजाने के लिए किया जाता है।

वस्त्रों को भड़कीला बनाने के लिए गोटा टांकते हैं। सूती ताने पर बादले के बाने से बुनी बेल को गोटा कहते हैं। गोटा, लप्पा, लप्पी, बांकड़ी आदि इसके विविध प्रकार है। चौड़ाई के अनुसार गोटा चौमास्या, आठमास्या आदि प्रकार का होता है। चौड़ा गोटा लप्पा और कम चौड़ाई वाला लप्पी कहलाता है। राजस्थान में सीकर जिले का खण्डेला कस्बा गोटा उद्योग का प्रसिद्ध केन्द्र है।

सीकर व झुंझुनूं की स्त्रियां लाल गोटे की ओढ़नियों पर कशीदे का काम करती हैं, जिनमें ऊँट, मोर, बैल, हाथी, घोड़े बने होते हैं। शेखावाटी में अलग–अलग रंग के कपड़ों को विविध डिजायनों में काट कर कपड़े पर सिलाई की जाती है जिसे पेचवर्क कहते हैं।

वस्त्रों को सजाने के लिए रेशम, कलाबूत और बादले से कढ़ाई की जाती है। पूर्वी एवं दक्षिणी

राजस्थान में उल्टी बखिया, चेन और लम्बे छोटे टांकों से बड़ी बारीक ढंग की कढ़ाई होती है। पुरुषों के वस्त्र जामा, चुगा, अंगरखी आदि पर कढ़ाई की जाती है।

पश्चिमी–उत्तरी राजस्थान में चमकीले रंग के रेशम से लाल, काले रंग के कपड़े पर मोटे–मोटे टांकों से भराव करके, बीच–बीच में शीशे के टुकड़ों का जड़ाव होता जो वस्त्रों को भड़कीला बना देता है। जैसलमेर, बाड़मेर आदि क्षेत्रों में ऐसी कढ़ाई आज भी प्रचलित है।

आभूषण

सुंदर दिखाई देना प्रत्येक मनुष्य की चाह है और राजस्थान के निवासी इसके अपवाद नहीं है। स्त्रियों में यह चाह कदाचित पुरुषों की तुलना में थोड़ी अधिक होती है। राजस्थान में प्राचीन काल से आभूषणों के प्रयोग के प्रमाण मिलते हैं। कालीबंगा और आहड़ सभ्यता के काल में स्त्रियां मिट्टी और चमकदार पत्थरों के आभूषण धारण करती थी। कुछ शुंगकालीन मिट्टी के खिलौनों और फलकों से ज्ञात होता है कि स्त्रियां हाथों में चूड़ियां और कड़े, पैरों में खड़वे और गले में लटकन वाले हार पहनती थी। ये सोने, चांदी, मोती और रत्नों से निर्मित थे। निर्धन स्त्रियां कांसा, पीतल, तांबा, कौड़ी, सीप और मूंगे के गहनों से खुद को सजाती थी। हाथी–दांत से निर्मित आभूषण भी प्रयुक्त किये जाते थे।

मध्यकाल तक आभूषणों की बनावट में काफी परिवर्तन आए। तत्कालीन साहित्य और शिल्प में इसकी अनेक बानगियां देखी जा सकती हैं। ओसियां, नागदा, देलवाड़ा, कुम्भलगढ़ आदि की मूर्तियों में कुंडल, हार, बाजूबंद, कंकण, नूपुर, मुद्रिका आदि के अनेक रूप और आकार–प्रकार दृष्टिगत होते हैं। आभूषणों के ये प्रकार वर्तमान काल तक प्रचलित हैं।

स्त्रियों द्वारा सिर पर बांधे जाने वाले गहने को बोर, बोरला, शीशफूल, रखड़ी और टिकड़ा कहा जाता है। कण्ठ में धारण किये जाने वाले आभूषण हैं– थमण्यो, थेड्यो, आड़, मूँठया, झालरा, ठुस्सी। गले में और वक्ष पर धारण किए जाने वाले आभूषणों में तुलसी, बजट्टी, हालरो, हाँसली, तिमणियाँ, पोत, चन्द्रहार, कंठमाला, हमेल, हांकर, मांदल्या, चपकली, हंसहार, सरी, कण्ठी आदि प्रमुख हैं। कानों में पहने जाने वाले आभूषणों में कर्णफूल, पीपलपत्रा, फूल झूमका, अंगोट्या, झेला, लटकन, टोटी आदि और हाथों में कड़ा, कंकण, मोकड़ी (लाख से निर्मित चूड़ी), कातर्या (काँच की चूड़ी), नोगरी, चांट, गजरा, गोखरू, चूड़ी प्रमुख है। इसी प्रकार उंगलियों में बींटी, दामणा, हथपान, छड़ा तथा पांवों में कड़ा, लंगर, पायल, पायजेब, घुंघुरू, नूपुर, झाँझर, नेवरी आदि पहने जाते हैं। नाक में नथ, बेसर, बारी, भोगली, कांटा, चूनी, चोप, भँवरकड़ी आदि और कमर में कन्दोरा या करधनी पहने जाते है। दांतों में सोने के पत्तर की खोल बनाकर चढ़ाई जाती है जिसे रखन कहते हैं। किसी स्त्री द्वारा दांतों के बीच में सोने की कील जड़वाना चूंप कहलाता है।

राजस्थान में पुरुष भी अनेक प्रकार के आभूषण धारण करते रहे हैं। कानों में मुरकियां, लोंग, झाले, छैलकड़ी, हाथों में बाजूबंद, कड़ा, नरमुख और उंगलियों में अंगूठी, बीठिया व मूंदड़ियां आदि पहनने का जो रिवाज था वो अब काफी कम हो गया है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में अब भी ये आभूषण पहने जाते हैं।

बच्चों को भी विविध प्रकार के आभूषण पहनाये जाते हैं। बच्चों के कण्ठ में हँसुली, हाथ और पाँवों में कड़े और कानों में मोती या लूंग पहनाये जाते हैं। हाथ और पाँवों के कड़ों को 'कडूल्या' कहते हैं। पाँवों में पहनाई जाने वाली पतली साँकली जिसमें घूंघरियाँ फँाद दी जाती हैं, 'झाँझर्या' या 'झाँझरिया' कहलाती है। इसे 'पैंजणी' भी कहते हैं। राती छींतरी में सोने का खेरा, मूँग का आखा और रतचनण बांधकर तैयार किया गया बच्चों के गले या कण्ठ का श्रृंगार, जिससे रत्यावड़ी (गाँठगूमड़े) नहीं हों, 'नजर्या' कहलाता है। बच्चों का कान छिदवा करके सोने या जस्ते की 'कुड़क' पहना दी जाती है। बाद में

इन्हीं छिद्रों में मोती, लूँग, गुड़दा, मुरकी या बाली आदि आभूषण पहना दिए जाते हैं। ठोस सोने की कुड़क 'मुरकी' कहलाती है।

स्त्री के राजस्थानी आभूषण

राजस्थान में आभूषण निर्माण की भी बहुत समृद्ध परम्परा रही है। राजस्थान की राजधानी जयपुर की स्थापना के समय इसके संस्थापक के मनो–मस्तिष्क में आभूषणों की कितनी महत्ता थी इसका भान इस बात से होता है कि उन्होंने जयुपर के प्रमुख बाजार का नाम जौहरी बाजार रखा। यहाँ की सबसे प्रमुख चौपड़ का नाम माणक चौक रखा क्योंकि माणक को रत्नों का सरताज माना जाता है। वर्तमान में जयपुर अपने आभूषणों और रत्न व्यवसाय के लिए विश्व प्रसिद्ध है। राजस्थान के कुछ नगर अपनी विशिष्ट आभूषण निर्माण शैली के लिए भी प्रसिद्ध हैं। नाथद्वारा श्रीनाथजी की नगरी है जो अपने चांदी के आभूषणों 'तारकशी' (धातु के बारीक तारों से निर्मित) के लिए प्रसिद्ध है। इसी प्रकार प्रतापगढ़ की थेवा कला जिसमें कांच के बीच सोने का बारीक काम किया जाता है, पूरे देश में अपनी अलग पहचान रखती है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. 'कसूमल' कौन सा रंग होता है?
   (अ) लाल (ब) काला
   (स) सफेद (द) हरा
2. सीकर जिले का कौनसा स्थान गोटा उद्योग के लिए प्रसिद्ध है?
   (अ) नेछवा (ब) पिपराली
   (स) खंडेला (द) खूड़
3. बोरला नामक आभूषण स्त्रियां कहां पर धारण करती हैं?
   (अ) नाक (ब) कान
   (स) हाथ (द) सिर
4. दांतों के बीच में सोने की कील जड़वाना क्या कहलाता है?
   (अ) चूंप (ब) बारी
   (स) बोरला (द) दामणा
5. थेवा कला किस जिले से संबंधित है?
   (अ) प्रतापगढ़ (ब) उदयपुर
   (स) चूरू (द) झालावाड़

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. 'मुरकी' से आप क्या समझते है?
2. स्त्रियों द्वारा गले में पहने जाने वाले चार आभूषणों के नाम बताइये।
3. 'पोमचा' क्या है?
4. स्त्रियों द्वारा लहरिया भांत की ओढ़नी किस माह में पहनी जाती है?
5. 'पेचवर्क' से आप क्या समझते है?
6. 'पैंजणी' आभूषण के बारे में बताइये।
7. 'तारकशी' के लिए कौनसा स्थान प्रसिद्ध है?
8. राजस्थान में वस्त्र छपाई के लिए दो बड़े केन्द्रों का नाम बताइये।
9. सुमेलित कीजिए

आभूषण	धारण करने का स्थान
1. ठुस्सी	कान
2. पीपलपत्रा	अंगुली
3. दामणा	सिर
4. बोरला	कण्ठ

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. अंगरखी के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिये।
2. स्त्रियों के परिधान हेतु प्रचलित विभिन्न कपड़ों के नाम बताइये।
3. लहरिये के विभिन्न प्रकारों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
4. बच्चों के विविध आभूषणों का उल्लेख कीजिये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. राजस्थान के वस्त्र उद्योग की प्रमुख विशेषताएं बताइये।
2. राजस्थानी पुरुष परिधानों पर एक लेख लिखिये।
3. राजस्थान के स्त्री व पुरुषों द्वारा धारण किये जाने वाले आभूषणों पर एक लेख लिखिये।

परियोजनात्मक कार्य :

1. वस्त्र उद्योग से संबंधित भारत के प्रमुख केन्द्रों का पता करके उन्हें मानचित्र में अंकित कीजिए।

2. राजस्थानी वस्त्र उद्योग की छपाई, रंगाई, बुनाई से संबंधित नमूनों को संग्रहित करके उन्हें तैयार करने की विधियां ज्ञात कीजिये।

कल्पना करें :

1. आप एक महिला हैं और अपने देवर की बारात में जा रही हैं, आप कौन–कौन से आभूषण पहनेंगी?

अध्याय

5

राजस्थानी चित्रकला एवं लोककलाएं

चित्रकला –राजस्थान की चित्रकला का क्षेत्र अत्यन्त समृद्ध है। यहाँ चित्रकला की न केवल विविध शैलियां प्रचलित थीं वरन ये चित्र कागजों, कपड़ों, हवेलियों, मंदिरों व महलों की दीवारों पर अर्थात् भिन्न–भिन्न कैनवास पर सजे हुए मिलते हैं।

राजस्थान में आलनिया, दर्रा (कोटा), बैराठ (जयपुर) तथा दर (भरतपुर) नामक स्थानों से शैलाश्रयों (गुफाओं) में आदिमानव द्वारा बनाये रेखांकन प्रदेश की प्रारम्भिक चित्रण परम्परा को दर्शाते हैं। वी.एस. वाकणकर ने राजस्थान में 1953 में कोटा में चम्बल घाटी और दर्रा, झालावाड़ के निकट कालीसिंध घाटी और अरावली में माउंट आबू तथा ईडर में चित्रित शैलाश्रयों की खोज की। राजस्थान में सर्वाधिक प्राचीन उपलब्ध चित्रित ग्रंथ 1060 ई. में रचित ओध निर्युक्ति वृत्ति एवं दस वैकालिका सूत्र चूर्णि जैसलमेर भण्डार में मिले हैं।

विशुद्ध राजस्थानी चित्रकला का जन्म हम 1500 ई. के आस–पास मान सकते हैं। राजस्थानी चित्रकला की जन्मभूमि मेदपाट (मेवाड़) है, जो अजंता चित्रशैली से पूर्णतया प्रभावित है। राजस्थानी चित्रकला पर प्रारम्भ में जैन शैली, गुजरात शैली और अपभ्रंश शैली का प्रभाव था, किन्तु बाद में यह मुगल चित्रकला से प्रभावित हुई।

राजस्थानी चित्रकला का सबसे पहला वैज्ञानिक विभाजन आनन्द कुमार स्वामी ने राजपूत पेंटिंग्स नामक पुस्तक में सन् 1916 में प्रस्तुत किया। कुमार स्वामी, ओ.सी.गांगुली तथा हैवेल ने इसे 'राजपूत चित्रकला' कहा है। डब्ल्यू. एच. ब्राउन ने भी अपने ग्रंथ इण्डियन पेंटिंग्स में इस प्रदेश की चित्रकला को 'राजपूत कला' नाम दिया है। रायकृष्णदास ने इन मतों का खण्डन कर इसे 'राजस्थानी चित्रकला' नाम दिया। राजस्थान की चित्रकला की विभिन्न शैलियों पर अनेकों विद्वानों ने पुस्तकें प्रकाशित कर इसके प्रारूप को स्थापित करने में सहयोग दिया है। जिनमें मेवाड़ पर सर्वश्री डॉ. मोतीचन्द्र, श्रीधर अंधारे, डॉ. आर.के. वशिष्ठ एवं किशनगढ़ पर श्री एरिक डिकिन्सन एवं डॉ. फैयाजअली, बूंदी–कोटा पर सर्वश्री प्रमोदचन्द्र, डब्ल्यू. जी. आर्चर एवं महाराजा ब्रजेन्द्रसिंह कोटा के नाम प्रमुख हैं।

राजस्थानी चित्रकला की विशेषताएं

1. लोक जीवन से जुड़ाव, भाव प्रवणता, विषय–वस्तु की विविधता, विभिन्न रंगों का संयोजन, प्राकृतिक परिवेश, देश काल से अनुरूपता आदि विशेषताओं के आधार पर राजस्थानी चित्रकला की विशिष्ट पहचान है।

2. धार्मिक और सांस्कृतिक स्थलों की चित्रकला में लोक जीवन की भावनाओं की बहुलता, भक्ति और श्रृंगार का सजीव चित्रण तथा चटकीले व चमकदार रंगों का संयोजन विशेष रूप से दिखाई देता है।

3. राजस्थान की चित्रकला यहाँ के महलों, किलों, मंदिरों और हवेलियों में अधिक देखी जा सकती है।

4. राजस्थानी चित्रकारों ने विभिन्न ऋतुओं का श्रृंगारिक चित्रण कर उनके मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का अंकन किया है।

5. प्राकृतिक सौंदर्य के साथ–साथ नारी सौंदर्य का सजीव चित्रण राजस्थानी चित्रकला को एक अलग पहचान देता है।

6. राजस्थानी चित्रकला राजा–महाराजाओं, राजपुत्रों व सामन्तों के संरक्षण में फूली–फली है।

राजस्थानी चित्रकला की शैलियों का वर्गीकरण

राजस्थानी चित्रकला की शैलियों को भौगोलिक व सांस्कृतिक आधार पर चार प्रमुख वर्गों एवं अनेक उपवर्गों में बांटा गया है, जो हैं :–

1. मेवाड़ शैली : चावंड शैली, उदयपुर शैली, नाथद्वारा शैली, देवगढ़ उपशैली, सावर उपशैली, शाहपुरा उपशैली तथा बनेड़ा, बागौर, बेगूँ, केलवा आदि ठिकाणों की कला।

2. मारवाड़ शैली : जोधपुर शैली, बीकानेर शैली, किशनगढ़ शैली, अजमेर शैली, नागौर शैली, सिरोही शैली, जैसलमेर शैली तथा घाणेराव, रियाँ, भिणाय, जूनियाँ आदि ठिकाणा कला।

3. हाड़ौती शैली : बूंदी शैली, कोटा शैली, झालावाड़ उपशैली।

4. ढूंढाड़ शैली : आमेर शैली, जयपुर शैली, शेखावाटी शैली, अलवर शैली, उणियारा उपशैली तथा झिलाय, ईसरदा, शाहपुरा, सामोद आदि ठिकाणा कला।

राजस्थानी चित्रकला

1. मेवाड़ शैली

राजस्थानी चित्रकला का प्रारम्भिक और मौलिक रूप मेवाड़ शैली में मिलता है। मेवाड़ शैली के अंतर्गत पोथी ग्रंथों का अधिक चित्रण हुआ है। 1260 ई. का श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णि' नामक चित्रित ग्रन्थ इस शैली का प्रथम उदाहरण है जो तेजसिंह के राज्यकाल में चित्रित हुआ।

यही शैली 1423 ई. की देलवाड़ा में लिखी गयी सुपासनाह चरियम् पुस्तक में दिखायी देती है। डगलस बैरेट एवं बेसिल गे ने 'चौरपंचाशिका शैली' का उद्गम मेवाड़ में माना है। महाराणा कुंभा का काल कलाओं के उत्थान की दृष्टि से स्वर्णिम युग माना जाता है। उदयसिंह (1535–1572 ई.) के काल

में बने चित्रों में भागवत पुराण का 'परिजात अवतरण' (1540 ई.) मेवाड़ के चित्रकार नानाराम की कृति है। महाराणा प्रताप के समय छप्पन की पहाड़ियों में स्थित राजधानी चावण्ड में भी चित्रकला का विकास हुआ। इस काल की प्रसिद्ध कृति 'ढोलामारू' (1592 ई.) है जो राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित है।

उदयपुर शैली

महाराणा अमरसिंह प्रथम के शासनकाल में चावण्ड चित्रशैली का अधिक विकास हुआ। महाराणा अमरसिंह के समय में 'रागमाला' (1605 ई.) मेवाड़ शैली का प्रमुख ग्रंथ है। इन चित्रों को निसारदीन नामक चित्रकार ने चित्रित किया। मेवाड़ में राणा जगतसिंह प्रथम का काल मेवाड़ की लघु चित्रशैली का स्वर्णकाल कहा जाता है। इस काल में रसिकप्रिया, गीतगोविन्द, भागवत् पुराण एवं रामायण इत्यादि विषयों पर लघु चित्रों का निर्माण हुआ। राणा जगतसिंह कालीन प्रमुख चित्रकार साहबदीन और मनोहर रहे हैं। महाराणा जगतसिंह ने राजमहल में 'चितेरों की ओवरी' नाम से एक चित्रशाला की स्थापना की जिसे 'तस्वीरां रो कारखानों' के नाम से पुकारा गया।

राणा जयसिंह के काल में लघु चित्रों का निर्माण अधिक हुआ। महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के काल में गीतगोविन्द, बिहारी सतसई, सुन्दर श्रृंगार, मुल्ला दो प्याजा के लतीफे और कलीला–दमना ग्रन्थों पर आधारित चित्र प्रमुख हैं।

मेवाड़ शैली में पुरुषाकृति गठीली मूँछों से युक्त भरे चेहरे, विशाल नयन, खुले हुए अधर, छोटी ग्रीवा तथा छोटा कद, उदयपुरी पगड़ी व लंबा साफा तथा स्त्रियों का चित्रांकन सरलता के भाव से युक्त, मीनाकृत आँखें, सीधी लंबी नाक तथा भरी हुई दोहरी चिबुक, ठिगना कद, लूगड़ी–घाघरे और कंचुकी तथा ठेठ राजस्थानी आभूषणों से सज्जित रहा है। प्रकृति का संतुलित चित्रण मेवाड़ चित्रकला की प्रमुख विशेषता रही है। अधिकतर लाल, पीले, हरे, नीले, सफेद आदि सूचक रंगों का प्रयोग किया गया है।

नाथद्वारा शैली

मेवाड़ शैली का दूसरा प्रमुख दौर नाथद्वारा शैली में दिखाई देता है। नाथद्वारा में पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की भारत प्रसिद्ध प्रमुख पीठ है, जो श्रीनाथजी की भक्ति का प्रमुख केन्द्र होने के कारण मेवाड़ की चित्र परम्परा में नया अध्याय जोड़ता है। यह उदयपुर शैली एवं ब्रजशैली का समन्वित रूप है। नाथद्वारा शैली की मौलिक देन श्रीनाथजी के स्वरूप के पीछे सज्जा के लिए बड़े आकार के कपड़े के पर्दे पर बनाए गए चित्र 'पिछवाईयों' के नाम से जाने गए। 18वीं सदी के इन चित्रों में कृष्ण चरित्र की बहुलता के कारण यशोदा, नन्द, बाल–ग्वाल, गोपियाँ तथा वल्लभ संप्रदाय के संतों का चित्रांकन विशेष रूप से हुआ है। इसमें हरे–पीले रंगों का अधिक प्रयोग हुआ है। इसकी अन्य विशेषताओं में केन्द्र में श्रीनाथजी की आकृति, गायों का मनोरम दृश्य, आसमान में देवताओं का अंकन, पृष्ठभूमि में सघन वनस्पति, कदली वृक्षों की प्रधानता आदि है।

नाथद्वारा शैली के चित्रकारों में बाबा रामचंद्र के अतिरिक्त नारायण, चतुर्भुज, रामलिंग, चम्पालाल, घासीराम, तुलसीराम आदि के नाम भी प्रसिद्ध हैं। महिला चित्रकारों में कमला एवं इलायची का नाम मिलता है।

देवगढ़ शैली

महाराणा जयसिंह के राज्यकाल में रावत द्वारिकादास चूँडावत ने देवगढ़ ठिकाना 1680 ई. में स्थापित किया, इसके पश्चात् यहीं से देवगढ़ शैली का जन्म हुआ। यहाँ के सामंत 'सौलहवें उमराव' कहलाते थे। देवगढ़ शैली मारवाड़, जयपुर एवं मेवाड़ शैली का समन्वित रूप है। इसे सर्वप्रथम 'डॉ. श्रीधर अंधारे' द्वारा प्रकाश में लाया गया। इस शैली के प्रमुख चित्रकारों में बगता, कँवला प्रथम, कँवला द्वितीय, हरचंद, नंगा, चोखा एवं बैजनाथ हैं। प्राकृतिक परिवेश, शिकार के दृश्य, अन्तःपुर, राजसी ठाठ–बाठ,

श्रृंगार, सवारी आदि इसके प्रमुख विषय रहे हैं। इसमें पीले रंग की बहुलता रही है। इस शैली के भित्ति चित्र 'अजारा की ओवरी', 'मोती महल' आदि में देखने को मिलते हैं।

2. मारवाड़ शैली

मारवाड़ क्षेत्र की चित्रकला का वैभव मूलतः जोधपुर की दरबारी शैली के रूप में देखा जा सकता है, किन्तु इसके अतिरिक्त जैसलमेर, नागौर एवं अजमेर के कुछ भागों में भी इसका व्यापक प्रभाव दृष्टिगत होता है।

तिब्बती इतिहासकार लामा तारानाथ ने सातवीं सदी में मारू देश में चित्रकार श्रृंगधर का उल्लेख किया है, जिसने पश्चिमी भारत में यक्ष शैली को जन्म दिया। इसके प्रारम्भिक चित्रावशेष हमें प्रतिहारकालीन ओध निर्युक्ति वृत्ति में मिलते हैं। यहाँ मारवाड़ी साहित्य के प्रेमाख्यानों पर आधारित चित्रण अधिक हुआ है।

जोधपुर शैली

मारवाड़ में कला एवं संस्कृति को नवीन परिवेश देने का श्रेय 'मालदेव' को जाता है। इस काल की प्रतिनिधि चित्रशैली के उदाहरण हमें 'चौखेलाव महल' तथा चित्रित उत्तराध्ययन सूत्र से प्राप्त होते हैं। सन् 1610 में लिखित एवं चित्रित भागवत मेवाड़ एवं मारवाड़ की अनेक विशेषताओं से युक्त है।

सन् 1623 में कलाकार वीरजी द्वारा पाली के प्रसिद्ध वीर पुरुष विठ्ठलदास चाँपावत के लिए 'रागमाला चित्रावली' चित्रित की गई। लघु–चित्रों में छोटे आकार की इकहरी वसली पर निर्मित ये चित्र शुद्ध राजस्थानी शैली में अंकित हैं।

जोधपुर शैली में एक मोड़ महाराजा जसवन्तसिंह के समय में आया। कृष्ण चरित्र की विविधता और मुगल शैली का प्रभाव इस काल के चित्रों में दिखाई देता है। महाराजा अजीतसिंह के शासन काल में सम्भवतः मारवाड़ शैली के सबसे अधिक सुन्दर एवं प्राणवान चित्र बने। जिनमें सामन्ती संस्कृति का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया। महाराजा अभयसिंह के राज्यकाल में चित्रकार डालचन्द को विशेष ख्याति प्राप्त हुई। इनके चित्र 'महाराजा अभयसिंह नृत्य देखते हुए' (1725 ई.) मेहरानगढ़ संग्रहालय, जोधपुर एवं कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में सुरक्षित देखे जा सकते हैं।

महाराजा मानसिंह (1803–1843 ई.) ने मारवाड़ की चित्रकला को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी महाराजा ने नाथों से सम्बन्धित असंख्य चित्र बनवाये। इस समय के प्रमुख चित्रकारों में अमरदास भाटी, दाना भाटी, शंकरदास, माधोदास, रामसिंह भाटी, शिवदास इत्यादि प्रमुख है। दाना भाटी द्वारा निर्मित चित्रों में मारवाड़ की चित्रण परम्परा का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता है।

मारवाड़ (जोधपुर) शैली के विषयों में प्रेमाख्यान प्रधान विषय रहा है। इन प्रेमाख्यानों में ढोला–मरवण, मूमल–महेन्द्रा, रूपमति–बाजबहादुर, कल्याण–रागिनी प्रसिद्ध रहे हैं। जोधपुर शैली के पुरुष लंबे–चौड़े, गठीले बदन के तथा उनके गल–मुच्छ, ऊँची पगड़ी, राजसी वैभव के वस्त्राभूषण और स्त्रियों की वेशभूषा में ठेठ राजस्थानी लहँगा, ओढ़नी और लाल फुंदनों का प्रयोग प्रमुख रूप से हुआ है। बादाम–सी आँखें और ऊँची पाग जोधपुर शैली की अपनी निजी देन है। मारवाड़ शैली में लाल, पीले रंग का बाहुल्य है, जो स्थानीय विशेषता है। प्रकृति का चित्रण मारवाड़ के परिवेश के अनुकूल हुआ है। चित्रों में खंजन पक्षी को भी बखूबी दर्शाया गया है।

बीकानेर शैली

बीकानेर शैली का प्रादुर्भाव 16वीं शती के अन्त में माना जाता है। राव रायसिंह के समय चित्रित 'भागवत पुराण' में इस शैली के प्रारंभिक चित्र मिलते हैं। बीकानेर नरेश रायसिंह मुगल कलाकारों की दक्षता से प्रभावित होकर कुछ को अपने साथ ले आये। इनमें उस्ता अली रजा व उस्ता हामिद रुकनुद्दीन

प्रमुख थे। इन्हीं दोनों कलाकारों की कलाकृतियों से चित्रकारिता की बीकानेर शैली का उद्‌भव हुआ।

यहाँ दो परिवारों का चित्रकला पर विशेष प्रभाव रहा। मथेरण परिवार पारम्परिक जैन मिश्रित राजस्थानी शैली के चित्र बनाने में सिद्धहस्त था। मुगल दरबार से उस्ता परिवार मुगल शैली के चित्र बनाने में कुशल था। इस परिवार ने ऊँट की खाल पर सोने का चित्रण करके 'उस्ता कला' विकसित की। अकबर ने स्वयं अपने दरबार में इन उस्ता कलाकारों को सम्मानजनक स्थान प्रदान किया।

बीकानेर शैली का विशुद्ध रूप अनूपसिंह के राज्यकाल में दिखाई देता है। उनके समय के प्रसिद्ध कलाकारों में रामलाल, अलीरजा, हसन आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। महाराजा अनूपसिंह के समय में उस्ता परिवार ने हिन्दू कथाओं, संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी काव्यों को आधार बनाकर सैकड़ों चित्र बनाये। इस समय यह शैली चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। 18वीं सदी में ठेठ राजस्थानी शैली में चित्र बने उनकी रंगत ही अलग है।

बीकानेर शैली में मुगल स्कूल के मिश्रित प्रभाव के फलस्वरूप इकहरी तन्वंगी कोमल ललनाओं का अंकन नीले, हरे और लाल, बैंगनी, जामुनी, सलेटी रंगों का प्रयोग, शाहजहाँ और औरंगजेब शैली की पगड़ियों के साथ ऊँची मारवाड़ी पगड़ियाँ, ऊँट, हरिन, बीकानेरी रहन–सहन और राजपूती संस्कृति की छाप विशिष्ट रूप से देखने को मिलती है। बरसते बादलों में से सारस–मिथुनों की नयनाभिराम आकृतियाँ भी इसी शैली की विशेषता है। यहाँ फव्वारों, दरबार के दृश्यों आदि में दक्षिण शैली का प्रभाव दिखाई देता है।

किशनगढ़ शैली

किशनसिंह ने सन् 1609 ई. में किशनगढ़ राज्य की नींव डाली। राज परिवार पर वल्लभ सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण राधा–कृष्ण की लीलाओं का साकार स्वरूप चित्रण के माध्यम से बहुलता से हुआ।

राजा सावंतसिंह का काल (1748–1764 ई.) किशनगढ़ शैली की दृष्टि से स्वर्णयुग कहा जा सकता है। सावंतसिंह नागरीदास के उपनाम से प्रसिद्ध थे। इनके काव्य प्रेम, गायन, बणी–ठणी के संगीत प्रेम और कलाकार मोरध्वज निहालचंद के चित्रांकन ने इस समय किशनगढ़ की चित्रकला को सर्वोच्च स्थान पर पहुँचा दिया। बणी–ठणी को एरिक डिकिन्सन ने भारत की 'मोनालिसा' कहा है। भारत सरकार ने 1973 ई. में बणी–ठणी पर डाक टिकट जारी किया था।

इस चित्र शैली में पुरुषाकृति में लम्बा इकहरा नील छवियुक्त शरीर, मोती जड़ित श्वेत या मूँगिया पगड़ी, उन्नत ललाट, खंजनाकृत कर्णान्त तक खिंचे विशाल अरुणाभ नयन और नारी आकृति में तन्वंगी, लम्बी, गौरवर्ण, नुकीली चिबुक, सुराहीदार गर्दन, पतली कमर, लम्बी कमल पंखुड़ी सी आँखें चित्रित की गई है। दूर–दूर तक फैली झील, उनमें केलि करते हंस, बतख, सारस, तैरती नौकाएं, केले के गाछ एवं रंग–बिरंगे उपवन, चाँदनी रात में राधाकृष्ण की केलि–क्रीड़ाएं, प्रातःकालीन और संध्याकालीन बादलों का सिन्दूरी चित्रण किशनगढ़ शैली की विशेषताएं हैं। बणी–ठणी अर्थात् राधा के रूप–सौन्दर्य का चित्रांकन इस शैली का विशेष आकर्षण रहा है। यहाँ के प्रमुख रंग सफेद, गुलाबी, सलेटी और सिंदूरी है।

किशनगढ़ शैली के चित्रकारों में नानकराम, सीताराम, सूरध्वज, मूलराज, मोरध्वज निहालचन्द, बदनसिंह, रामनाथ, सवाईराम, लालडी दास के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अजमेर शैली

राजनैतिक उथल–पुथल तथा धार्मिक प्रभावों के कारण अजमेर शहर में जहाँ दरबारी एवं सामंती संस्कृति का अधिक प्रभाव रहा, वहीं गाँवों में लोक–संस्कृति तथा ठिकाणों में राजपूत संस्कृति का वर्चस्व बना रहा।

भिणाय, सावर, मसूदा, जूनियाँ जैसे ठिकाणों में चित्रण की परम्परा ने अजमेर–शैली के विकास और

संवर्द्धन में विशेष योगदान दिया। जूनियाँ का चाँद, सावर का तैय्यब, नाँद का रामसिंह भाटी, खरवा से जालजी एवं नारायण भाटी, मसूदा से माधोजी एवं राम तथा अजमेर के अल्लाबक्स, उस्ना और साहिबा स्त्री चित्रकार विशेष उल्लेखनीय है। जूनियाँ के चाँद द्वारा अंकित 'राजा पाबूजी' का सन् 1698 का व्यक्ति–चित्र इस शैली सुन्दर उदाहरण है। यही एक ऐसी कलम रही जिसको हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई धर्म को समान प्रश्रय मिला।

नागौर उपशैली में लकड़ी के कंवाड़ों एवं किले के भित्ति–चित्रण में मारवाड़ शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'वृद्धावस्था' के चित्रों को नागौर के चित्रकारों ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक चित्रित किया है। पारदर्शी वेशभूषा नागौर शैली की अपनी विशेषता है। जैसलमेर शैली का विकास मुख्य रूप से महारावल हरराज, अखैसिंह एवं मूलराज के संरक्षण में हुआ। 'मूमल' जैसलमेर शैली का प्रमुख चित्र है। जैसलमेर शैली की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस पर मुगल या जोधपुर शैली का प्रभाव नहीं है, यह एकदम स्थानीय शैली है।

जोधपुर के दक्षिण में स्थित गोडवाड़ भूखण्ड में घाणेराव एक प्रमुख ठिकाना है। चित्रकार नारायण, छज्जू एवं कृपाराम ने नवीन चित्र शैली का निर्माण किया, जिससे घाणेराव को मारवाड़ की एक उपशैली के रूप में महत्त्व दिया जा सकता है।

3. हाड़ौती शैली

चौहानवंशी हाड़ाओं का प्रभुत्व बूंदी, कोटा और झालावाड़ क्षेत्र में रहा, इसलिए यह हाड़ौती क्षेत्र कहलाया। बूंदी शैली, कोटा शैली, झालावाड़ शैली आदि को हाड़ौती शैली के अन्तर्गत माना जाता है।

बूंदी शैली

चित्रकला की बूंदी शैली मेवाड़ चित्रकला से प्रभावित थी। समय–समय पर बूंदी शैली में ग्रंथ चित्रण एवं लघु चित्रों के माध्यम से इतना चित्रण हुआ कि आज संसार भर के संग्रहालयों में बूंदी शैली के चित्र मिलते हैं। राव शत्रुशाल (छत्रसाल) हाड़ा के काल में इस शैली का विशेष रूप से विकास हुआ। राव छत्रसाल ने प्रसिद्ध 'रंगमहल' बनवाया जो सुन्दर भित्ति चित्रों के लिए विश्व प्रसिद्ध है। भावसिंह तथा उनके पुत्र अनिरुद्धसिंह ने मुगल शासकों के निर्देशों से दक्षिण भारत के युद्धों में भाग लिया, जिससे बूंदी शैली में दक्षिण शैली का प्रभाव समाविष्ट हुआ। 'चित्रशाला' का निर्माण राव उम्मेदसिंह के समय में हुआ। राव उम्मेदसिंह का जंगली सूअर का शिकार करते हुए बनाया चित्र (1750 ई.) प्रसिद्ध है।

राजा उम्मेदसिंह के काल में बूंदी शैली में नवीन मोड़ आया, जिसमें भावनाओं की सरलता, प्रकृति की विविधता, पशु–पक्षियों तथा सतरंगे बादलों, जलाशयों आदि के चित्रण की बहुलता दृष्टिगत होती है।

बूंदी शैली की आकृतियां लम्बी, शरीर पतले, स्त्रियों के अधर लाल, मुख गोलाकृत और चिबुक पीछे की ओर झुकी छोटी होती है। आकाश में उमड़ते हुए काले कजरारे मेघ, बिजली की कौंध, घनघोर वर्षा, नदी में उठती जल तरंगें, हरे–भरे वृक्ष और उन पर चहकती चिड़ियां, नाचते मयूर एवं कलाबाजी दिखाते वानर तथा पहाड़ की तलहटी में विचरण करते वन्य–जीवों का चित्रण बड़ा ही मनोहारी है। बूंदी शैली में पशु–पक्षी चित्रण को विशेष महत्त्व दिया गया है। स्थापत्य का राजपूती वैभव और श्वेत गुलाबी, लाल हिंगलू, हरा आदि रंगों का प्रयोग बूंदी कलम की विशेषता रही है। रागरागिनी, नायिका भेद, ऋतु वर्णन, बारहमासा, कृष्णलीला, दरबार, शिकार, हाथियों की लड़ाई, उत्सव अंकन आदि शैली के चित्राधार रहे हैं।

इस शैली के चित्रकारों में सुरजन, अहमदअली, रामलाल, श्री किशन और साधुराम मुख्य थे।

कोटा शैली

कोटा चित्रशैली का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित करने का श्रेय महाराव रामसिंह (1661–1705 ई.) को है। उनके बाद महाराव भीमसिंह ने कोटा राज्य में कृष्ण भक्ति को विशेष महत्त्व दिया, जिसके फलस्वरूप कोटा शैली में वल्लभ सम्प्रदाय का पूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। कोटा शैली का चरमोत्कर्ष उम्मेदसिंह के

समय में हुआ। कोटा के मुसव्विरखाने के कलाकारों ने भित्तियों पर बड़े–बड़े चित्र बनाने के साथ ही बड़ी–बड़ी वसलियों पर शिकार का समूह–चित्रण कर कोटा–शैली को विशिष्टता प्रदान की। घने जंगलों में शिकार की बहुलता के कारण कोटा शैली में इस समय शिकार का बहुरंगी वैविध्यपूर्ण चित्रण हुआ जो इस शैली का प्रतीक बन गया। इस शैली में नारियों एवं रानियों को भी शिकार करते हुए दिखाया गया है। इस शैली के प्रमुख चित्रकार रघुनाथ, गोविन्दराम, डालू, लच्छीराम व नूर मोहम्मद हैं।

स्त्री आकृतियों का कोटा शैली में अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है। पीन अधर, सुदीर्घ नासिका, पतली कमर, कपोल खिले हुए, सुन्दर अलकावलि नारी आकृति को जीवंतता प्रदान करती है। पुरुषाकृति में वृषभ कंधे, उन्नत भौंहें, मांसल देह, मुख पर भरी–भरी दाढ़ी और मूंछें, तलवार, कटार आदि हथियारों से युक्त वेशभूषा तथा मोती जड़ित आभूषण छवि को चार चाँद लगाते हैं। कोटा शैली में हल्के हरे, पीले और नीले रंग का बहुतायत से प्रयोग हुआ है।

झालावाड़–शैली

झालावाड़ के राजमहलों में श्रीनाथजी, राधाकृष्ण लीला, रामलीला, राजसी वैभव के जो भित्ति चित्र मिलते हैं, उनके माध्यम से झालावाड़ शैली का निर्धारण होना अभी शेष है।

4. ढूंढाड़ शैली

आमेर शैली

जयपुर की चित्रण परम्परा पूर्ववर्ती राजधानी आमेर की चित्रशैली के क्रमिक विकास का परिणाम है। आमेर शैली के प्रारंभिक काल के चित्रित ग्रंथों में यशोधरा चरित्र (1591 ई.) नामक ग्रंथ प्रमुख है। इसी समय में बनी रज्मनामा (1588 ई.) की प्रति अकबर के लिये जयपुर सूरतखाने में ही तैयार की गई थी। इसमें 169 बड़े आकार के चित्र हैं एवं जयपुर के चित्रकारों का भी उल्लेख मिलता है। बैराठ के तथाकथित मुगल गार्डन और मौजमाबाद के भित्ति–चित्र भी इस शैली में निर्मित है जिन पर मुगल प्रभाव साफ दिखाई देता है।

आमेर चित्रशैली का दूसरा महत्वपूर्ण चरण मिर्जा राजा जयसिंह (1621–1667 ई.) के राज्यकाल से प्रारम्भ होता है। मिर्जा राजा जयसिंह ने 'रसिकप्रिया' और 'कृष्ण रुक्मिणी वेलि' नामक ग्रंथ अपनी रानी चन्द्रावती के लिये सन् 1639 ई. में बनवाये थे। इसमें कृष्ण और गोपियों का युगल स्वरूप लोक शैली में चित्रित है। आमेर में ही मिर्जा राजा जयसिंह ने 1639 ई. में गणेश पोल का निर्माण करवाया जो भित्तिचित्रों व अलंकरणों से सुसज्जित हैं।

जयपुर शैली

महाराजा सवाई जयसिंह प्रथम का काल कला की उन्नति की दृष्टि से कई अर्थों में महत्वपूर्ण रहा। उन्होंने अपने राजचिन्हों, कोषों, रोजमर्रा की वस्तुएं, कला का खजाना, साज–सामान आदि को सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने हेतु 'छत्तीस कारखानों' की स्थापना की, जिनमें 'सूरतखाना' भी एक है। यहाँ चित्रकार चित्रों का निर्माण करते थे। इसी समय में 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'गीत–गोविन्द', 'बारहमासा', 'नवरस' और 'रागमाला' चित्रों का निर्माण हुआ। महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह के समय चित्र सृजन का केन्द्र (सूरतखाना) आमेर से हट कर जयपुर आ गया। इनके समय में साहिबराम और लालचन्द नामक चित्रकारों ने प्रशंसनीय कार्य किया। साहिबराम ने बड़े व्यक्ति चित्र (आदमकद–पोट्रेट) बनाकर चित्रकला में नयी परम्परा डाली। लालचन्द ने जानवरों की लड़ाइयों के अनेक चित्र बनाये।

सवाई माधोसिंह प्रथम के समय कलाकारों ने चित्रों में रंगों को न भरकर मोती, लाख तथा लकड़ी की मणियों को चिपकाकर रीतिकालीन अलंकारिक मणिकुट्टिम प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। सवाई माधोसिंह प्रथम के समय गलता के मंदिरों, सिसोदिया रानी के महल, चन्द्रमहल, पुण्डरीक की हवेली में कलात्मक

भित्ति चित्रण हुआ। लाल चितेरा महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह तथा महाराजा सवाई माधोसिंह के समय का एक प्रमुख चित्रकार था।

महाराजा सवाई प्रतापसिंह के समय में पचास से भी अधिक कलाकार सूरतखाने में चित्रों को बनाने के लिये नियुक्त थे, जिनमें रामसेवक, गोपाल, हुकमा, चिमना, सालिगराम, लक्ष्मण आदि प्रमुख थे। इस समय राधाकृष्ण की लीलाओं, नायिका भेद, रागरागिनी, बारहमासा आदि का चित्रण प्रधानतः हुआ।

महाराजा सवाई रामसिंह ने कला के विकास के लिये 'महाराजा स्कूल आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स' की सन् 1857 ई. में स्थापना की, जो वर्तमान में 'राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्स' के नाम से जाना जाता है।

भित्ति चित्रण, पोथीचित्रण, आदमकद पोट्रेट, लघुचित्रण में जयपुर के कलाकारों ने मुगल प्रभाव को ग्रहण करते हुए राजपूती संस्कृति की नफासत और रंगों की लोक कलात्मकता को बनाये रखा है। बड़े–बड़े पोट्रेट (आदमकद व्यक्ति चित्र) एवं भित्ति चित्रण की परम्परा जयपुर शैली की विशिष्ट देन है। जयपुर के भित्ति–चित्रों की एक विशेष पद्धति है जिसे स्थानीय भाषा में आलागीला, आराइश तथा मोराकसी कहा जाता है। इस पद्धति में चूने के तैयार पलस्तर को घोट कर चिकना कर लिया जाता है तथा इस पर चित्रण किया जाता है। राजस्थान में सर्वप्रथम आलागीला पद्धति का प्रारम्भ आमेर में हुआ जो कच्छवाहा–मुगल संबंधों के प्रभाव का परिणाम था।

जयपुर शैली का प्रभाव ईसरदा, सिवाड़, झिलाय, उणियारा, चौमू, सामौद, मालपुरा जैसे ठिकानों पर भी रहा, जिससे वहाँ ठिकाना पेंटिंग विकसित होती रही।

अलवर शैली

अलवर शैली सन् 1775 ई. में जयपुर से अलग होकर राव राजा प्रतापसिंह के समय में स्वतंत्र अस्तित्व में आयी। उनके शासनकाल में 'शिवकुमार' और 'डालूराम' नामक दो चित्रकार जयपुर से अलवर आये। राजगढ़ के किले के 'शीशमहल' में अंकित भित्तिचित्र उन्हीं के समय में बने। ये भित्तिचित्र अलवर शैली के प्रारंभिक सर्वोत्कृष्ट चित्र हैं।

राजगढ़ के महलों में शीशमहल का चित्रण कराकर बख्तावरसिंह ने यहाँ चित्रकला की शुरुआत की। बलदेव, डालूराम, सालगा एवं सालिगराम उनके राज्य के प्रमुख चितेरे थे। बख्तावरसिंह के समय में बने सैकड़ों चित्र जिनमें नाथों, जोगियों, फकीरों से जंगल में धर्म–चर्चा करते हुये स्वयं महाराज का चित्रण कला की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

विनयसिंह का अलवर की चित्रकला के उत्कर्ष में वही स्थान है, जो मुगल चित्रकला में अकबर का था। विनयसिंह बलदेव से चित्रकारी सीखते थे। 'गुलिस्तां' का सुलेखन एवं चित्रांकन उनके शासनकाल की एक अनोखी घटना है। इस ग्रंथ को तैयार करने पर उस समय एक लाख रुपये व्यय हुए। इसके चित्र बलदेव व गुलामअली ने बनाये।

बलवन्तसिंह के समय में सालिगराम, जमनादास, छोटेलाल, बकसाराम, नन्दराम आदि कलाकारों ने जमकर पोथी चित्रों, लघुचित्रों एवं लिपटवाँ पटचित्रों का निर्माण किया।

शिवदान सिंह के शासनकाल में कामकला के आधार पर निर्मित सैकड़ों चित्र चित्रकला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। 'नफीरी वादन' का चित्र इस शैली का सुन्दर उदाहरण है। महाराजा मंगलसिंह के शासनकाल में मूलचंद तथा उदयराम ने विशेषतः हाथीदाँत के फलकों पर सूक्ष्म चित्रण किया। महाराजा जयसिंह के शासनकाल में रामगोपाल, रामप्रसाद, जगमोहन, रामसहाय नेपालिया जैसे कलाकारों ने अलवर शैली को अंतिम समय तक जीवित रखा।

अलवर चित्र शैली में ईरानी, मुगल और राजस्थानी विशेषतः जयपुर शैली का आश्चर्यजनक संतुलित समन्वय देखा जा सकता है। इस चित्रशैली में पुरुषों के मुख की आकृति आम की शक्ल में बनाई गयी है। स्त्रियों के कद कुछ ठिगने, उठी हुई वेणियाँ, अत्यधिक परिश्रम से बनाये गये अंग–प्रत्यंग अलवर शैली की

अपनी विशेषता है। वेश्याओं के चित्र केवल अलवर शैली में ही बने हैं। सुन्दर बेलबूँटों वाली वसलियों का निर्माण अलवर शैली की निजी विशेषता है।

उनियारा शैली

नरूका ठिकाने के वंश ने इस शैली के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। रावराजा सरदारसिंह ने धीमा, मीरबक्स, काशी, रामलखन, भीम आदि कलाकारों को आश्रय प्रदान किया। 'राम–सीता, लक्ष्मण व हनुमान' मीरबक्स द्वारा चित्रित उनियारा शैली का उत्कृष्ट चित्र है। उनियारा शैली पर बूंदी और जयपुर का समन्वित प्रभाव दिखाई देता है।

शेखावाटी के भित्ति चित्र

जयपुर शैली के भित्ति चित्रांकन का सर्वाधिक प्रभाव शेखावटी पर पड़ा है। उन्नीसवीं सदी के मध्य से लेकर बीसवीं सदी प्रारंभ तक शेखावाटी के श्रेष्ठीजनों ने विशाल हवेलियां निर्मित कर इस कला को प्रोत्साहन एवं प्रश्रय दिया। नवलगढ़, रामगढ़, फतेहपुर, लक्ष्मणगढ़, मुकुन्दगढ़, मंडावा, बिसाऊ आदि स्थानों का भित्ति चित्रण अनूठा हैं। इन भित्ति चित्रों के कारण शेखावाटी को 'ओपन आर्ट गैलेरी' कहा जाता है।

बड़े–बड़े हाथी और घोड़ों, चोबदारों, चँवर–धारणियों का अंकन, गवाक्षों के दोनों ओर की दीवारों पर अंकन इन हवेलियों की विशेषता है। छज्जे के नीचे टोड़ों के मध्य में चितेरों ने अपनी सूझबूझ के अनुसार मल्लयुद्ध, कुश्ती, दधिमंथन, गौदोहन, विचित्र पशु–पक्षियों, दैवी मिथकों, राक्षसों, कामकला, रागरागिनी, साधुसंतों, लोककथाओं का विशेष अंकन किया है। हवेलियों की बाह्य दीवारों एवं अंदर कथात्मक बड़े–बड़े फलकों का चित्रांकन शेखावाटी शैली की विशेष देन है। शेखावाटी के भित्ति चित्रण में कत्थई, नीले व गुलाबी रंग की प्रधानता है। किन्तु अब इस अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर का क्षरण हो रहा है। फ्रांस के नदीन ला प्रेन्स ने फतेहपुर की हवेलियों के भित्ति चित्रों के संरक्षण के सन्दर्भ में सराहनीय कार्य कर एक मिसाल पेश की है।

लोककला

आम इंसान के द्वारा बिना किसी ताम–झाम व प्रदर्शन से जब अपनी स्वाभाविक कलाकारी को चित्र, संगीत, नृत्य आदि के रूप में पेश किया जाता है, तो वह लोककला कहलाती है। वास्तव में लोककला ही संस्कृति की वास्तविक वाहक व प्रस्तुतकर्त्ता होती है।

राजस्थान की प्रमुख लोककलाएं

सांझी

सांझी दशहरे से पूर्व श्राद्ध–पक्ष में बनाई जाती है। कुंवारी कन्याएं सफेदी पुती दीवारों पर पन्द्रह दिन लगातार गोबर से आकार उकेरती हैं व उसका पूजन करती हैं। इसे सांझी, संझुली, सांझुली, सिंझी, सांझ के हाँजी, हाँज्या आदि कई नामों से जाना जाता है। कन्याएं गोबर से रेखाओं को उकेरकर उनमें काँच के टुकड़े, मोती, चूड़ी, कौड़ी, पत्थर, पंख, कपड़ा, कागज, लाख, फूल–पत्तियाँ आदि के प्रयोग द्वारा एक दमकती हुई रंगीन चित्ताकर्षक आकृति बनाती हैं।

सांझी को माता पार्वती का रूप मान कर अच्छे वर, घर की कामना के लिए कन्याएं पूजन करती हैं। पहले दिन से दसवें दिन तक एक या दो प्रतीक ही प्रतिदिन बनाए जाते हैं, किन्तु अंतिम पाँच दिन बहुत बड़े आकारों में सांझी की रचना की जाती है, जिसे संझ्या कोट कहते हैं। पहले दिन सूर्य, चन्द्रमा, तारे, दूसरे दिन पाँच फूल, तीसरे दिन पंखी, चौथे दिन हाथी सवार, पाँचवें दिन चौपड़, छठे दिन स्वास्तिक, सातवें दिन घेवर, आठवें दिन ढोलक या नगाड़े, नवें दिन बन्दनवार व दसवें दिन खजूर का पेड़ बनाया जाता है। आखिरी पाँच दिन संझ्याकोट में बीचों–बीच सबसे बड़े आकार में सांझी माता व मानव,

पशु–पक्षी, प्रकृति आदि का चित्रण किया जाता है।

मांडणा

मांडणे दीवारों को अलंकृत करने के लिए बनाये जाते हैं। घर की देहरी, चौखट, आंगन, चबूतरा, चौक, घड़ा रखने का स्थान, पूजन–स्थल आदि पर ये मांडणे अंकित किये जाते हैं। विवाह पर गणेशजी, लक्ष्मीजी के पैर, स्वास्तिक आदि के साथ ही गलीचा, मोर–मोरनी, गमले, कलियां, बन्दनवार, बच्चे के जन्म पर गलीचा, फूल, स्वास्तिक, रक्षाबंधन पर श्रवणकुमार, गणगौर पर गुणों (एक मिठाई) का जोड़, घेवर, लहरिया, तीज पर भी घेवर, लहरिया, चौक, फूल, बगीचा आदि विशेष रूप से बनाये जाते हैं। यदि कोई तीर्थयात्रा कर सकुशल घर लौट आता है तो इस खुशी में 'पुष्कर पेड़ी' तथा 'पथवारी' मांडी जाती है। माण्डणों में त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण, अष्टकोण, वृत्त आदि आकृतियां भी बनाई जाती हैं। ये मांडणे अत्यन्त सरल होते हुए भी अमूर्त व ज्यामितीय शैली का अद्भुत सम्मिश्रण हैं।

फड़

भीलवाड़ा के शाहपुरा कस्बे में छीपा जाति के जोशी चितेरों द्वारा पट–चित्रण किया जाता है, जिसे राजस्थानी भाषा में 'फड़' कहा जाता है। भीलवाड़ा निवासी श्रीलाल जोशी इस शैली के प्रमुख चित्रकार हैं।

फड़ भोपों के लिए निर्मित की जाती है। ये भोपे फड़ को लकड़ी पर लपेट कर गाँव–गाँव जाकर पारम्परिक वस्त्रों में रावण हत्था या जन्तर वाद्य–यंत्र की धुन के साथ कदम थिरकाते हुए इसका वाचन करते हैं। यह लोक नाट्य, गायन, वादन, मौखिक साहित्य, चित्रकला व लोकधर्म का एक अनूठा संगम हैं। इसमें लोक देवताओं के जीवन के अनेकों प्रसंगों व उनसे संबंधित चमत्कारों को चित्रित किया जाता है। चित्रों में प्रमुखाकृति को सबसे बड़ा बनाया जाता है। अन्य आकृतियां उसके अनुपात में कहीं छोटी बनाई जाती हैं। रंगों का प्रतीकात्मक प्रयोग भावों की अभिव्यक्ति में सहायक है, जैसे–देवियां नीली, देव लाल, राक्षस काले, साधु सफेद या पीले हैं और सिन्दूरी व लाल रंग शौर्य व वीरता के प्रतीक हैं।

फड़ के लिए सर्वप्रथम मोटे हाथकते दो सूती कपड़ों (रेजी या रेजा) पर गेहूँ या चावल के मांड में गोंद मिला कर कलफ लगाया जाता है। सतह तैयार होने पर उसे घोट कर समतल किया जाता है। इस पर पाँच या सात रंगों से चित्रण किया जाता है। रंगों में गेरू, हिरमिच, जंगाल, हरताल, प्योड़ी, सिन्दूर, हिंगुल, काजल, चूना व नील आदि का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम सिन्दूरी रंग शरीर में, फिर हरा व लाल रंग कपड़ों में, भूरा वास्तु–निर्माण में एवं अंतिम रेखाएँ (खुलाई) केवल काले रंग से की जाती है।

पाबूजी की फड़

पाने

राजस्थान में विभिन्न उत्सवों व त्यौहारों पर देवी–देवताओं के कागज पर बने चित्र (पाने) प्रतिष्ठापित किये जाते है। दीवाल चित्रों के विकल्प के रूप में इन पानों का प्रचलन हुआ है। सस्ते होने के कारण ग्रामीण जन इन्हें खरीद कर समयानुसार प्रयुक्त करते हैं। राजस्थान में गणेशजी, लक्ष्मीजी, रामदेवजी, गोगाजी, श्रवण कुमार, तेजाजी, राम, कृष्ण, शिव–पार्वती, धर्मराज, देवनारायणजी, श्रीनाथजी, नृसिंह आदि के पाने प्रचलित हैं। श्रीनाथजी का पाना इनमें सर्वाधिक कलात्मक है, जिसमें चौबीस शृंगारों का चित्रण होता है।

कावड़

कावड़ बनाना चित्तौड़गढ़ जिले के बस्सी गाँव के खैरादियों का पुश्तैनी व्यवसाय है। यहाँ के पारम्परिक कलाकार मांगीलाल मिस्त्री ने अपनी कावड़–परम्परा को सुरक्षित रखते हुये कई नये प्रयोग किये हैं। इनकी बनी कावड़ें देश–विदेश में कई संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रही है। कावड़ जनजीवन की धार्मिक आस्थाओं और विश्वासों से जुड़ी है इसीलिए इसका वाचन–श्रवण कर लोग श्रद्धाभिभूत हो जाते हैं और मनमाना दान करते हैं।

कावड़ एक मंदिरनुमा काष्ठकलाकृति है, जिसमें कई द्वार बने होते हैं। सभी द्वारों या कपाटों पर चित्र अंकित रहते हैं। कथा वाचन के साथ–साथ ये कपाट खुलते जाते हैं और अंत में राम, लक्ष्मण व सीता जी की मूर्तियां दर्शित होती हैं। कावड़ लाल रंग से रंगी जाती है व उसके ऊपर फिर काले रंग से पौराणिक कथाओं का चित्रांकन किया जाता है। इनमें महाभारत, रामायण, कृष्ण लीला के विभिन्न चरित्रों व घटनाओं का विवरण होता है। साथ ही शनि, हनुमान, ब्रह्मा, लक्ष्मी, गरुड़ व लोक–देवताओं जैसे–पाबूजी रामदेवजी, हरिशचन्द्र, गोपीचन्द भरथरी को कथानुसार कावड़ में चित्रित करते हैं।

क्या आप जानते हैं?

गोड़लिया

पशुओं के शरीर पर भी विविध प्रकार की आकृतियों के बड़े कलात्मक दाग दिये जाते हैं। ये दाग चुराये गये पशुओं की शिनाख्त के अतिरिक्त सामान्य पहचान के लिये भी दिये जाते हैं। दागने की यह क्रिया अटेरना तथा दाग के निशान गोड़लिया कहलाते हैं। पशुओं के ये चिन्ह कहीं जाति विशेष के, कहीं अंचल विशेष के तो कहीं विशिष्ट राजघराने के प्रतीक हैं। दागने के इन चिन्हों में प्रकृति के विविध उपादान, धार्मिक आस्थाओं के प्रतीक चिन्ह, मानवाकृतियों, विविध कृषि उपकरण तथा दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं के विभिन्न आंकों का समावेश मिलता है। ये दाग लोहे के सरिये, मिट्‌टी की ढकनी, लोहे पीतल के अक्षर अथवा किसी वृक्ष विशेष की डाली को गर्म कर दागे जाते हैं।

साँझी कला : डॉ कहानी भानावत, पृष्ठ 18

मेहंदी

राजस्थान में मेहंदी प्राचीन काल से प्रचलन में है। स्त्रियां व बालिकाएं तूलिका से हाथों में मेहन्दी के बारीक माण्डणे माण्डती हैं। सोजत व मालवा की मेहंदी मारवाड़ में बहुत प्रसिद्ध है। मेहंदी स्त्रियों द्वारा विवाह, सगाई, बच्चे के जन्म, विविध पूजनों व शुभ कार्यों में लगायी जाती है। मेहंदी में विविध प्रकार के अलंकरण बनाये जाते हैं। इनमें दीपावली पर पान, हटड़ी की भाँत, शंख, पगल्या (लक्ष्मी जी के पैर), सोलह दीपक, सुदर्शन, चक्र व मकर संक्रांति पर घेवर, बीजणी, करवा चौथ पर छबड़ी, स्वास्तिक, रक्षाबन्धन पर लहरिया, चीक व शादी पर तोरण, कैरी, सिंघाड़ा, स्वास्तिक, कलश, फूल आदि प्रमुख है।

गोदना

शरीर को सुसज्जित करने की दृष्टि से गोदना गुदवाने की परम्परा का विकास हुआ। किसी तीखे औजार से शरीर के ऊपर की चमड़ी खोदकर उसमें काला रंग भरने से चमड़ी में पक्का निशान बन जाता है जिसे गोदना कहते है। आदिवासी लोगों में गोदने गुदवाने का अधिक चाव रहा है। पर्याप्त धन व आभूषणों के अभाव में शरीर के विविध अंगों पर गोदने गुदवाकर वे अपनी सौन्दर्य–भावना को संतुष्ट करते हैं। स्त्रियां ललाट पर चांद, तिलक, आड़ गुदवाती हैं। आँखों को तीर के समान पैनी दर्शाने हेतु नीचे की पलक के साथ 'सार्या' गुदवाती हैं। धार्मिक प्रतीक जैसे राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान, स्वास्तिक, कलश, ओम व त्रिशूल, पशु–पक्षी, फूल–पत्तियों व वृक्षों, दैनिक कार्यों में काम आने वाली वस्तुएँ गुदवायी जाती हैं।

कोठियाँ

ग्रामीण क्षेत्रों में भण्डारण हेतु कलात्मकता कोठियाँ निर्मित की जाती हैं। कोठियाँ चिकनी मिट्टी की सहायता से बनाकर उन पर विभिन्न प्रकार के जाली, झरोखे, कंगूरे, देवी–देवता, जीव–जन्तु, बेल–बूंटे तथा मांडणें उभारे जाते हैं। इन कोठे–कोठियों में अन्न के अतिरिक्त दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तुएं जैसे घी, दूध, दही आदि रखे जाते हैं।

वील

पश्चिमी राजस्थान के ग्रामीण अंचलों में वील रखने की परम्परा पुराने घरों में सर्वत्र दिखाई देती है। वील बांस की पतली–पतली खपच्चियों को धागे से बांधकर घोड़े की लीद मिली चिकनी मिट्टी से बनायी जाती है। यह वील विभिन्न आकार–प्रकार के खाने लिये होती है। इसे सुंदर बनाने के लिये इसमें कई छोटे–छोटे गवाक्ष, जालियां और कंगूरे बनाये जाते हैं। इन पर छोटे–छोटे कांच चिपकाये जाते हैं। इनमें दैनिक उपयोग की वस्तुएं, बर्तन आदि सजाये जाते हैं। जैसलमेर क्षेत्र में एक से बढ़कर एक सौन्दर्यपूर्ण वील देखने को मिलती हैं।

कठपुतली

धागों की सहायता से काष्ठ से बनी पुतलियों (कठपुतली) का कमाल देखते ही बनता है। धागापुतली शैली राजस्थान की देन मानी जाती है। सिंहासन बत्तीसी, पृथ्वीराज संयोगिता और अमरसिंह राठौड़ जैसे खेल इन्हीं कठपुतलियों के द्वारा गाँव–गाँव, घर–घर दिखाये जाते रहे हैं। सन् 1965 में रूमानिया में आयोजित तृतीय अंतर्राष्ट्रीय कठपुतली समारोह में उदयपुर के भारतीय लोककला मण्डल के कलाकारों ने राजस्थान की इस कला में विश्व का प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर तहलका मचा दिया था।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. पिछवई चित्रांकन किस चित्रशैली की विशेषता है?
   (अ) किशनगढ़ (ब) बूंदी
   (स) कोटा (द) नाथद्वारा
2. 'बणी–ठणी' किस चित्रशैली से संबंधित है?
   (अ) किशनगढ़ (ब) कोटा
   (स) मारवाड़ (द) चावण्ड
3. जमनादास, छोटेलाल, बक्साराम व नंदलाल चित्रकला की किस शैली से संबद्ध हैं?
   (अ) झालावाड़ शैली (ब) अलवर शैली
   (स) बीकानेर शैली (द) मारवाड़ शैली
4. जयपुर राज्य के उस कारखाने का नाम बताइए जहाँ कलाकार चित्र और लघु चित्र बनाते थे –
   (अ) तोषाखाना (ब) सुतरखाना
   (स) सूरतखाना (द) जवाहरखाना
5. पक्षियों को महत्त्व देने वाली चित्रशैली है–
   (अ) बूंदी शैली (ब) चावण्ड शैली
   (स) जयपुर शैली (द) देवगढ़ शैली

6. सांझी का संबंध किस देवी से है?
(अ) सीता (ब) दुर्गा
(स) ऊषा (द) पार्वती
7. फड़ वाचन का कार्य कौन करते हैं?
(अ) भोपे (ब) कालबेलिया
(स) बंजारे (द) सरगडे
8. मांगीलाल मिस्त्री की प्रसिद्धी का क्षेत्र है–
(अ) रावण हत्था (ब) कावड़
(स) पूंगी (द) शहनाई
9. फड़ से संबंधित श्रीलाल जोशी किस जिले के निवासी है?
(अ) भीलवाड़ा (ब) सीकर
(स) जयपुर (द) चूरू
10. सोजत किसके लिए प्रसिद्ध है?
(अ) गुड़ (ब) कम्बल
(स) कावड़ (द) मेहंदी

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. चित्रशाला का परिचय दीजिए।
2. बूंदी शैली की कोई दो विशेषता बताइये।
3. राजस्थान में उपलब्ध सर्वाधिक प्राचीन चित्रित ग्रंथ कौनसा है?
4. 'निसारदीन' कौन था?
5. 'पिछवाईयों' से आप क्या समझते हैं?
6. सुमेलित करें –

लोककला	संबंधित सामग्री
1. पाने	लकड़ी
2. फड़	रंग
3. मांडणा	कपड़ा
4. कावड़	कागज

7. सांझी पूजा किस समय की जाती है?
8. गोड़लिया से आप क्या समझते हैं?
9. 'सार्या' से आप क्या समझते है?
10. 'मांडणा' के चार विषयों के नाम लिखिये।
11. सांझी पूजा कितने दिनों तक की जाती है?
12. 'पाने' क्या हैं?
13. ग्रामीण अंचल में 'कोठियाँ' किस उपयोग में आती हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. किशनगढ़ चित्रकला शैली की दो मुख्य विशेषताएं बताइये।
2. नाथद्वारा चित्रशैली की विशेषताएं बताइए।
3. राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों का वर्गीकरण कीजिये।
4. राजस्थानी चित्रकला की प्रमुख विशेषताएं बताइये।
5. कठपुतली कला पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
2. चित्रकला की 'मारवाड़ स्कूल' पर एक विस्तृत आलेख लिखिये।
3. फड़ कला पर एक लेख लिखिये।
4. कावड़ के विभिन्न विषयों का उल्लेख करते इस कला पर प्रकाश डालिये।

परियोजनात्मक कार्य :

1. अपने आस–पास के क्षेत्र में गोदना गुदवाये व्यक्तियों से मिले तथा गोदने के विभिन्न विषयों की सारणी तैयार करें।

कल्पना करें :

1. आप एक लड़की हैं, पंद्रह दिन की अपनी सांझी पूजा के बारे में अपनी सहेलियों को बताइये।

अध्याय

6

स्थापत्य एवं शिल्प के विविध आयाम

मानव संस्कृति के इतिहास में स्थापत्य का अपना अलग स्थान है। स्थापत्य एक ऐसी शृंखला है जो सदियों की बिखरी हुई कड़ियों को जोड़कर देश और समाज की वास्तविक सांस्कृतिक तस्वीर को प्रस्तुत करती है। प्राक् व आद्‌य इतिहास की संस्कृतियों के ज्ञान हेतु स्थापत्य की भूमिका अतुलनीय है। किसी भी देश की प्रगति का समुचित अध्ययन बिना स्थापत्य की विविध परतों तथा खण्डहरों के अध्ययन के नहीं हो सकता।

यदि हम राजस्थान की बात करें, तो राजस्थान की विशेष भौगोलिक स्थिति ने यहाँ के स्थापत्य को प्रभावित किया है। नगर, महल, परकोटे, किले या जलाशयों के निर्माण में उपयोगिता के साथ मजबूती का पूरा ध्यान रखा गया है।

नगर–विन्यास (स्थापत्य) एवं भवन शिल्प

हनुमानगढ़ जिले में कालीबंगा और सौंथी में खुदाई से ऐसे अनेक प्रमाण मिले हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि ऋग्वैदिक काल से कई सदियों पूर्व सरस्वती एवं दृषद्वती नदियों के किनारों पर बसे इन नगरों की नगर योजना एवं भवन निर्माण उच्च स्तरीय था। ईटों से बने भवन, सड़कें, नालियां, गोल कुएं, वेदियां आदि इस बात को प्रमाणित करती हैं।

दक्षिणी–पश्चिमी राजस्थान में आहड़, गिलूण्ड आदि संस्कृति के केन्द्र रहे। मकानों में खिड़कियां, दरवाजे, बरामदे, खुले चौक आवास को पूर्णता प्रदान करते थे, जो यहाँ की समृद्ध अवस्था पर प्रकाश डालते हैं। अनाज पीसने के पत्थर, तांबे की चद्‌दरें आदि आहड़ की कृषि तथा व्यवसाय प्रधान बस्ती की ओर संकेत करते हैं। पौराणिक सभ्यता के युग में राजस्थान के कई सांस्कृतिक केन्द्रों का ज्ञान होता है जिनमें पुष्कर, मरुधन्व, जांगल, मत्स्य, साल्व, मरुकांतार आदि प्रमुख हैं।

महाभारत काल में विराट नगर (बैराठ), पुष्कर आदि नगरों का वर्णन आता है, जो स्थापत्य एवं रक्षा की दृष्टि से नगर योजना की समृद्ध कहानी कहते हैं। मौर्य–काल से लेकर उत्तर गुप्तकाल में भारतीय स्थापत्य की भांति राजस्थान में भी स्थापत्य के एक विशेष रूप का विकास हुआ। इस काल की कला केवल राजकीय प्रश्रय में ही नहीं पलती थी, वरन् आमजन के मध्य भी प्रचलित थी। विराट नगर (जयपुर) अशोक कालीन सभ्यता का एक अच्छा उदाहरण है। यहाँ के भग्नावशेषों में स्तम्भ लेख और बौद्ध विहार के खण्डहर प्रमुख हैं। मौर्य काल में बेड़च नदी के किनारे मध्यमिका (चित्तौड़ के पास जिसे आजकल नगरी कहते हैं) की भव्य नगर योजना इस बात की साक्षी है कि तीसरी सदी ईसा पूर्व से छठी सदी तक यह भव्य नगर रहा।

गुप्त और गुप्तोत्तर काल में मेनाल, अमझेरा, डबोक तथा भरतपुर के आस–पास का क्षेत्र नगरीय वैभव के साक्षी हैं। बावड़ियां, कुण्ड, मंदिर, सड़कें, नालियां तथा रिहायशी मकानों का संतुलित निर्माण इन खण्डहरों तथा उपलब्ध पुरातात्त्विक सामग्री में आसानी से दिखाई पड़ता है।

सातवीं से तेरहवीं शती तक का काल राजस्थान में स्थापत्य की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा है। राजपूत संस्कृति के उदय के कारण वीरता एवं रक्षा के प्रतीक किले एवं धार्मिक प्रवृत्ति के प्रतीक मंदिर

बनाये गये।

राजपूत काल में जहाँ–जहाँ राजधानियां बनीं वहाँ का नगर नियोजन विशिष्ट रहा। नगर की रक्षा एवं सुविधा की दृष्टि से जो स्थान चुना जाता था वह महत्त्वपूर्ण स्थल होता था। इसी दृष्टि से भीनमाल, चित्तौड़, मण्डोर, ओसियां, रणथम्भौर, झालरापाटन, राजौरगढ़, आमेर जैसे स्थानों को राजधानी नगर बनाने हेतु चुना गया। आगे चलकर देशी राजाओं ने अपनी–अपनी राजधानियों के लिए जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, उदयपुर, बूंदी, कोटा, जयपुर जैसे नगरों की स्थापना की और उन्हें परिपूर्ण नगर के रूप में विकसित किया।

उदाहरण के लिए यदि हम जयपुर को देखें, तो महान शिल्पकार विद्याधर ने जयपुर शहर को नौ वर्गों के सिद्धांत पर बसाया था। सुव्यवस्थित रूप से बसे जयपुर के निर्माण में चौड़ी और सीधी सड़कों एवं रास्तों की व्यवस्था सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रही। शहर के दोनों सिरों पर दो चौपड़ अर्थात् छोटी और बड़ी चौपड़ हैं, जिनमें बीच में फव्वारें तथा चौड़ी सड़क के दोनों ओर बाजार हैं। शहर से निकास के लिए सूरजपोल, चांदपोल, घाटगेट, सांगानेरी गेट, अजमेरी गेट, जोरावरसिंह गेट आदि महत्त्वपूर्ण दरवाजे हैं।

सवाई जयसिंह की कल्पना को साकार करने के लिए जयपुर शहर की नींव नवम्बर 1727 ई. में राजगुरु पंडित जगन्नाथ सम्राट द्वारा रखी गयी थी। आगे चलकर तो पूरे राजस्थान के नगर नियोजन को जयपुर के स्थापत्य ने प्रभावित किया।

12वीं सदी में जैसलमेर का निर्माण, जंगल की निकटता और पानी की सुविधा को ध्यान में रखकर किया गया था। समूची योजना जन–जीवन और व्यापार की समृद्धि के हित में थी। चौहानों के समय अजमेर की गिनती समृद्ध नगरों में की जाती थी। पृथ्वीराज विजय काव्य में अजमेर की तुलना इन्द्रपुरी से की गई है।

बूंदी के स्थापत्य में तथा उसके बसाने में जल की प्रचुरता का बड़ा हाथ रहा है। जोधपुर और बीकानेर की बसावट में गढ़ निर्माण, परकोटे–भवन निर्माण आदि भौगोलिक परिस्थितियों से संबंधित हैं। बीकानेर में समतल भूमि में पेशे के अनुसार नगर के भाग बनाये गये तथा हाटों और बाजारों को व्यापारिक सुविधा के अनुकूल बनवाया गया। उदयपुर को झील के किनारे घाटियों के अनुकूल पेशे के अनुसार मोहल्लों में बांटा गया।

नगरों के स्थापत्य से गाँवों का स्थापत्य भिन्न रहा है। पहाड़ी इलाके के गाँव पहाड़ी ढलान और कुछ ऊँचाई लिए हुए हैं, जैसे केलवाड़ा, सराड़ा आदि। पहाड़ों और घने जंगलों में आदिवासियों की बस्तियों, छोटी–छोटी टेकरियों पर दो–चार झौंपड़ियों के रूप में बसी मिलती हैं। रेगिस्तानी गाँवों को पानी की सुविधा को ध्यान में रखकर बसाया जाता है। इसीलिए बीकानेर और जैसलमेर के गाँवों के आगे 'सर' अर्थात् जलाशय का प्रयोग अधिकतर पाया जाता है, जैसे– बीदासर, जेतसर, उदासर।

दुर्ग–शिल्प

राजस्थान का शायद ही कोई जनपद या अंचल ऐसा हो जहाँ कोई छोटा–बड़ा दुर्ग या गढ़–गढ़ी न हो। दुर्ग–निर्माण की परम्परा यहाँ बहुत प्राचीन काल से ही चली आ रही है। शुक्रनीति के अनुसार राज्य के सात अंग माने गये हैं, जिनमें दुर्ग भी एक है। सम्पूर्ण देश में राजस्थान वह प्रदेश है, जहाँ पर महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के बाद सर्वाधिक गढ़ और दुर्ग बने हुए हैं। यहाँ राजाओं व सामन्तों ने अपने निवास, सुरक्षा, सामग्री संग्रहण, आक्रमण के समय अपनी प्रजा को सुरक्षित रखने, पशु–धन बचाने के लिए और संपत्ति को छिपाने के लिए दुर्ग बनवाये।

राजस्थान में दुर्गों के स्थापत्य के विकास का प्रथम उदाहरण कालीबंगा की खुदाई में मिलता है। कालान्तर में मौर्य, गुप्त तथा परवर्ती युग में दुर्गों के निर्माण के निश्चित आधार दिखाई पड़ते हैं। इस समय दुर्ग निर्माण में मंदिरों तथा जलाशयों को प्रधानता दी जाने लगी। राजपूत काल में राजस्थान में बने दुर्गों

में भाटियों का सोनारगढ़, अजयराज चौहान का गढ़बीठली तारागढ़ (अजमेर), कुंभा का कुंभलगढ़ आदि उल्लेखनीय हैं।

तराईन के दूसरे युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की पराजय के बाद दिल्ली में तुर्क–अफगान शासन की स्थापना हुई। जिसका प्रभाव राजस्थान के दुर्ग स्थापत्य पर भी पड़ा। 13वीं सदी के बाद दुर्ग बनाने की परम्परा में एक नया परिवर्तन दिखाई देता है। इस काल के दुर्ग निर्माण में सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा गया। अब दुर्ग वहाँ बनाये जाने लगे जहाँ ऊँची–ऊँची पहाड़ियां हो तथा जो ऊपर से चौरस हो। यहाँ खेती योग्य भूमि एवं सिंचाई के साधनों का समुचित प्रबंध किया गया। इस समय प्राचीन काल में जो दुर्ग बने हुए थे तथा जो जीर्ण–शीर्ण या खण्ड़हर हो गए थे उनका पुनर्निर्माण भी किया गया, जैसे आबू में अचलगढ़। महाराणा कुंभा ने इसे नवीन दुर्ग में परिवर्तित किया। कुंभा ने चित्तौड़गढ़ दुर्ग का भी आवश्यकतानुसार पुनर्निर्माण करवाया।

जब मुगलों के साथ राजपूताना के शासकों के मधुर संबंध बने तो दुर्ग स्थापत्य में भी परिवर्तन आ गया। अब राजपूत शासक पहाड़ियों से नीचे आकर समतल मैदान में नगर दुर्गों का निर्माण करने लगे, जैसे–जयपुर, बीकानेर, भरतपुर आदि। क्योंकि राजस्थान के राजपूत शासकों के लिए यह स्थिरता व शांति का काल था।

क्या आप जानते हैं?

राजस्थान के 6 प्रमुख दुर्गों– आमेर महल, गागरोण, कुंभलगढ़, जैसलमेर, रणथंभौर और चित्तौड़गढ़ को जून 2013 में नोमपेन्ह में हुई वर्ल्ड हेरिटेज कमेटी की बैठक में यूनेस्को की वर्ल्ड हेरिटेज साइट की सूची में शामिल किया गया।

प्राचीन ग्रंथों में दुर्गों की जिन प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख हुआ है, वे राजस्थान के दुर्गों में प्रायः देखने को मिलती हैं। सुदृढ़ प्राचीर, अभेद्य बुर्जे, किले के चारों तरफ गहरी खाई या परिखा, गुप्त प्रवेश द्वार तथा सुरंग, किले के भीतर सिलहखाना (शस्त्रागार), जलाशय अथवा पानी के टांके, राजप्रासाद तथा सैनिकों के आवास गृह यहाँ के प्रायः सभी दुर्गों में मिलते हैं।

दुर्गों के प्रकार

अपनी स्थिति, स्थापत्य व उपयोगिता के आधार पर दुर्गों को कई प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है। दुर्गों के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. औदुक दुर्ग अर्थात् जल दुर्ग ऐसे दुर्ग को कहते हैं जो विशाल जल राशि से घिरा हुआ हो, जैसे – गागरोण दुर्ग।

2. गिरि (पर्वत) दुर्ग किसी ऊँचे पर्वत पर स्थित होता है। राजस्थान के अधिकांश दुर्ग इसी श्रेणी में आते हैं।

3. मरूभूमि में बना हुआ दुर्ग धान्वन दुर्ग कहलाता है, जैसे– जैसलमेर का दुर्ग।

4. सघन बीहड़ वन में बना हुआ दुर्ग वन दुर्ग कहलाता है, जैसे– सिवाना का दुर्ग।

5. एरण दुर्ग वे दुर्ग हैं जिनके मार्ग खाई, कांटों व पत्थरों से दुर्गम हों, जैसे– चित्तौड़ व जालौर के दुर्ग।

6. पारिख दुर्ग अर्थात् जिसके चारों ओर बहुत बड़ी खाई हो। जैसे– भरतपुर दुर्ग, बीकानेर का जूनागढ़।

7. जिन दुर्गों के चारों ओर बड़ी–बड़ी दीवारों का परकोटा हो वे पारिध दुर्ग कहलाते हैं, जैसे– चित्तौड़, जैसलमेर।

8. सैन्य दुर्ग वह हैं जिसमें युद्ध की व्यूह–रचना में चतुर सैनिक रहते हों।

9. सहाय दुर्ग में शूरवीर एवं सदा अनुकूल रहने वाले बांधव लोग निवास करते हैं।

कुछ दुर्ग ऐसे भी हैं, जिन्हें दो या अधिक दुर्गों के प्रकार में शामिल किया जा सकता है, जैसे चित्तौड़ के दुर्ग को गिरि दुर्ग, पारिख दुर्ग एवं एरण दुर्ग की श्रेणी में रखा जाता है। दुर्गों के सभी प्रकारों में सैन्य दुर्गों को श्रेष्ठ माना जाता है। चित्तौड़ दुर्ग सहित राजस्थान के कई दुर्गों को 'सैन्य दुर्ग' की श्रेणी में रखा जाता है।

राजस्थान के प्रमुख दुर्ग

चित्तौड़गढ़

गिरि दुर्गों में राजस्थान का गौरव चित्तौड़ का किला सबसे प्राचीन और प्रमुख है। दिल्ली से मालवा और गुजरात जाने वाले मार्ग पर स्थित होने के कारण प्राचीन और मध्यकाल में इस किले का विशेष सामरिक महत्त्व था।

चित्तौड़गढ़

मेवाड़ के इतिहासग्रंथ वीरविनोद के अनुसार मौर्य राजा चित्रांग (चित्रांगद) ने यह किला बनवाकर अपने नाम पर इसका नाम चित्रकोट रखा था, उसी का परिवर्तित नाम चित्तौड़ है। मेवाड़ में गुहिल राजवंश के संस्थापक बप्पा रावल ने अंतिम मौर्य शासक (मानमोरी) को पराजित कर आठवीं शताब्दी ई. के लगभग चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। अलाउद्दीन खिलजी ने इस दुर्ग पर अधिकार कर इसका नाम खिज्राबाद रख दिया।

यह दुर्ग एक पठार पर स्थित है जिसे मेसा का पठार कहते हैं। यह किला सब किलों का सिरमौर समझा जाता है। चित्तौड़गढ़ के लिए यह उक्ति प्रचलित है – ''गढ़ तो चित्तौड़गढ़ बाकी सब गढैयां''।

चित्तौड़ के किले में इतिहास के तीन प्रसिद्ध साके हुए। पहला सन् 1303 ई. में अलाउद्दीन खिलजी के समय, दूसरा 1535 ई. में गुजरात के शासक बहादुरशाह के समय व तीसरा 1568 ई. में अकबर के आक्रमण के समय हुआ था। रानी पद्मिनी के जौहर, वीर जयमल राठौड़ और पत्ता सिसोदिया के पराक्रम और बलिदान का साक्षी चित्तौड़ का किला इतिहास में अपना कोई सानी नहीं रखता।

सुदृढ़ और घुमावदार प्राचीर, उन्नत और विशाल बुर्जे, सात अभेद्य प्रवेश द्वार, किले पर पहुँचने का लम्बा और टेढ़ा–मेढ़ा सर्पिल मार्ग आदि सब विशेषताओं ने चित्तौड़गढ़ को एक विकट दुर्ग का रूप दे दिया। यहाँ के भवनों में तुलजामाता का मंदिर, नवलखा भंडार, भामाशाह की हवेली, श्रृंगार चंवरी प्रासाद, त्रिपोलिया दरवाजा, कुंभश्याम मंदिर, सोमदेव मंदिर, कुम्भा द्वारा निर्मित विजयस्तम्भ, रानी पद्मिनी के महल, गोरा–बादल के महल, चित्रांग मोरी तालाब तथा जैन कीर्ति स्तम्भ उल्लेखनीय हैं।

कुंभलगढ़ (राजसमंद)

महाराणा कुंभा द्वारा दुर्ग–स्थापत्य के प्राचीन भारतीय आदर्शों के अनुरूप बना कुंभलगढ़ गिरि दुर्ग का अच्छा उदाहरण है। मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा पर सादड़ी गाँव के समीप स्थित कुंभलगढ़ दुर्ग संकटकाल में मेवाड़ के राजपरिवार का आश्रय स्थल रहा है।

इस दुर्ग का प्रमुख शिल्पी मण्डन था। कुंभलगढ़ दुर्ग 36 किलोमीटर लम्बे परकोटे से घिरा हुआ है जो अन्तर्राष्ट्रीय रिकार्ड में दर्ज है। इसकी सुरक्षा दीवार इतनी चौड़ी है कि एक साथ आठ घुड़सवार चल सकते है। कर्नल टॉड ने कुंभलगढ़ की तुलना सुदृढ़ प्राचीरों, बुर्जों, कँगूरों के विचारों से 'एट्रस्कन वास्तु' से की है।

दुर्ग के भीतर झालीबाव बावड़ी, कुम्भस्वामी विष्णु मंदिर, झालीरानी का मालिया, मामादेव तालाब, उड़ना राजकुमार (पृथ्वीराज राठौड़) की छतरी आदि अन्य प्रसिद्ध स्मारक बने हुए हैं। यहीं उदयसिंह का राज्याभिषेक हुआ एवं राणा प्रताप का जन्म हुआ। इसके ऊपरी छोर पर राणा कुंभा का निवास है, जिसे 'कटारगढ़' कहते हैं। इस किले की ऊँचाई के बारे में अबुल फजल ने लिखा है कि यह इतनी बुलन्दी पर बना हुआ है कि नीचे से ऊपर की ओर देखने पर सिर से पगड़ी गिर जाती है।

रणथम्भौर दुर्ग (सवाईमाधोपुर)

इसका निर्माण आठवीं शताब्दी में अजमेर के चौहान शासकों द्वारा करवाया गया था। एक मान्यता के अनुसार इसका निर्माण रणथान देव चौहान ने करवाया था। रणथम्भौर दुर्ग राणा हम्मीर देव चौहान के साहस का मूक गवाह है, जो सन् 1301 में अलाउद्दीन से युद्ध करते हुए अपने शरणागत धर्म के लिए बलिदान हुआ। इस दुर्ग के स्थापत्य की विलक्षण बात यह है कि इसमें गिरि दुर्ग और वन दुर्ग दोनों की विशेषताएं विद्यमान हैं। रणथम्भौर की सुदृढ़ नैसर्गिक सुरक्षा व्यवस्था से प्रभावित होकर अबुलफजल ने लिखा है कि ''यह दुर्ग बख्तरबंद है।'' दुर्ग परिसर में हम्मीर महल, रानी महल, हम्मीर की कचहरी, सुपारी महल, 32 खम्भों की छतरी, जोगी महल, पीर सदरूद्दीन की दरगाह, गणेश मंदिर स्थित है।

सिवाणा दुर्ग (बाड़मेर)

बाड़मेर में छप्पन के पहाड़ पर स्थित सिवाणा का दुर्ग इतिहास प्रसिद्ध है। इसे 'अणखलों सिवाणों' दुर्ग भी कहते हैं। इस दुर्ग की स्थापना 954 ई. में परमार वंशीय वीरनारायण ने की थी। अलाउद्दीन खिलजी के काल में यह दुर्ग जालोर के राजा कान्हड़दे के भतीजे शीतलदेव के अधिकार में था। अलाउद्दीन खिलजी ने 1310 ई. के लगभग सिवाणा के किले पर आक्रमण किया, जिसमें वीर शीतलदेव वीरगति को प्राप्त हुये तथा दुर्ग पर खिलजी का अधिकार हो गया।

सिवाणा दुर्ग संकटकाल में मारवाड़ (जोधपुर) के राजाओं की शरणस्थली रहा है। राव मालदेव ने गिरी सुमेल के युद्ध के बाद शेरशाह की सेना द्वारा पीछा किये जाने पर सिवाणा दुर्ग में आश्रय लिया था। चन्द्रसेन ने सिवाणा के दुर्ग को केन्द्र बनाकर मुगलों के विरुद्ध संघर्ष किया था।

तारागढ़ का किला (बूंदी)

गिरि दुर्ग का बेहतरीन उदाहरण बूंदी का तारागढ़ का किला पर्वत की ऊँची चोटी पर स्थित होने के फलस्वरूप धरती से आकाश के तारे के समान दिखलाई पड़ने के कारण तारागढ़ के नाम से प्रसिद्ध है। इस किले का निर्माण चौदहवीं शताब्दी में राव बरसिंह ने मेवाड़, मालवा और गुजरात की ओर से संभावित आक्रमणों से बूंदी की रक्षा करने के लिए करवाया था।

वीर विनोद के अनुसार महाराणा क्षेत्रसिंह (1364–1382 ई.) बूंदी विजय करने के प्रयास में मारे गए थे। उनके पुत्र महाराणा लाखा काफी प्रयत्नों के बावजूद भी बूंदी पर अधिकार न कर सके तो उन्होंने मिट्टी का नकली दुर्ग बनवा उसे ध्वस्त कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। लेकिन नकली दुर्ग की रक्षा के लिए

भी कुम्भा हाड़ा ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी।

तारागढ़ में बने राजमहल स्थापत्य कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। बूंदी के राजमहलों की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इनके भीतर अनेक दुर्लभ एवं जीवन्त भित्तिचित्रों के रूप में कला का एक अनमोल खजाना विद्यमान है। विशेषकर महाराव उम्मेदसिंह के शासनकाल में निर्मित 'चित्रशाला' बूंदी चित्रशैली का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती है। चौरासी खम्भों की छतरी, शिकार बुर्ज, फूल–सागर, नवल सागर सरोवर व गर्भ–गुंजन तोप बूंदी दुर्ग के वैभव को प्रकट करते हैं।

नाहरगढ़ का किला (जयपुर)

जयपुर में अरावली पर्वतमाला की पहाड़ी पर स्थित नाहरगढ़ के किले का निर्माण सवाई जयसिंह ने मराठा आक्रमणों से बचाव के लिए करवाया था। इस किले को 'सुदर्शनगढ़' भी कहते हैं। इसका नाहरगढ़ नाम नाहरसिंह भोमिया के नाम पर पड़ा। ऐसी मान्यता है कि नाहरगढ़ के निर्माण के समय जुझार नाहरसिंह ने किले के निर्माण में विघ्न उपस्थित किया, तब तान्त्रिक रत्नाकार पौण्डरीक ने नाहरसिंह बाबा को अन्यत्र जाने के लिए राजी कर लिया और उनका स्थान 'आम्बागढ़' के निकट एक चौबुर्जी गढ़ी में स्थापित कर दिया, जहाँ वे आज भी लोकदेवता के रूप में पूजे जाते हैं। नाहरगढ़ में सवाई माधोसिंह ने अपनी नौ पासवानों के लिए एक जैसे नौ महलों का निर्माण करवाया था।

तारागढ़ (अजमेर)

अजमेर जिला मुख्यालय पर स्थित अरावली की पहाड़ियों पर तारागढ़ दुर्ग अब खण्डित दशा में है। इसे **'गढ़ बीठली'** तथा 'अजयमेरु' भी कहते हैं। शाहजहाँ के शासनकाल में विट्ठलदास गौड़ यहाँ का दुर्गाध्यक्ष था और संभव है कि उस पराक्रमी योद्धा के नाम पर ही इस किले का नाम गढ़बीठली पड़ा हो। कर्नल टॉड के अनुसार इस दुर्ग का निर्माण चौहान शासक अजयपाल ने करवाया। तारागढ़ की प्राचीर में 14 विशाल बुर्जे हैं जिनमें घूंघट, गूगड़ी तथा फूटी बुर्ज, बाँदरा बुर्ज, इमली बुर्ज, खिड़की बुर्ज और फतेह बुर्ज प्रमुख हैं। तारागढ़ दुर्ग को सन् 1832 में भारत के गवर्नर जनरल विलियम बैंटिक ने देखा तो उनके मुँह से निकल पड़ा– ''ओह दुनिया का दूसरा जिब्राल्टर।''

मेहरानगढ़ (जोधपुर)

1459 ई. में राव जोधा द्वारा इस दुर्ग की स्थापना की गई। मेहरानगढ़ जोधपुर नगर की उत्तरी पहाड़ी चिड़ियाटूंक पर बना हुआ है। यह गिरि दुर्ग की श्रेणी में आता है। इसे मयूरध्वजगढ़, गढ़चिंतामणी भी कहा जाता है। लाल बलुआ पत्थर से निर्मित मेहरानगढ़ के महल राजपूत स्थापत्य कला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। अपनी विशालता के कारण सम्भवतः यह किला मेहरानगढ़ कहलाया – 'गढ़ बण्यो मेहराण'।

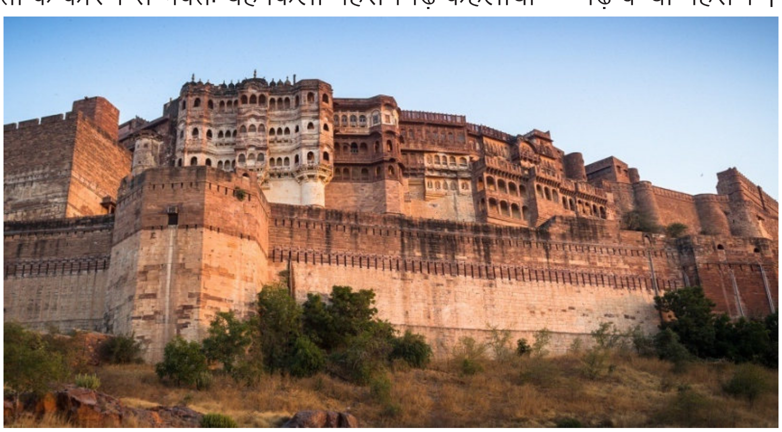

मेहरानगढ़ (जोधपुर)

दुर्ग के भीतर मोती महल, फतह महल, फूल महल, सिंगार महल दर्शनीय हैं। महाराजा मानसिंह द्वारा स्थापित 'पुस्तक प्रकाश' नामक पुस्तकालय वर्तमान में भी कार्यरत है। किले में लम्बी दूरी तक मार करने वाली अनेक प्राचीन तोपें हैं, जैसे– किलकिला, शंभुबाण, गजनीखान, जमजमा, कड़क बिजली, नुसरत, गुब्बार, धूड़घाणीद, बिच्छू बाण, मीर बख्श, रहस्य कला तथा गजक। दुर्ग परिसर में चामुण्डा माता, मुरली मनोहर व आनंदघन के प्राचीन मंदिर स्थित हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ पर तखत विलास, चोखेलाव महल, बिचला महल, सिणगार चौकी (श्रृंगार चौकी) जैसी शानदार इमारतें भी दुर्ग की शोभा बढ़ाती हैं।

चूरू का किला

चूरू दुर्ग का निर्माण ठाकुर कुशाल सिंह ने 1739 ई. में करवाया था। 1814 ई. में बीकानेर राज्य की सेना ने चूरू दुर्ग को चारों ओर से घेर कर तोपों से गोलों की बरसात कर दी। जवाब में दुर्ग से भी गोले बरसाये गये। कुछ समय बाद गोले बनाने के लिये शीशा समाप्त हो गया। इस पर सेठ–साहूकारों और जनसामान्य ने अपने घरों से चाँदी लाकर ठाकुर के सामने रख दी। जब तोपों से छूटे चाँदी के गोले शत्रु सेना पर जाकर गिरे तो शत्रु सेना हैरान रह गयी और उसने जनता की भावनाओं का सम्मान करते हुए दुर्ग पर से घेरा उठा लिया।

अकबर का दुर्ग (अजमेर)

अकबर ने अजमेर नगर के मध्य में 1571-72 ई. के दौरान एक दुर्ग का निर्माण करवाया। इस दुर्ग को 'अकबर का दौलतखाना' और 'अकबर की मैगजीन' भी कहते हैं। यह राजस्थान का एकमात्र दुर्ग है जो मुस्लिम दुर्ग स्थापत्य पद्धति से बनवाया गया है। 1576 ई. में महाराणा प्रताप के विरुद्ध हल्दीघाटी युद्ध की योजना को अन्तिम रूप इसी दुर्ग में दिया गया। ब्रिटिश राजदूत सर टामस रो जब भारत आया तो मुगल सम्राट जहाँगीर को अपना परिचय पत्र इसी दुर्ग में दिया। 1801 ई. में अंग्रेजों ने इस किले पर अधिकार कर इसे अपना शस्त्रागार (मैगजीन) बना लिया।

जूनागढ़ दुर्ग (बीकानेर)

इस दुर्ग की नींव महाराजा रायसिंह ने 1589 ई. में रखी थी। दुर्ग की प्राचीर एवं अधिकतर निर्माण कार्य लाल पत्थरों से हुआ है इसलिए इसे लालगढ़ भी कहा जाता है। दुर्ग में आंतरिक द्वार सूरजपोल दरवाजे पर इस दुर्ग के संस्थापक राजा रायसिंह की प्रशस्ति उत्कीर्ण है। सूरजपोल के दोनों तरफ चित्तौड़ के साके में वीरगति पाने वाले दो इतिहास प्रसिद्ध वीरों जयमल मेड़तिया और फत्ता सिसोदिया की हाथी पर सवार मूर्तियाँ स्थापित हैं। रतन निवास, रंग महल, कर्ण महल, अनूप महल, छत्र निवास, लाल निवास, सरदार निवास, चीनी बुर्ज, सुनहरी बुर्ज, विक्रम विलास आदि इस दुर्ग में स्थित प्रमुख निर्माण है।

भैंसरोड़गढ़ का किला (चित्तौड़गढ़)

चम्बल और बामनी नदियों के संगम स्थल पर स्थित यह किला तीन ओर से पानी से घिरा हुआ है। यह 'जलदुर्ग' की श्रेणी में आता है। कर्नल टॉड के अनुसार इस किले का निर्माण भैंसाशाह नामक व्यापारी तथा रोड़ा चारण ने पर्वतीय लुटेरों से अपने व्यापारिक काफिले की रक्षा हेतु करवाया था। डोड शाखा के परमारों, राठौड़ों, शक्तावतों और चूण्डावतों के अधिकार में रहने के बाद भैंसरोड़गढ़ हाड़ाओं को मिला, पर अधिकांशतः यह मेवाड़ के अधिकार में ही रहा। इसे राजस्थान का वेल्लोर कहा जाता है।

गागरोण का किला (झालावाड़)

कालीसिंध व आहू नदी के संगम स्थल पर स्थित यह किला 'जलदुर्ग' की श्रेणी में आता है। इसका निर्माण 11वीं शताब्दी में डोड परमारों द्वारा करवाया गया था। उनके नाम पर यह डोडगढ़ या धूलरगढ़

कहलाया। तत्पश्चात् यह दुर्ग खींची चौहानों के अधिकार में आ गया। यह किला अचलदास खींची की वीरता की याद दिलाता है, जो 1423 में मांडू के सुल्तान हुशंगशाह से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। संत पीपा की छतरी, सूफी संत मिट्ठे साहब (संत हमीदुद्दीन चिश्ती) की दरगाह तथा औरंगजेब द्वारा निर्मित बुलंद दरवाजा इस किले की शोभा बढ़ाते हैं।

गागरोण का किला (झालावाड़)

जयगढ़ (आमेर)

मध्यकालीन भारत की प्रमुख सैनिक इमारतों में से एक जयगढ़ दुर्ग की खास बात यह कि इसमें तोपें ढालने का विशाल कारखाना था, जो शायद ही किसी अन्य भारतीय दुर्ग में रहा है। इस किले में रखी 'जयबाण' तोप एशिया की सबसे बड़ी तोप है। जयगढ़ अपने विशाल पानी के टांकों के लिए भी जाना जाता है। इस किले के निर्माण एवं विस्तार में विभिन्न कछवाहा शासकों का योगदान रहा है, परन्तु इसे वर्तमान स्वरूप सवाई जयसिंह ने प्रदान किया। जयगढ़ को रहस्यमय दुर्ग भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें कई गुप्त सुरंगे हैं।

जालोर का किला

सोनगिरि पहाड़ी पर स्थित यह किला सूकड़ी नदी के किनारे बना हुआ है। शिलालेखों में जालोर का नाम जाबालिपुर और किले का नाम सुवर्णगिरि मिलता है। इस किले का निर्माण प्रतिहार शासकों द्वारा आठवीं सदी में करवाया गया था। किले के भीतर बनी तोपखाना मस्जिद, जो पूर्व में परमार शासक भोज द्वारा निर्मित संस्कृत पाठशाला थी, बहुत आकर्षक है। यहाँ का प्रसिद्ध शासक कान्हड़दे चौहान (1305–1311 ई.) था, जो अलाउद्दीन खिलजी से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ।

जैसलमेर का किला

राजस्थान की स्वर्णनगरी कहे जाने वाले जैसलमेर में त्रिकूट पहाड़ी पर पीले पत्थरों से निर्मित इस किले को 'सोनार का किला' भी कहा जाता है। इसका निर्माण 1155 ई. में भाटी शासक राव जैसल ने करवाया था। इस दुर्ग के चारों ओर विशाल मरूस्थल फैला हुआ है। इसके बारे में यह कहावत प्रचलित है कि यहाँ पत्थर के पैर, लोहे का शरीर और काठ के घोड़े पर सवार होकर ही पहुँचा जा सकता है।

दूर से देखने पर यह किला पहाड़ी पर लंगर डाले एक जहाज जैसा प्रतीत होता। इस किले को कारीगरों ने चूने के स्थान पर बड़े–बड़े पीले पत्थरों को परस्पर जोड़कर खड़ा किया है। किले के अंदर बने प्राचीन एवं भव्य जैन मंदिर – पार्श्वनाथ और ऋषभदेव मंदिर – अपने शिल्प एवं सौन्दर्य के कारण आबू के देलवाड़ा जैन मंदिरों की बराबरी करते हैं। किले के महलों में रंगमहल, मोती महल, गजविलास और

जवाहर विलास प्रमुख हैं। इस किले की प्रसिद्धि इसके दुर्लभ और प्राचीन पाण्डुलिपियों के संग्रहालय के कारण भी है।

लोहागढ़

भरतपुर के जाट राजाओं की वीरता एवं शौर्य गाथाओं को अपने में समेटे लोहागढ़ का किला अजेयता एवं सुदृढ़ता के लिए विख्यात है। इसका निर्माण महाराजा सूरजमल ने 1733 में अपने युवराज काल में करवाया था। लोहागढ़ को पूर्वस्थित में कच्ची गढ़ी को विकसित कर वर्तमान रूप दिया गया। किले के प्रवेशद्वार पर अष्टधातु से निर्मित कलात्मक और मजबूत दरवाजा आज भी वीरता की कहानी कहता है। इस दरवाजे को महाराजा जवाहरसिंह 1765 में दिल्ली से विजय करके लाये थे। इस किले की अभेद्यता का कारण इसकी चौड़ी दीवारें है। किले की बाहरी दीवारें मिट्टी की बनी है तथा इसके चारों ओर एक गहरी खाई है। इस खाई में मोती झील से सुजान गंगा नहर का पानी भरा जाता था। अंग्रेज जनरल लॉर्ड लेक ने 1805 ई. में अपनी विशाल सेना और तोपखाने के साथ पाँच बार इस किले पर चढ़ाई की परन्तु हर बार वह असफल रहा। किले में किशोरी महल, जवाहर बुर्ज, कोठी खास, वजीर की कोठी, दादी माँ का महल, गंगा मंदिर, लक्ष्मण मंदिर आदि प्रमुख है।

उपर्युक्त प्रमुख दुर्गों के अलावा बयाना का किला, तिमनगढ़ का दुर्ग, मारवाड़ का सोजत और कुचामन का किला, पूर्व जयपुर रियासत के शिवाड़, कालख, काकोड़ और खंडार के किले, हाड़ौती का शेरगढ़, सिरोही का बसंतगढ़ का दुर्ग तथा सीकर का लक्ष्मणगढ़ दुर्ग भी अपने स्थापत्य और बनावट के कारण उल्लेखनीय है।

मंदिर शिल्प

स्थापत्य कला न केवल नगर–निर्माण, भवन एवं दुर्ग–निर्माण तक ही सीमित रही वरन् कला की गति और कला की शक्ति के अनुरूप उसका प्रवेश मंदिरों के निर्माण द्वारा भी प्रदर्शित हुआ। भारत में मानसिक तथा राजनीतिक परिवर्तन के साथ कला की प्रगति भी होती रही।

यदि राजस्थान के संदर्भ में चर्चा करें तो, राजस्थान में सातवीं सदी से पूर्व जो मंदिर बने, दुर्भाग्य से उनके अवशेष ही प्राप्त होते हैं, जैसे– बैराठ का मौर्ययुगीन गोल बौद्ध मंदिर, नगरी (चित्तौड़गढ़) का वैष्णव मंदिर। यहाँ मंदिरों के विकास का काल सातवीं से दसवीं सदी के मध्य रहा। लगभग आठवीं सदी से राजस्थान में जिस क्षेत्रीय शैली का विकास हुआ, उसे गुर्जर–प्रतिहार अथवा महामारू कहा गया है। इस शैली के अंतर्गत प्रारंभिक निर्माण मण्डोर के प्रतिहारों, सांभर के चौहानों तथा चित्तौड़ के मौर्यों ने किया।

प्रारंभिक दौर (लगभग 8वीं सदी एवं 9वीं सदी का प्रारंभ) के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मंदिर ओसियां, चित्तौड़गढ़ एवं आभानेरी में स्थित हैं। ओसियां में 8वीं से 12वीं सदी तक जो मंदिर बने उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण पहाड़ी पर सच्चियां माता के मंदिर के पास बना सूर्य मंदिर और नीचे मैदान में बने हरिहर मंदिर व महावीर मंदिर हैं।

9वीं सदी में विकसित गुर्जर प्रतिहार शैली के महत्त्वपूर्ण मंदिर पाली जिले में आऊवा व बालोतरा के पास खेड (दोनों लगभग 850 ई.) के क्रमशः कामेश्वर एवं रणछोड़ जी मंदिर हैं। लगभग 10वीं व 11वीं सदी के प्रारंभ में हमें गुर्जर प्रतिहार शैली का पूर्ण विकास व सोलंकी शैली का प्रारंभ देखने को मिलता हैं। इस समय का पहला महत्त्वपूर्ण मंदिर मेड़ता के दक्षिण में कैकीन्द या जसनगर का नीलकण्ठेश्वर मंदिर है। सीकर के पास हर्षनाथ का मंदिर भी इसी समय का है। सरिस्का के दक्षिण पश्चिम में पारानगर का नीलकण्ठेश्वर मंदिर भी एक भव्य त्रिकूटाकार मंदिर हैं। इन दोनों मंदिरों में हमें गोल स्तंभ मिलते है जो आने वाले समय में आम हो गए थे। गुर्जर प्रतिहार शैली का अंतिम व सबसे भव्य मंदिर किराडू का सोमेश्वर मंदिर (लगभग 1016 ई.) है। यह भारत के सबसे अच्छे मंदिरों में से एक है। इसका शिखर दर्शनीय है।

इस क्रम को आगे बढ़ाने वालों में जालोर के गुर्जर प्रतिहार रहे और उनके पश्चात् चौहानों, परमारों और गुहिलों ने मंदिर शिल्प को समृद्ध बनाया। परन्तु इस काल के कुछ मंदिर गुर्जर–प्रतिहार शैली से अलग भी हैं, इनमें बाड़ौली का मंदिर, नागदा में सास–बहू का मंदिर और उदयपुर में जगत अम्बिका मंदिर प्रमुख हैं।

11वीं से 13वीं सदी के बीच बने राजस्थान के मंदिर सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि यह मंदिर–शिल्प का स्वर्ण काल था। इस काल में राजस्थान में काफी संख्या में विशाल और अलंकृत मंदिर बने, जिन्हें सोलंकी या मारु गुर्जर शैली के अंतर्गत रखा जा सकता है। इस शैली के मंदिरों में ओसियां का सच्चिया माता मंदिर, चित्तौड़ दुर्ग में स्थित समिधेश्वर मंदिर आदि प्रमुख हैं। इस शैली के मंदिरों में खंभे अलंकृत, पतले, लम्बे और गोलाई लिये हुये हैं। ये मंदिर ऊँची पीठिका पर निर्मित हैं।

इस समय ही एक और शैली विकसित हुई–भूमिज। राजस्थान में इस शैली का सबसे पुराना (लगभग 1010–20 ई.) मंदिर पाली जिले में सेवाड़ी का जैन मंदिर है। मैनाल का महानालेश्वर (लगभग 1075 ई.), बारां जिले में रामगढ़ का भण्डदेवरा व बिजोलिया का उंडेश्वर मंदिर इस शैली के अन्य उदाहरण है।

राजस्थान सहित संपूर्ण भारत में 13वीं सदी के बाद का काल मंदिर निर्माण की दृष्टि से बहुत उल्लेखनीय नहीं था। उत्तर भारत में हिमालय पर्वत की निचली श्रृंखलाओं के अलावा शायद राजस्थान ऐसा एकमात्र क्षेत्र था जहाँ बड़े मंदिरों का निर्माण जारी रहा। इसका श्रेय तत्कालीन राजपूत शासकों को हैं। इस काल के मंदिरों में उदयपुर के जगदीशजी, एकलिंगजी के मुख्य मंदिर, केशोरायपाटन के मंदिर और आमेर के जगत शिरोमणि प्रमुख मंदिर है। ये मंदिर आकार की भव्यता लिए रहे हैं। विशाल एवं कलात्मक मंदिरों को बनाने में समय और धन विपुलता से व्यय होता था। बाद में धार्मिक असहिष्णुता के कारण मंदिरों को नष्ट–भ्रष्ट किए जाने के कारण प्रायः इनका निर्माण बंद हो गया। ऐसे मंदिरों के बजाय 16वीं–17वीं सदी के बाद हवेली शैली के मंदिरों के निर्माण की बहुलता रही।

राजस्थान में अनेक जैन मंदिर बने, जो वास्तुकला की दृष्टि से अपना अलग स्थान रखते है। इन मंदिरों में विशिष्ट तल विन्यास, संयोजन और स्वरूप का विकास हुआ जो इस धर्म की पूजा–पद्धति और मान्यताओं के अनुरूप था। जैन मंदिरों में सर्वाधिक प्रसिद्ध देलवाड़ा के मंदिर हैं। इनके अलावा रणकपुर, ओसियां, जैसलमेर आदि स्थानों के जैन मंदिर प्रसिद्ध हैं। पाली जिले में सेवाड़ी, घाणेराव, नाडौल–नारलाई, सिरोही जिले में वर्माण, झालावाड़ जिले में चाँदखेड़ी और झालरापाटन, बूंदी में केशोरायपाटन, करौली में श्रीमहावीर जी आदि जगहों के जैन मंदिर भी प्रसिद्ध है।

एकलिंगजी का मंदिर, उदयपुर

एकलिंगजी का लकुलीश मंदिर उदयपुर शहर के निकट नाथद्वारा राजमार्ग पर कैलाशपुरी नामक गाँव में स्थित है। इसका निर्माण आठवीं सदी में मेवाड़ के गुहिल शासक बप्पा रावल ने करवाया था तथा इसे वर्तमान स्वरूप महाराणा रायमल ने प्रदान किया। मंदिर के मुख्य भाग में काले पत्थर से बनी एकलिंगजी की चतुर्मुखी प्रतिमा है। एकलिंगजी को मेवाड़ राजघराने का कुलदेवता माना जाता था, जबकि मेवाड़ का शासक स्वयं को इनका दीवान मानते थे। इस मंदिर के अहाते में कुंभा द्वारा निर्मित विष्णु मंदिर भी है।

किराडू के मंदिर, बाड़मेर

किराडू का प्राचीन नाम 'किराट कूप' था जो बाड़मेर के हाथमा गाँव के समीप के खड़ीन रेलवे स्टेशन से पांच कि.मी. दूर एक पहाड़ी पर स्थित है। 11वीं–12वीं सदी में बने यहाँ के मंदिर ओसियां के मंदिरों के बाद के समय के हैं। यहाँ पर पाँच मंदिरों का समूह है, जिनमें वैष्णव व शैव मंदिर हैं।

किराडू के मंदिर, बाड़मेर

किराडू के मंदिरों में से सबसे सुन्दर 'सोमेश्वर मंदिर' है। यह मंदिर उच्च कोटि की तक्षण कला के साथ–साथ गुप्तकालीन व क्षेत्रीय परमार और सोलंकी शैली का अद्भुत मिश्रण प्रस्तुत करता है। किराडू को 'राजस्थान का खजुराहो' भी कहा जाता है।

जगतशिरोमणि मंदिर, आमेर

आमेर स्थित इस मंदिर का निर्माण कछवाहा शासक मानसिंह की पत्नी कंकावती ने अपने पुत्र जगतसिंह की याद में करवाया था। मान्यता है कि इस मंदिर में प्रतिष्ठित काले पत्थर की कृष्ण की वही मूर्ति है, जिसकी मीरा चित्तौड़ में आराधना किया करती थी। मानसिंह इसे चित्तौड़ से लेकर आये थे।

जैन मंदिर, देलवाड़ा

उत्तर–मध्यकालीन मंदिर शिल्पकला का चरमोत्कर्ष आबू पर्वत स्थित देलवाड़ा के जैन मंदिरों में देखा जा सकता है। यह राजस्थान–गुजरात की सोलंकी (चालुक्य) शिल्पकला शैली के प्रमुख नमूने कहे जा सकते हैं।

यहाँ स्थित जैन मंदिरों में दो मंदिर प्रमुख हैं। पहला मंदिर प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव का है। इसे 1031 ई. में गुजरात के चालुक्य शासक भीमदेव के मंत्री विमलशाह ने बनवाया था। इस मंदिर को विमलवसाही के नाम से भी जाना जाता है। दूसरा प्रमुख मंदिर 22वें जैन तीर्थंकर नेमिनाथ का है, जिसका निर्माण वास्तुपाल और तेजपाल द्वारा 1230 ई. में करवाया गया था। इस मंदिर को लूणवसाही के नाम से भी जाना जाता है। इस मंदिर के मंडप, स्तम्भों, छतरियों तथा वेदियों के निर्माण में श्वेत पत्थर पर बारीकी से खुदाई की गई है। इस मंदिर के रंग–मण्डप व नवचौकी की कलात्मकता अद्भुत है।

जैन मंदिर, देलवाड़ा

हर्षतमाता मंदिर, आभानेरी

आभानेरी नामक स्थान पर स्थित 'हर्षतमाता' का मंदिर गुर्जर–प्रतिहारकालीन कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। 11वीं शताब्दी में इस प्रदेश को महमूद गजनवी ने नष्ट–भ्रष्ट कर दिया तथा मंदिर भी पूर्णतया क्षतिग्रस्त हो गया। मूलतः यह मंदिर एक विष्णु मंदिर था।

शिव मंदिर, बाड़ौली

चित्तौड़गढ़ जिले में स्थित बाड़ौली शिव मंदिर पंचायतन शैली का मंदिर है। इसमें मुख्य मूर्तियाँ शिव–पार्वती और उनके सेवकों की हैं। ऐसी मान्यता है कि इस मंदिर का निर्माण हूण शासक तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल ने करवाया था।

शिव मंदिर, भण्डदेवरा

बारां जिले के रामगढ़ में स्थित भण्डदेवरा का शिव मंदिर 'हाड़ौती का खजुराहो' के रूप में प्रसिद्ध है। इसका निर्माण मेदवंशीय राजा मलय वर्मा ने 10वीं सदी में करवाया था। यह मंदिर पंचायतन शैली में बना हुआ है।

जैन मंदिर, रणकपुर

पाली जिले में स्थित रणकपुर का जैन मंदिर अपनी अद्भुत शिल्पकला एवं भव्यता के लिए विख्यात है। प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ को समर्पित इस मंदिर का निर्माण महाराणा कुंभा के शासनकाल

(1433–1468 ई.) में धरणीशाह नामक एक जैन व्यापारी ने करवाया था। यह मंदिर 1444 खंभों पर टिका होने के कारण 'खंभों का अजायबघर' भी कहा जाता है। मूल गर्भगृह में आदिनाथ की चार मुख वाली मूर्ति प्रतिष्ठापित है। इसलिए यह मंदिर 'चौमुखा मंदिर' भी कहलाता है।

सच्चिया माता मंदिर, ओसियां

जोधपुर से 57 किमी. की दूरी पर दक्षिण–पश्चिम दिशा में ओसियां स्थित है। यहाँ 8वीं सदी के बने वैष्णव व जैन मंदिर समूह गुर्जर–प्रतिहार कला के प्रमुख केन्द्र थे। यहाँ पारम्परिक तरीके से वैष्णव, शैव व जैन मंदिरों का निर्माण हुआ है। ओसियां के वैष्णव मंदिरों में हरिहर मंदिर व सूर्य मंदिर प्रमुख हैं। जैन मंदिरों में महावीर का मंदिर तथा शाक्त मंदिरों में पीपला माता तथा सच्चिया माता के मंदिर प्रमुख है।

सास–बहू मंदिर, नागदा

उदयपुर से 27 किमी. दूर नागदा में 1026 ई. में गुहिल शासक श्रीधर द्वारा कुछ मंदिरों का निर्माण कराया गया। इनमें से दो जुड़वा वैष्णव मंदिर 'सास–बहू' मंदिर के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये दोनों ही मंदिर आकार में छोटे–बड़े होने के बावजूद भी अलंकरण की दृष्टि से समान ही है। ये मंदिर विष्णु (सहस्त्रबाहू) को समर्पित है।

राजप्रासाद एवं महल स्थापत्य

स्थापत्य का एक विशिष्ट रूप राजप्रासाद है। राजस्थान में राजपूतों के राज्य स्थापित होने के साथ राजभवनों का भी निर्माण होने लगा। मेनाल, नागदा, आमेर आदि स्थानों में पूर्व मध्य काल के राजभवनों के अवशेष मिलते हैं, जिनमें छोटे–छोटे कमरे, छोटे–छोटे दरवाजे, खिड़कियों का अभाव एवं दो किनारों के कमरों को बरामदे से जोड़ा जाना इनकी विशेषता है।

मध्यकाल में आर्थिक समृद्धि के कारण राजप्रासाद विशाल, भव्य एवं सुसज्जित बनने लगे। कुम्भाकालीन राजप्रासाद सादे थे किन्तु बाद के काल में महलों की बनावट एवं शिल्प में परिवर्तन दिखाई देता है। 15वीं सदी के बाद जब राजपूत शासकों का मुगलों के साथ सम्पर्क हुआ, तो उसका असर यहाँ के महलों के स्थापत्य पर भी दिखाई दिया। फव्वारे, छोटे बाग–बगीचे, बेल–बूँटे, संगमरमर का प्रयोग, मेहराब, गुम्बज आदि रूपों में मुगल प्रभाव इन इमारतों पर दिखाई देता है। जैसे– उदयपुर के महलों में अमरसिंह के महल, कर्णसिंह का जगमंदिर, जगतसिंह द्वितीय के काल का प्रीतम निवास महल, जगनिवास महल, आमेर के दीवाने आम, दीवाने खास, बीकानेर के कर्णमहल, शीशमहल, अनूप महल, रंगमहल, जोधपुर के फूल महल आदि।

सत्रहवीं सदी के पश्चात् कोटा, बूंदी, जयपुर आदि में महलों में स्पष्टतः मुगल प्रभाव दिखाई देता है। मुगल प्रभाव के कारण राजप्रासादों में दीवाने आम, दीवाने खास, चित्रशालाएं, बारहदरियां, गवाक्ष–झरोखे, रंग महल आदि को जगह मिलने लगी। इस प्रकार के महलों में जयपुर का सिटी पैलेस तथा उदयपुर का सिटी पैलेस मुख्य है। राजस्थान के महलों में डीग के महल, जिन्हें जलमहल भी कहते हैं, का विशेष स्थान है। डीग के महलों के चारों ओर छज्जे (कार्निस) हैं, जो अलग ही प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

हवेली स्थापत्य

राजस्थान के नगरों में सामंत और सेठों ने भव्य हवेलियां बनवाई। जयपुर की हवेली परम्परा इतनी प्रसिद्ध हुई कि बाद में शेखावाटी के धनिकों ने अपने–अपने गाँव में विशाल हवेलियां बनवाने की परम्परा की नींव डाल दी। रामगढ़, नवलगढ़, फतेहपुर, मुकुन्दगढ़, मण्डावा, पिलानी, सरदार शहर, रतनगढ़, लक्ष्मणगढ़ आदि कस्बों में विशाल हवेलियां बनना प्रारम्भ हो गई।

जैसलमेर की सालिमसिंह की हवेली, नथमल की हवेली तथा पटवों की हवेली तो पत्थर की जाली एवं कटाई के कारण आज दुनिया भर में प्रसिद्ध हो गयी हैं। इसी प्रकार बंसी पत्थर की बनी करौली,

भरतपुर, कोटा की हवेलियां भी अपनी कलात्मक संगतराशी के कारण अद्‌भुत हैं। बाद के वैष्णव मंदिर भी हवेली शैली के आधार पर ही बने, इसलिए विशाल हवेलियां मंदिरों के रूप में आज जगह–जगह दिखाई देती है।

बीकानेर की प्रसिद्ध 'बच्छावतों की हवेली' सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कर्णसिंह बच्छावत द्वारा बनवाई गयी। इसके अलावा बीकानेर में मोहता, मूंदड़ा, रामपुरिया आदि की हवेलियां अपने शिल्प वैभव के कारण विख्यात है। बीकानेर की हवेलियां लाल पत्थर से बनी है। इनकी सजावट में मुगल, किशनगढ़ एवं यूरोपीय चित्रशैली प्रयुक्त की गई है।

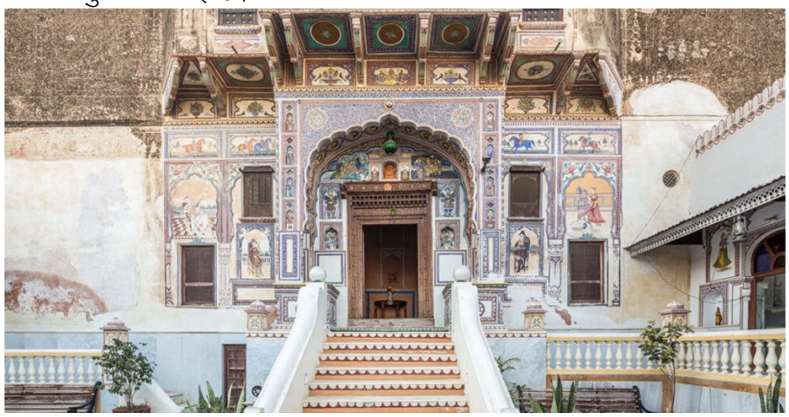

मण्डावा हवेली

शेखावाटी की हवेलियां अपने भित्तिचित्रों के लिए प्रसिद्ध हैं। नवलगढ़ की हवेलियों में रूप निवास, भगत, जालान, पोद्दार और भगेरियां की हवेलियां प्रसिद्ध हैं। बिसाऊ (झुंझुनूं) में नाथूराम पोद्दार की हवेली, सेठ जयदयाल केड़िया की तथा सीताराम सिंगतिया की हवेली विख्यात है। डूंडलोद (झुंझुनूं) में सेठ लालचन्द गोयनका, मुकुन्दगढ़ (झुझुनूं) में सेठ राधाकृष्ण एवं केसरदेव कानेड़िया की हवेलियां, चिड़ावा (झुंझुनूं) में बगड़ियां की हवेली, महनसर (झुंझुनूं) की सोने–चांदी की हवेली, श्रीमाधोपुर (सीकर) में पंसारी की हवेली सुप्रसिद्ध है। लक्ष्मणगढ़ (सीकर) की चार चौक की हवेली व चेतराम की हवेली भी दर्शनीय है।

सीकर में गौरीलाल बियाणी की हवेली, रामगढ़ (सीकर) में ताराचन्द रूइया की हवेली, फतेहपुर (सीकर) में नन्दलाल देवड़ा की हवेलियां भी समकालीन भित्तिचित्रों के कारण प्रसिद्ध है। चूरू की हवेलियों में मालजी का कमरा, रामनिवास गोयनका की हवेली, मंत्रियों की हवेली इत्यादि विख्यात है।

जोधपुर में बड़े मियां की हवेली, पोकरण की हवेली, राखी हवेली, टोंक की सुनहरी कोठी, उदयपुर में बागौर की हवेली, जयपुर में नाटाणियों की हवेली, रत्नाकार पुण्डरीक की हवेली, पुरोहित प्रतापनारायण जी की हवेली इत्यादि में हवेली स्थापत्य के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं।

छतरियाँ, मकबरे और दरगाह

मृत्यु के बाद स्मृति–चिह्न बनाने की परम्परा बहुत पुरानी है। राजस्थान के शासक तथा श्रेष्ठि–वर्ग सम्पन्न था, अतः उनकी मृत्यु के बाद उनकी याद में स्थापत्य की दृष्टि से विशिष्ट स्मारक बनाए गये, जिन्हें छतरियों और देवल के नाम से जाना जाता है। स्थापत्य कला एवं भवन निर्माण की दृष्टि से ये स्मारक बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। जयपुर का गैटोर, जोधपुर का जसवंत थड़ा, कोटा का छत्रविलास बाग, जैसलमेर का बड़ा बाग तो इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

छतरियाँ मुगल और राजपूत कला का सुन्दर समन्वय प्रदर्शित करती हैं। अलवर में मूसी महारानी की छतरी, फतह गुम्बद, करौली में गोपालसिंह की छतरी, बूंदी में चौरासी खम्भों की छतरी, रामगढ़ में सेठों की छतरी, बीकानेर में राव कल्याणमल की छतरी, गैटोर में सवाई जयसिंह की छतरी, जोधपुर में जसवंत सिंह का थड़ा, जैसलमेर में राजाओं और पालीवालों की छतरियों का स्थापत्य विलक्षण है।

सूफी संत ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह (अजमेर) और हमीद्दीन नागौरी की दरगाह (नागौर) लोगों की आस्था का केंद्र होने के साथ–साथ स्थापत्य के बेजोड़ नमूने है। दीवानशाह की दरगाह (कपासन), मिट्ठेशाह की दरगाह (गागरोन), शक्कर पीर बाबा की दरगाह (नरहड़), अब्दुल पीर की मजार (भवानपुरा), मीरा साहब की दरगाह (बूंदी), ख्वाजा फखरुद्दीन की दरगाह (सरवाड़), अब्दुल्ला खाँ का मकबरा (अजमेर) आदि हिन्दू–मुस्लिम स्थापत्य कला के समन्वय के प्रतीक है।

जल स्थापत्य

राजस्थान का एक बड़ा हिस्सा रेतीला है। इसके बावजूद भी यहाँ जल स्थापत्य का विकास हुआ। कुँए, कुंड, बावडियां, टांके यहाँ के जल स्थापत्य की पहचान है। कुआं राजस्थान में उपयोगी जलस्रोत है। बांदीकुई का नाम किसी बांदी अर्थात् दासी द्वारा बनवाये कुएं के नाम पर रखा गया है। बाटाडू गाँव (बाड़मेर) में आधुनिक पाषाण कला से बना संगमरमर का कुआँ दर्शनीय है।

टांके जल स्थापत्य के महत्वपूर्ण उदाहरण है। इनमें बरसाती पानी एकत्रित किया जाता है। टांकों के अच्छे नमूने किलों में मिलते हैं, जिनमें जयपुर का जयगढ़ किला प्रमुख है। ये टांके मध्यकालीन सिविल इंजिनियरिंग के उत्तम प्रमाण हैं।

राजस्थान के जन–जीवन में बावड़ियां बहुत महत्वपूर्ण है। इनके निर्माण में उपयोगिता के साथ ही सौन्दर्य का भी विशेष ध्यान रखा जाता था। ये राजपरिवार के सदस्यों मुख्यतः रानियां, राजमाताएं, श्रेष्ठी वर्ग इत्यादि द्वारा बनवायी जाती थी। इनके निर्माण से संबंधित सूचनाएं भी शिलालेखों पर अंकित की जाती थी, जिनसे निर्माताओं और कारीगरों की जानकारी प्राप्त होती है।

बांदीकुई के निकट बनी आभानेरी की चांद बावड़ी संभवतया राज्य की सबसे कलात्मक बावड़ी है। मान्यता है कि किसी चांद नामक राजा ने इसे बनवाया था। मेवाड़ महाराणा राजसिंह की पत्नी रानी रामरसदे ने उदयपुर में त्रिमुखी बावड़ी का निर्माण करवाया। डूंगरपुर के निकट स्थित प्रसिद्ध नौलखा बावड़ी महारावल आसकरण की पत्नी प्रीमल देवी ने बनवायी थी। बूंदी में स्थित रानीजी की बावड़ी का निर्माण बूंदी के शासक अनिरुद्ध सिंह की पत्नी नाथावती ने 1699 ई. में करवाया था।

राजस्थान के दक्षिण–पश्चिमी भागों में बड़े–बड़े तालाब भी रहे हैं जो अपने प्रकार के स्थापत्य पर रोशनी डालते हैं। चूंकि ये भाग अधिकांश पहाड़ी हैं, अतः वहाँ दो पहाड़ों के बीच के स्थान को रोककर धूल और पत्थरों का बांध बना दिया जाता था। बांध को आगे से सीढ़ियों से तालाब तक जोड़ दिया जाता था। बांध पक्का बनाया जाता था। इसके नीचे कुछ वृक्षों की पंक्तियां लगा दी जाती थीं और उन्हें पक्के बांध से जोड़ दिया जाता था। इस प्रकार के बांधों में पिछौला (उदयपुर), गेबसागर (डूंगरपुर), राजसमंद (राजनगर) और जयसमंद (ढेबर) बड़े प्रसिद्ध हैं। इनके निर्माण में यही पद्धति 11वीं सदी से 17वीं सदी तक काम ली गयी है। इन बांधों में राजसमंद का बांध विशिष्ट है। इसे दुष्काल से पीड़ित जनता को राहत देने के लिए बनाया गया था। इस बांध पर नौचौकी नामक तीन–तीन भाग वाली तीन छत्रियां बनायी गयी हैं जो तक्षण–कला की दृष्टि से अनुपम हैं।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. किस दुर्ग के लिए कहा गया है कि ''यह दुर्ग बख्तरबंद है।''
   (अ) रणथम्भौर (ब) नाहरगढ़
   (स) सिवाणा (द) तारागढ़
2. एक जैसे नौ महल किस किले में बने हुए हैं?
   (अ) नाहरगढ़ (ब) तारागढ़
   (स) चित्तौड़गढ़ (द) गागरोण
3. अकबर का दुर्ग कहाँ स्थित है?
   (अ) अजमेर (ब) जयपुर
   (स) बीकानेर (द) चित्तौड़गढ़
4. हर्षतमाता मंदिर कहाँ पर स्थित है–
   (अ) आभानेरी (ब) पुष्कर
   (स) सालासर (द) माउंटआबू

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. राजस्थान के उन दुर्गों का नामोल्लेख कीजिए जिन्हें 'वर्ल्ड हेरिटेज साइट' की सूची में शामिल किया गया है।
2. चित्तौड़गढ़ का दुर्ग किस पठार पर स्थित है?
3. कुंभलगढ़ दुर्ग का प्रमुख शिल्पी कौन था?
4. सुदर्शनगढ़ किस किले का दूसरा नाम है?
5. तारागढ़ नामक दुर्ग किन दो स्थानों पर स्थित है?
6. किस दुर्ग को 'राजस्थान का वेल्लोर' कहा जाता है?
7. सास–बहू मंदिर किस स्थान पर स्थित है?
8. 'बच्छावतों की हवेली' किस शहर में स्थित है?
9. सुमेलित कीजिए

छतरी	संबंधित स्थल
1. गोपाल सिंह की छतरी	जोधपुर
2. मूसी महारानी की छतरी	गैटोर
3. सवाई जयसिंह की छतरी	अलवर
4. जसवंत थड़ा	करौली

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. राजस्थान की किन्ही दो बावड़ियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।
2. राजस्थान में स्थित पांच प्रमुखों दरगाहों का उल्लेख कीजिये।
3. लोहागढ़ किले की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. राजस्थान के हवेली स्थापत्य पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
2. राजस्थान के मंदिर शिल्प की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. दुर्गों की विभिन्न श्रेणियों की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

परियोजनात्मक कार्य :

1. अपने आस–पास स्थित किसी मंदिर में जाकर उसकी प्रमुख विशेषताओं का एक चार्ट तैयार कीजिए।

कल्पना करें :

1. आपका एक विदेशी मित्र राजस्थान की प्रमुख हवेलियां देखना चाहता है, आप उसे कहाँ घूमाने ले जाएंगे?

अध्याय

7

लोक संगीत

राजस्थान का विशिष्ट भौगोलिक परिवेश यहाँ बहुरंगी लोक जीवन का सृजनकर्त्ता है। यहाँ के लोक जीवन का इतिहास, सामाजिक और नैतिक आदर्श लोक संगीत में संरक्षित है। जीवन के प्रत्येक प्रसंग से संबंधित लोक गीत यहाँ पर उपलब्ध हैं।

जनसामान्य के स्वाभाविक उद्गारों का प्रतिबिम्ब ही लोक संगीत है। लोक संगीत का मूल आधार लोक गीत हैं जिन्हें विभिन्न उत्सवों व अनुष्ठानों में सामूहिक रूप से गाया जाता है। लोक–वाद्यों की संगति इनके माधुर्य में वृद्धि करती है।

कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर ने लोक गीतों को संस्कृति का सुखद सन्देश ले जाने वाली कला कहा है। गाँधीजी के शब्दों में ''लोक गीत ही जनता की भाषा है, लोक गीत हमारी संस्कृति के पहरेदार हैं।''

स्टैंडर्ड डिकशनरी ऑफ फोकलोर माइथोलॉजी एण्ड लेजेण्ड में लोक गीत को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''लोक गीत उस जनसमूह की संगीतमयी काव्य रचनाएं है जिसका साहित्य लेखनी अथवा छपाई से नहीं वरन् मौखिक परम्परा से अविरत संबद्ध रहता है।''

लोक गीत की तुलना शास्त्रीय संगीत से नहीं की जा सकती क्योंकि लोक गीत विविध विषयों यथा पारिवारिक व सामाजिक अवसरों, मौसम, संस्कार, पर्व–त्यौहार, देवी–देवता, विधि–विधान और कर्मकांड से संबंधित होते हैं। शास्त्रीय संगीत विषय के गंभीर ज्ञान से पैदा होता है जबकि लोक गीत दैनिक अनुभव और सच्चाइयों का सीधा–सपाट संप्रेषण करते हैं। शास्त्रीय संगीत का संबंध जहाँ बौद्धिकता से है, वहीं लोक गीत सीधे मानवीय भावनाओं से संबंधित होते हैं।

राजस्थान के लोक संगीत को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं। लोक संगीत के प्रथम भाग में वे गीत आते हैं जो जन–सामान्य द्वारा विभिन्न अवसरों पर गाये जाते हैं। द्वितीय भाग में वे गीत हैं जो सामन्तशाही के प्रभाव से विकसित हुए। कई जातियों ने अपने आश्रयदाता राजा–महाराजा, जागीरदार–सामन्त आदि की प्रशस्ति में गीत गाकर इन्हें व्यावसायिक रूप में अपनाया। तीसरे भाग में वे गीत आते हैं जिनमें क्षेत्रीय प्रभाव प्रचुरता से दृष्टिगत होता है।

जन–सामान्य के लोक गीत

सर्वाधिक लोक गीत संस्कारों, त्यौहारों व पर्वों के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं। जन्म और विवाह संबंधी गीतों की संख्या अधिक है। वैवाहिक अवसर पर सगाई, बधावा, चाकभात, रतजगा, मायरा, हल्दी, घोड़ी, बना–बनी, वर निकासी, तोरण, हथलेवा, कंवर कलेवा, जीमणवार, काँकणडोरा, जला, जुआ–जुई आदि गीत गाये जाते हैं।

विवाह पूर्व वर–वधू की प्रेमाकांक्षा की अभिव्यक्ति बना–बनी के गीतों में मिलती है। विवाह के पूर्व वर को रिश्तेदारों के यहाँ आमंत्रित किया जाता है वहां से लौटते समय 'बिंदोला' (बंदोला) संबंधी गीत गाया जाता है। वर निकासी के मौके पर घुड़चढ़ी की रस्म के समय 'घोड़ी' गाई जाती है। वधू के घर की स्त्रियों

द्वारा वर की बारात का डेरा देखने जाने का उल्लेख 'जला' गीतों में मिलता है। शिशु के जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'जच्चा' कहे जाते हैं। इनमें सामान्यतः गर्भिणी की प्रशंसा, वंशवृद्धि का उल्लास और शिशु के लिए मंगलकामना की जाती है।

त्यौहार व पर्व–गीतों में गणगौर, तीज, होली, रक्षाबंधन, दीपावली, नवरात्रि, मकर संक्रांति के अवसर पर गाये जाने वाले अनेक गीत हैं। गणगौर व तीज राजस्थान के विशेष पर्व हैं। गणगौर का पर्व चैत्र माह में सोलह दिनों तक कुंवारी कन्याओं व सधवा स्त्रियों द्वारा अनुष्ठानपूर्वक आयोजित किया जाता है। गणगौर का प्रसिद्ध गीत इस प्रकार है–

"खेलण दो गणगौर भंवर म्हानें खेलण दो गणगौर,

म्हारी सखियाँ जोवे बाट हो भंवर म्हानें खेलण दो गणगौर।"

गणगौर व तीज के अवसर पर 'घूमर' नृत्य–गीत राजस्थान की पहचान बन चुका है। गीत इस प्रकार है–

"म्हारी घूमर छे नखराली ए मा गोरी घूमर रमवा म्है जास्याँ।"

तीज पर श्रावण माह के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करने वाले 'तीज' गीतों का गान किया जाता है। होली के समय फाल्गुन में पुरुषों की टोलियाँ रसिया, होरी, धमाल आदि गीत गाती हुई राजस्थान के प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई पड़ती हैं।

राजस्थान के ऋतु–गीतों में शरद, ग्रीष्म, वर्षा और बसंत के गीत जैसे फाग, बीजण, शियाळा, बारहमासा, होली, चेती और कजली, जाड़ा, सावन के गीतों में चौमासा, पपैयो, बदली, मोर संबंधित गीत और इन्द्रदेव की स्तुति आदि है।

लोक देवताओं में तेजाजी, देवजी, पाबूजी, गोगाजी, जुझारजी आदि वीर पुरुषों ने परमार्थ के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था, अतः उनका गुणगान करने वाले अनेक भजन तन्मयता से गाये जाते हैं। लोक–देवियों में सती माता, सीतला माता, दियाड़ी माता की पूजा आदि अत्यन्त श्रद्धा से की जाती है। इनकी आराधना में भजन गाये जाते हैं।

मीरां, कबीर, दादू, रैदास, चन्द्रसखी, बख्तावरजी आदि के पदों का गान तथा नाथपंथी व निर्गुणी भजन भी बहुत संख्या में मिलते हैं। भरतपुर व कामाँ में ब्रज संस्कृति के प्रभाव से कृष्ण लीलाओं संबंधी गान और करौली क्षेत्र में कैलादेवी भक्ति के 'लांगुरिया' गीत अति लोकप्रिय हैं।

राजस्थान की लोक–संस्कृति को प्रदर्शित करने वाले अनेक विषयों के गीत भी मिलते हैं। इनमें आकांक्षाओं, भावों व प्रसंगों को प्रकृति या किन्हीं वस्तुओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। ऐसे गीतों में ईंडोणी, कांगसियों, गोरबन्द, पणिहारी, लूर, ओळूं, सुपणा, हिचकी, मूमल, कुरजाँ, काजलिया, कागा आदि अत्यन्त मधुर हैं। बच्चों के क्रीड़ा गीत, जादू–टोने से संबंधित कामण गीत आदि में लोक संगीत का सौन्दर्य दिखाई देता है।

व्यावसायिक जातियों के लोक गीत

राजस्थान में कई जातियों ने संगीत को व्यवसाय के रूप में अपनाया है। इनमें ढोली, मिरासी, लंगा, ढाढ़ी, कलावन्त, भाट, राव, जोगी, कामड़, वैरागी, गन्धर्व, भोपे, भवाई, राणा, कालबेलिया, कथिक आदि शामिल हैं। इनके गीत परिष्कृत, भावपूर्ण और वैविध्यमय होते हैं। इन्हें ख्याल एवं ठुमरी की तरह छोटी–छोटी तानों, मुरकियों व विशेष झटकों से सजाया जाता है। इन गीतों में माँड, देस, सोरठ, मारू, परज, कालिंगड़ा, जोगिया, आसावरी, बिलावल, पीलू, खमाज आदि कई रागों की छाया प्रतिबिम्बित

होती है।

राजस्थान की माँड गायकी अत्यन्त प्रसिद्ध है। सुविख्यात माँड गायिका पद्मश्री अल्लाह जिल्लाई बाई का गाया 'पधारो म्हारे देस' पर्यटकों को खुला निमंत्रण है। विभिन्न क्षेत्रों में कुछ अंतर के साथ माँड के अनेक प्रकार प्रचलित हैं, जैसे– उदयपुर की माँड, जोधपुर की माँड, जयपुर–बीकानेर की माँड, जैसलमेर की माँड आदि।

यहाँ के अधिकांश दोहे देस व सोरठ पर आधारित हैं। व्यावसायिक जातियों द्वारा युद्ध के समय गाये जाने वाले वीर रसात्मक गीत सिन्धु और मारू रागों पर आधारित थे।

क्षेत्रीय लोक गीत

राजस्थान में भौगोलिक रूप से मरूस्थल, पर्वतीय क्षेत्र व समतल मैदान सभी विद्यमान है। बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर आदि मरूस्थलीय क्षेत्र के गीत अधिक आकर्षक व मधुर होते हैं। उन्मुक्त वातावरण की वजह से यहाँ के लोक गीत ऊँचे स्वरों व लम्बी धुन तथा अधिक स्वर विस्तार वाले होते हैं। कुरजाँ, पीपली, रतन राणो, मूमल, घूघरी, केवड़ा आदि यहाँ के प्रमुख लोक गीत हैं। कामड़, भोपे, लंगे, मिरासी, कलावन्त आदि यहां की प्रमुख संगीतज्ञ जातियां हैं।

राजस्थान के दक्षिणी पहाड़ी प्रदेश, जैसे– उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, सिरोही तथा आबू में सामूहिक लोक गीतों का प्रचलन अधिक है। यहाँ भील, मीणा, गरासिया, सहरिया आदि जनजातियाँ निवास करती हैं। इनके गीतों की धुनें सरल, संक्षिप्त व कम स्वरों वाली होती हैं। मेवाड़ क्षेत्र के मुख्य लोक गीत पटेल्या, बीछियो, लालर, माछर, नोखीला, थारी ऊँटा री असवारी, नावरी असवारी, शिकार आदि है। उत्तरी मेवाड़ के भीलों का प्रसिद्ध गीत हमसीढ़ों है जिसे स्त्री व पुरुष मिलकर गाते हैं।

राजस्थान के समतलीय भाग में जयपुर, कोटा, अलवर, भरतपुर, करौली तथा धौलपुर क्षेत्र आते हैं। यहाँ भाषा और स्वर–रचना की दृष्टि से वैविध्ययुक्त गीत प्रचलित हैं। यहाँ भक्ति व श्रृंगार रस के गीतों का आधिक्य है।

इस प्रकार लोक संगीत की दृष्टि से राजस्थान एक समृद्ध प्रदेश है। रस की दृष्टि से यहाँ सर्वाधिक संख्या श्रृंगार–रस के गीतों की है। जिसमें वियोग श्रृंगार का वर्णन अधिक मिलता है, जिसके पीछे कारण यहाँ पुरुषों के जीविकोपार्जन अथवा व्यापार आदि हेतु परदेस गमन की प्रवृत्ति है। श्रृंगार रस के पश्चात् शांत रस और फिर वीर रसात्मक गीत आते हैं।

बच्चों के खेल–गीत

खेल लड़के–लड़कियों के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। खेलों में गीत और कविता होने से अधिक सरसता हो जाती है। इन गीतों की राग साधारण है फिर भी उनमें लय है–

(1) कान कतरनी, कान कतरनी छब्बक छैया छब्बक छैया, बोल मेरा भैया।

(2) टम्पो घोड़ी फूल गुलाब रो।

(3) काकड़ वेल मतीरा पाक्या टींडसियां का टोरा लाग्या, राजाजी राजाजी खोलो कुँवाड़ (छोटे बच्चों का)।

(4) मछली मछली कितणो पाणी? हाँ मियाजी इतणो पाणी। (छोटे बच्चों का)।

(5) म्हारा महैलां पाछे कूण है?

दीपावली के 15 दिन पहले ही लड़के और लड़कियों की टोलियाँ प्रायः सबके घर गाते हुए निकल जाती हैं। लड़कों के द्वारा गाये जाने वाले गीतों को 'लोवड़ी' अथवा 'हरणी' भी कहते हैं और लड़कियों के द्वारा गाये जाने वाले गीतों को 'घड़ल्यों' कहते हैं। ये मेवाड़ की ओर प्रचलित हैं।

राजस्थान का लोक संगीत : देवीलाल सामर; पृष्ठ 57–58

क्या आप जानते हैं?

(1) पुरुषों के गीत– भजन, होली पर चंग के गीत, धमालें, मंदिरों के रात्रि जागरण, कीर्तन आदि।

(2) बालकों के गीतों के अवसर– चौक च्यानणी (गणेश चतुर्थी महोत्सव), ढप के गीत, धमालें, मंदिरों के रात्रि जागरण के भजन, दीपावली।

(3) स्त्रियों के गीतों के अवसर– होली, तीज (चौमासा), गणगौर (घूमर), विवाह, पुत्र–जन्मोत्सव, रातिजगे, हरजस, बारा मासिये, शीतला, पावणा के शुभागमन पर, कार्तिक स्नान, जच्चा, जात, जड़ूले एवं मेले।

(4) बालिकाओं के गीतों के अवसर– गणगौर, जीजा के आगमन पर, चानाचट के त्यौहार पर, तीज (झूले के गीत), होली, दीपावली।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. पटेल्या, बीछियों, लालर क्या है?
   (अ) लोक नृत्य (ब) लोक गीत
   (स) लोक नाट्य (द) वाद्य यंत्र
2. लांगुरिया गीत किस देवी / देवता से संबंधित हैं?
   (अ) जीण माता (ब) खाटूश्यामजी
   (स) कैला देवी (द) श्री महावीरजी
3. अल्लाह जिल्लाई बाई की प्रसिद्धी का कारण है–
   (अ) माँड गायन (ब) नृत्य
   (स) कुरजां गायन (द) रावण–हत्था

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले चार लोक गीतों के नाम लिखिये।
2. गणगौर के अवसर पर गाये जाने वाले गीत की दो पंक्तियाँ लिखिये।
3. होली के अवसर पर पुरुषों द्वारा गाये जाने वाले लोक गीतों के नाम लिखिए।
4. मायरा, हल्दी, घोड़ी आदि लोक गीत किस अवसर पर गाये जाते हैं?
5. 'जच्चा' लोक गीत किस अवसर पर गाया जाता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. राजस्थान के लोक गीतों को कितनी कोटियों में विभक्त किया गया है? वर्णन कीजिये।
2. राजस्थान की उन प्रमुख व्यावसायिक जातियों का वर्णन कीजिये, जो संगीत को एक व्यवसाय के रूप में अपना चुकी हैं।
3. राजस्थान की लोक–संस्कृति के प्रतिनिधि विभिन्न गीतों का नाम बताइये।
4. लोक गीत, शास्त्रीय संगीत से किस प्रकार भिन्न है? प्रकाश डालिये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. जन सामान्य द्वारा गाये जाने वाले लोक गीतों पर एक आलेख लिखिये।
2. व्यावसायिक जातियों के लोक गीत व क्षेत्रीय लोक गीतों पर एक निबंध लिखिये।

परियोजनात्मक कार्य :

1. अपने आस–पास होने वाले किसी विवाह समारोह में सम्मिलित हो एवं वहाँ गाये जाने वाले विभिन्न लोक गीतों को एक पुस्तिका में लिखिये।
2. भारत के विभिन्न क्षेत्रों में कौनसे लोक गीत गाये जाते हैं? उनका पता लगाकर मानचित्र में अंकित कीजिए।

कल्पना करें :

1. आपके बड़े भाई की शादी है, इस अवसर पर कौन–कौन से लोक गीत गाये जाएंगे?

अध्याय

8

राजस्थान के लोक नृत्य और लोक नाट्य

लोक नृत्य – राजस्थान विविध कलाओं के साथ–साथ विभिन्न नृत्यों की भी रंगस्थली रहा है, इसलिए इसे रंगीला राजस्थान कहते हैं। सरल हृदय ग्रामीणों द्वारा आनन्द व उत्साहपूर्वक लय के साथ अंगों के संचालन को 'देशी नृत्य' कहते है। इन्हें 'लोक नृत्य' भी कहा जाता है।

लोक नृत्य में शास्त्रीय नृत्य की तरह ताल, लय आदि का सख्ती से पालन नहीं होता है। सामान्य जन द्वारा रचे गये लोक नृत्यों में मानव जीवन का सहज चित्रण होता है। लोकोत्सव, पर्व, तीज–त्यौहार, मेले व लोकानुष्ठान आदि अवसरों पर रंग–बिरंगी वेशभूषा और स्थान विशेष की परम्पराओं के अनुसार लोकनृत्य की परम्परा सदियों से चली आ रही है।

लोक नृत्यों पर प्रदेश की भौगोलिक स्थिति, सामाजिक बंधन इत्यादि का प्रभाव रहता है। सुप्रसिद्ध कला मर्मज्ञ एवं उदयपुर के लोककला मंडल के संस्थापक देवीलाल सामर ने राजस्थान के लोकनृत्यों को उनके प्रचलन वाले क्षेत्रों की भौगोलिक विशिष्टताओं के आधार पर तीन भागों में बांटा है– पहाड़ी, राजस्थानी तथा पूर्वी मैदानी।

कुछ लोकनृत्य राजस्थान के क्षेत्र विशेष की पहचान बन गये हैं। इनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है–

गेर नृत्य

गेर मेवाड़ और बाड़मेर क्षेत्र का प्रसिद्ध लोकनृत्य है। इसमें होली के अवसर पर पुरुष लकड़ी की छड़ियां लेकर गोल घेरे में नृत्य करते हैं। गोल घेरे में नृत्य के कारण इसे गेर तथा गेर करने वाले 'गेरिये' कहलाते हैं। मेवाड़ व बाड़मेर के गेर नृत्य की मूल रचना समान है। किंतु इनमें चाल व मण्डल बनाने की क्रिया में अंतर होता है। इस नृत्य में प्रयुक्त प्रमुख वाद्य ढोल, बांकिया और थाली है।

गींदड़ नृत्य

शेखावाटी क्षेत्र का प्रसिद्ध गींदड़ नृत्य होली के दिनों में एक सप्ताह तक चलता है। नगाड़े की चोट पर पुरुष अपने दोनों हाथों में डण्डों को परस्पर टकराकर नृत्य करते हैं। यह विशुद्ध रूप से पुरुषों का नृत्य है। इस नृत्य में प्रयोग किये जाने वाले वाद्य यंत्र ढोल, डफ, चंग है। इसमें होली से संबंधित गीत गाये जाते हैं। कुछ पुरुष महिलाओं के वस्त्र पहनकर इसमें भाग लेते हैं, जिन्हें गणगौर कहा जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार के स्वांग किये जाते है जिनमें साधु, शिकारी, सेठ–सेठानी, दूल्हा–दुल्हन, सरदार, पठान, पादरी, बाजीगर आदि प्रमुख हैं।

कच्छी घोड़ी नृत्य

'कच्छी घोड़ी' शेखावाटी तथा कुचामन, परबतसर, डीडवाना आदि क्षेत्रों का प्रमुख व्यावसायिक लोक नृत्य है। यह विवाह के अवसर पर किया जाता है। इस नृत्य में ढोल–थाली बजती है। नर्तक वीरोचित वेशभूषा धारण करके तलवार हाथ में लेकर काठ व कपड़े से बनी घोड़ी पर सवार होकर नृत्य करता है।

चंग नृत्य

यह शेखावाटी क्षेत्र में होली के दिनों में पुरुषों द्वारा किया जाने वाला नृत्य है। इस नृत्य में प्रत्येक

पुरुष चंग बजाते हुए वृत्ताकार नृत्य करते हैं। फिर घेरे के मध्य में एकत्रित होकर धमाल व होली के गीत गाते हैं।

डांडिया नृत्य

यह मारवाड़ का प्रसिद्ध नृत्य है जो होली के बाद किया जाता है। बीस, पच्चीस पुरुषों की एक टोली दोनों हाथों में डांडिया लेकर वृत्ताकार नृत्य करती है। मैदान में चौक के बीच में शहनाई और नगाड़े वाले तथा गवैये बैठते हैं। पुरुष लोक–ख्याल व होली गीत लय में गाते हैं। इन गीतों में प्रायः बड़ली के भैंरूजी का गुणगान होता है। राजा, बजिया, साधु, शिवजी, रामचन्द्र, कृष्ण, रानी, सिंधिन, सीता आदि विभिन्न प्रकार की वेशभूषाएं पहनी जाती हैं। राजा का वेश मारवाड़ के प्राचीन नरेशों से मिलता–जुलता होता है।

अग्नि नृत्य

जसनाथी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध 'अग्नि नृत्य' का उद्गम बीकानेर जिले के कतरियासर गांव में हुआ। इसके नर्तक 'जसनाथी संप्रदाय' के अनुयायी जाट सिद्ध कबीले के लोग हैं। इस नृत्य में केवल पुरुष ही भाग लेते हैं। अंगारों के ढेर को 'धूणा' कहते है। नर्तक गुरू के सामने नाचते हुए 'फतैफते' कहते हुए धूणे में प्रवेश करते हैं। नर्तक अंगारों से मतीरा फोड़ना, हल जोतना, आदि क्रियाएं सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हैं। आग के साथ राग और फाग का ऐसा अनूठा संगम अन्यत्र दुर्लभ है।

घुड़ला

घुड़ला जोधपुर का प्रसिद्ध लोक नृत्य है। यह केवल महिलाओं द्वारा ही किया जाता है। इस नृत्य में स्त्रियां सिर पर एक छिद्रित मटके में जलता दीपक रखकर नृत्य करती हैं। इस मटके को घुड़ला कहा जाता है।

ढोल नृत्य

ढोल नृत्य जालोर का प्रसिद्ध लोक नृत्य है। यह विवाह के अवसर पर मुख्यतः ढोली और भील जाति के पुरुषों द्वारा किया जाता है। इन व्यावसायिक नर्तकों को पहचान राजस्थान के भूतपूर्व मुख्यमंत्री जयनारायण व्यास ने दिलाई। इसमें एक साथ चार या पाँच ढोल बजाये जाते हैं। ढोल का मुखिया इसे थाकना शैली में बजाना शुरू करता है। थाकना समाप्त होते ही कुछ पुरुष अपने मुंह में तलवार लेकर, कुछ हाथों में डंडे लेकर, कुछ भुजाओं में रूमाल लटकाकर और अन्य लयबद्ध नृत्य करना प्रारंभ कर देते हैं।

बम नृत्य

बम नृत्य भरतपुर व अलवर क्षेत्र का प्रसिद्ध लोक नृत्य है। यह नृत्य पुरुषों द्वारा फागुन की मस्ती व नई फसल आने की खुशी में किया जाता है। इसमें एक बड़े नगाड़े जिसे बम कहते हैं, को खड़े होकर दोनों हाथों में दो मोटे डण्डे लेकर बजाया जाता है। नगाड़े के साथ थाली, चिमटा, ढोलक आदि वाद्ययंत्र प्रयुक्त होते हैं।

घूमर

राज्य नृत्य के रूप में प्रसिद्ध घूमर मांगलिक अवसरों, पर्वों आदि पर महिलाओं द्वारा किया जाने वाला लोकप्रिय नृत्य है। लहंगे के घेर को जो वृत्ताकार रूप में फैलता है 'घुम्म' कहते हैं। इसमें ढोल, नगाड़ा, शहनाई आदि वाद्यों का प्रयोग होता है। इस नृत्य में बार–बार घूमने के साथ हाथों का लचकदार संचालन प्रभावित करने वाला होता है।

गरबा

गुजरात और राजस्थान की संस्कृति का समन्वय गरबा में दिखाई देता है। डूंगरपुर व बांसवाड़ा में इस नृत्य का अधिक प्रचलन है। यह नवरात्रि में दुर्गा की आराधना में किया जाता है। गरबा तीन रूपों में

किया जाता है। प्रथम रूप शक्ति की आराधना का है जिसमें स्त्रियां मिट्टी के छिद्रित घड़े में दीपक प्रज्ज्वलित कर उसे सिर पर रखकर गोलाकार घूमती हुई नृत्य करती हैं। गरबा के दूसरे रूप रास नृत्य में राधा कृष्ण, गोप–गोपियों का प्रणय चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। तीसरे रूप में लोक–जीवन के सौन्दर्य को प्रकट करने वाले प्रसंगों, यथा– पणिहारी, नववधू की भावुकता, गृहकार्य में लीन स्त्रियों का चित्रण होता है।

वालर नृत्य

स्त्री–पुरुषों द्वारा किये जाने वाला 'वालर' सिरोही क्षेत्र के गरासियों का प्रसिद्ध नृत्य है। इस धीमी गति के नृत्य में किसी वाद्य का प्रयोग नहीं होता है। यह नृत्य अर्द्ध वृत्त में किया जाता है। दो अर्द्ध वृत्तों में पुरुष बाहर व महिलाएं अन्दर रहती हैं। नृत्य का प्रारम्भ एक पुरुष हाथ में छाता या तलवार लेकर करता है।

भवाई नृत्य

राजस्थान के व्यावसायिक लोकनृत्यों में 'भवाई' अपनी नृत्य अदायगी, शारीरिक क्रियाओं के अद्भुत चमत्कार तथा लयकारी की विविधता के लिए अत्यधिक लोकप्रिय है। तेज लय में विविध रंगों की पगड़ियों से हवा में कमल का फूल बनाना, सात–आठ मटके सिर पर रखकर नृत्य करना, जमीन पर रखे रूमाल को मुँह से उठाना, गिलासों व थाली के किनारों तथा तेज तलवार व काँच के टुकड़ों पर नृत्य आदि इसकी विशेषता है। यह उदयपुर क्षेत्र में शंकरिया, सूरदास, बोटी, ढोकरी, बीकाजी और ढोलामारू नाच के रूप में प्रसिद्ध है। रूपसिंह शेखावत, दयाराम, तारा शर्मा इसके प्रमुख कलाकार हैं।

तेरहताली नृत्य

कामड़ जाति तेरहताली नृत्य से बाबा रामदेवजी का यशोगान करती है। कामड़ स्त्रियां मेले व उत्सवों में तेरहताली का प्रदर्शन करती हैं। पुरुष साथ में मंजीरा, तानपुरा, चौतारा बजाते हैं। यह तेरह मंजीरों की सहायता से किया जाता है। नौ मंजीरे दायें पाँव पर, दो हाथों के दोनों ओर ऊपर कोहनी पर तथा एक–एक दोनों हाथों में रहते हैं। हाथ वाले मंजीरे अन्य मंजीरों से टकराकर मधुर ध्वनि उत्पन्न करते हैं। मांगीबाई और लक्ष्मणदास तेरहताली के प्रमुख नृत्यकार हैं।

क्या आप जानते हैं?

कालबेलिया नृत्य को 2010 में यूनेस्को द्वारा अमूर्त विरासत सूची में शामिल किया गया। इस नृत्य की प्रसिद्ध नृत्यांगना गुलाबो ने इसे देश–विदेश में पहचान दिलाई।

अन्य नृत्यों में नेजा, रमणी, युद्ध नृत्य, हाथीमना, घूमरा आदि भीलों के नृत्य हैं। घूमर, गौर, जवारा, मोरिया, लूर, कूद, मांदल आदि नृत्य गरासियों के द्वारा किये जाते हैं। इण्डोनी, पणिहारी, बागड़िया, शंकरिया, चकरी आदि कालबेलियों के नृत्य हैं। चरी, झूमर आदि गुर्जरों तथा मछली नृत्य बनजारों द्वारा किया जाता है। चकरी, धाकड़, कंजरों के तथा शिकार नृत्य सहरिया जनजाति का लोक नृत्य है। मावलिया कथौड़ी जनजाति का नृत्य है।

लोक नाट्य

लोक नाट्य की परम्परा बहुत पुरानी है। लोक नाट्य की कथाएं, संवाद व गीत लोकमानस में प्रचलित व उनकी रुचि के अनुरूप होते हैं। ये जनसामान्य के मनोरंजन के लिए उन्हीं के द्वारा मंचित किये जाते हैं। वर्तमान में ऐतिहासिक, पौराणिक व लोक कथाओं के साथ–साथ राजनीति, शासन व्यवस्था व

अद्यतन घटनाक्रम को भी इनके द्वारा व्यक्त किया जाता है।

राजस्थान के लोकनाट्य बहुरूपी और बहुरंगी हैं। अरावली के पर्वतीय क्षेत्र में भीलों, मीणों, बनजारों, सहरियों और गरासियों की रंगमयी संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। इनका प्राकृतिक परिवेश तथा देवी–देवताओं में आस्था जीवन्त नृत्यों, नाट्यों तथा रंगीन परिधान में डूबी संस्कृति का कारण है।

राजस्थान के मरूस्थलीय क्षेत्रों में कठिन परिश्रम करने वाले लोगों के मनोरंजन का कार्य नट, मिरासी, भाट व भाण्ड नामक पेशेवर जातियों के लोग करते हैं। इनके वार्तालाप व्यंग्य विनोद प्रधान होते हैं।

अलवर, भरतपुर क्षेत्र के लोक नाट्यों में राजस्थान, हरियाणा और उत्तरप्रदेश की लोक संस्कृतियों का मिला–जुला रूप दिखाई देता है। धौलपुर, सवाईमाधोपुर आदि क्षेत्रों के लोक नाट्यों पर ब्रजभूमि की संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। राजस्थान में लोक नाट्यों के निम्नांकित रूप प्रचलित हैं–

ख्याल

ख्याल 18वीं सदी की शुरुआत से ही राजस्थान के लोक नाट्यों में शामिल थे। इन ख्यालों की विषय–वस्तु पौराणिक या वीराख्यान से संबंधित होती है, जिनमें ऐतिहासिक तत्व भी होते हैं। भौगोलिक अंतर के कारण इन ख्यालों ने विभिन्न रूप ग्रहण कर लिये है। इनमें भाषागत के स्थान पर शैलीगत भिन्नता पायी जाती है। इन ख्यालों में से कुछ की विशेषताएं निम्न प्रकार हैं–

(1) कुचामनी ख्याल

कुचामनी ख्याल का प्रवर्तन प्रसिद्ध लोक नाट्यकार लच्छीराम ने किया। ख्याल परम्परा में उन्होंने अपनी शैली का समावेश किया। लच्छीराम द्वारा रचित ख्यालों में से चाँद नीलगिरी, राव रिड़मल तथा मीरा मंगल प्रमुख हैं। उगमराज भी कुचामनी ख्याल के प्रमुख खिलाड़ी है। इस शैली की विशेषताएं निम्नांकित हैं–

(i) इसका रूप ऑपेरा जैसा है।

(ii) इसमें लोकगीतों की प्रधानता है।

(iii) इसका प्रदर्शन खुले मंच पर किया जाता है।

(iv) इनमें स्त्री चरित्रों का अभिनय पुरुष पात्रों द्वारा किया जाता है।

(v) इस ख्याल में संगत के लिए ढोल वादक, शहनाई वादक, ढोलक व सारंगी वादक मुख्य सहयोगी होते हैं।

(vi) इन ख्यालों की भाषा सरल होती है तथा सामाजिक व्यंग्य पर आधारित विषय चुने जाते हैं।

(3) शेखावाटी ख्याल

चिड़ावा निवासी नानूराम इस शैली के मुख्य 'खिलाड़ी' रहे हैं। उनके स्वरचित ख्यालों में प्रमुख हैं– हीर राँझा, हरीचन्द, भर्तृहरि, जयदेव कलाली, ढोला मरवण और आल्हादेव। इस लोक नाट्य शैली की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

(i) प्रभावी पद संचालन।

(ii) सम्प्रेषणीय शैली में भाषा और मुद्रा में गीत गायन।

(iii) वाद्य में प्रायः हारमोनियम, सारंगी, शहनाई, बाँसुरी, नक्कारा तथा ढोलक का प्रयोग होता है।

शेखावाटी इलाके में नानूराम के शिष्य दूलिया राणा के ख्याल बहुत लोकप्रिय हैं। गीतमय संवाद उनके ख्यालों को साहित्यिक तथा रंगमंच के अनुकूल बनाते हैं। दूलिया राणा के परिवार के लोग ही इन ख्यालों में होने वाले व्यय का वहन करते हैं।

(3) जयपुरी ख्याल

गुणीजनखाना के कलाकार जयपुरी ख्यालों में भाग लेते थे। इस ख्याल की कुछ निजी विशेषताएं है, जो इसे अन्य ख्यालों से भिन्न बनाती हैं, वे हैं–

(i) स्त्री पात्रों की भूमिका का निर्वहन स्त्रियां भी करती हैं।

(ii) इस ख्याल में नये प्रयोगों की अत्यधिक संभावनाएं हैं।

(iii) इसमें समाचार पत्रों, कविता, संगीत, नृत्य, गान व अभिनय का सुन्दर समावेश मिलता है।

(iv) इस शैली के कुछ लोकप्रिय ख्याल जोगी–जोगन, कान–गूजरी, मियाँ–बीबू, पठान, रसीली तम्बोलन आदि हैं।

(4) हेला ख्याल

हेला ख्याल दौसा, लालसोट व सवाईमाधोपुर क्षेत्र का प्रसिद्ध लोकनाट्य है। इस ख्याल के प्रमुख प्रेरक शायर हेला थे। बम (बड़ा नगाड़ा) के प्रयोग के साथ इस ख्याल का प्रारम्भ होता है। साथ में नौबत बजाया जाता है। इस ख्याल की प्रमुख विशेषता 'हेला देना' (लम्बी टेर में आवाज देना) है।

(5) कन्हैया ख्याल

कन्हैया ख्याल करौली, सवाई माधोपुर, धौलपुर, भरतपुर व दौसा क्षेत्र का प्रसिद्ध लोकनाट्य है। इस ख्याल में कही जाने वाली मुख्य कथा को 'कहन' तथा मुख्य पात्र को 'मेड़िया' कहते हैं।

(6) तुर्रा कलंगी ख्याल

मेवाड़ के शाह अली और तुकनगीर नामक संत पीरों ने 400 वर्ष पूर्व तुर्रा कलंगी की रचना की। 'तुर्रा' को 'शिव' और 'कलंगी' को 'पार्वती' का प्रतीक माना जाता है। तुकनगीर 'तुर्रा' के तथा शाह अली 'कलंगी' के पक्षकार थे। इनके शिव–शक्ति संबंधी विचारों को लोगों तक पहुंचाने का मुख्य माध्यम काव्यमय रचनाएं थीं, जिन्हें 'दंगल' के नाम से जानते हैं। इसके संवादों को 'बोल' कहते हैं और ये काव्यत्मक होते हैं। तुर्रा कलंगी के सर्वप्रथम खेले गए ख्याल का नाम 'तुर्रा कलंगी का ख्याल' था। इसकी प्रकृति गैर व्यावसायिक है। इसमें 20 फुट ऊँचा रंगमंच बनाकर उसकी राजस्थानी शैली में भरपूर सजावट की जाती है। इस लोकनाट्य में दर्शक के भाग लेने की सर्वाधिक संभावनाएं होती हैं। इसमें चंग बजाया जाता है।

इस ख्याल के मुख्य केन्द्र घोसूण्डा, चित्तौड़, निम्बाहेड़ा तथा नीमच (मध्य प्रदेश) हैं। इन स्थानों पर इस ख्याल के सर्वश्रेष्ठ कलाकार सोनी जयदयाल, चेतराम, हमीद बेग, ताराचंद तथा ठाकुर ओंकारसिंह आदि हैं।

गवरी

वादन, संवाद, प्रस्तुतिकरण और लोक–संस्कृति के प्रतीकों में मेवाड़ के भीलों की 'गवरी' अनूठी है। इसमें पौराणिक कथाओं, लोक–गाथाओं और लोक–जीवन की विभिन्न झाँकियों पर आधारित नृत्य नाटिकाएं होती हैं। गवरी एक धार्मिक लोकनाट्य है जो शिव भस्मासुर की कथा पर आधारित है।

रक्षाबंधन के दूसरे दिन भादवा कृष्णा प्रतिपदा को खेड़ा देवी से भोपा गवरी मंचन की आज्ञा लेता है। इसके बाद पात्रों के वस्त्र बनते हैं। पात्र मंदिरों में 'धोक' देकर नव–लाख देवी–देवता, चौसठ योगिनी और बावन भैंरू को स्मरण करते हैं। गवरी सवा महीने तक खेली जाती है। इस अवधि में शराब, माँस और हरी सब्जी का निषेध होता है। जिस गाँव से गवरी आरम्भ होती है वह इसका खर्च वहन करता है।

गवरी का मुख्य पात्र बूडिया होता है। 'राईयां' स्त्री रूप में पार्वती और विष्णु की प्रतीक होती है। झामट्या लोकभाषा में कविता पाठ करता है। कुटकडिया उसे दोहराते हुए सूत्रधार का काम करता है। बूडिया कुटकडिया के संवाद में पूरक बनता है। अन्य पात्र 'खेला' कहलाते हैं। गवरी में केवल पुरुष पात्र होते हैं। इसमें गणपति, भमरिया, भेआवड़, मीणा, कान–गूजरी, जोगी, खाड़लिया भूत, लाखा बणजारा, नटड़ी तथा माता और शेर के खेल होते हैं।

रम्मत

होली के अवसर पर जितने प्रकार के लोकानुरंजन राजस्थान में प्रचलित हैं उनमें 'रम्मत' का विशिष्ट स्थान है। रम्मत जैसलमेर, फलौदी तथा बीकानेर में मुख्य रूप से आयोजित होती है। इसमें राजस्थान के सुविख्यात लोक नायकों एवं महापुरुषों पर रचित काव्य रचनाओं को रंगमंच के ऊपर मंचित किया गया है। मनीराम व्यास, तुलसीराम, फागू महाराज, सूआ महाराज, तेज कवि (जैसलमेरी) आदि रम्मतों के प्रमुख रचयिता है। तेज कवि जैसलमेरी ने रम्मत का अखाड़ा श्रीकृष्ण कम्पनी के नाम से चालू किया। सन् 1943 में उन्होंने 'स्वतंत्र बावनी ' की रचना की और उसे महात्मा गाँधी को भेंट कर दी।

रम्मत की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता है– उसकी साहित्यिकता। इस व्यावसायिकता के युग में रम्मत आज भी सामुदायिक लोकनाट्य का रूप लिए हुए है। रम्मत की मूल ऊर्जा 'टेरिये' होते हैं। 'रम्मत' की मंच योजना खुले मोहल्ला या मंडी (बाजार के चौक) में होती है। बड़े–बड़े लकड़ी के पाटों पर राजा–रानी के बैठने के लिए छतरीनुमा सिंहासन बनाया जाता है। मुख्य मंच के चारों ओर दर्शक बैठते हैं। ऊँचे मंच पर वादक नगाड़ा, तबला, झांझ, चिमटा, तंदुरा, ढोलक, हारमोनियम आदि लेकर एक कोने में बैठते हैं। टेरिये के बोल के साथ पात्र नाचते हुए अपनी कला प्रदर्शित करते हैं।

बीकानेर की रम्मतों में आचार्यों की चौक की अमरसिंह राठौड़ की रम्मत, बिस्सों की चौक की चौबेल नौटंकी की रम्मत, कीकाणी व्यासों के चौक की जमनादास जी की रम्मत प्रसिद्ध हैं।

तमाशा

तमाशा जयपुर का प्रसिद्ध लोक नाट्य है। यह महाराजा प्रतापसिंह के काल में शुरू हुआ। भट्ट परिवार परम्परागत रूप से आज भी तमाशा का लोक मंचन करता है। फूलजी भट्ट, गोपीकृष्ण भट्ट व वासुदेव भट्ट इस परम्परा को जीवित रखे हुए हैं। 'गोपीचन्द' तथा 'हीर रांझा' मुख्य तमाशे हैं। तमाशे का आयोजन खुले मंच पर होता है, जिसे 'अखाड़ा' कहते हैं। संगीत, नृत्य और गायन, इन तीनों की तमाशे में प्रधानता होती है।

स्वांग

लोक–नाट्यों में 'स्वांग' की भी एक परम्परा है। स्वांग का अर्थ है किसी विशेष ऐतिहासिक, पौराणिक, लोक प्रसिद्ध या समाज में प्रसिद्ध चरित्र तथा देवी–देवताओं की तरह मेकअप करना व वेशभूषा धारण करना। स्वांग गाँवों में अधिक प्रचलित है। इसका कलाकार बहरूपिया कहलाता है। इस विलुप्तप्रायः कला का सबसे नामी कलाकार केलवा का परशुराम है। इसके प्रसिद्ध कलाकार जानकी लाल भांड (भीलवाड़ा) ने भारत उत्सवों में राजस्थान का प्रतिनिधित्व किया है।

क्या आप जानते हैं?

दूल्हे की बारात जब लड़की वाले के यहाँ चली जाती है, तब पीछे से वर पक्ष की महिलाओं द्वारा वर–वधू की नकल के रूप में जो स्वांग प्रदर्शित किया जाता है उसे टूंटिया, टूंटकी अथवा खोड़्या निकालना कहते हैं। इसमें एक महिला वर तथा दूसरी वधू बनती है तथा उनका नकली विवाह कराया जाता है। इसका एकमात्र उद्देश्य असली वर–वधू को आधि–व्याधि से मुक्त रखने की मनोकामना है।

लीला नाट्य

राजस्थानी लोकनाट्यों में लीला नाट्यों की महत्वपूर्ण भूमिका है। रामलीला तथा रासलीला के अतिरिक्त लीलाओं के कुछ और रूप भी प्रचलित हैं, जैसे– रावलों की रामत, समया, गवरी, सनकादिकों की लीलाएं, गरासियों की गोर लीलाएं, रामलीला और कृष्ण लीला।

रासलीलाओं में श्रीकृष्ण के बाल्यकाल और किशोरावस्था की लीलाओं का प्रस्तुतीकरण किया जाता है। फुलेरा, जयपुर, असलपुर, हरदोणा, गुण्डा आदि में रासलीला की अनेक मण्डलियां हैं। रामलीला का

मुख्य प्रयोजन भगवान राम के जीवन प्रसंगों का जीवन्त चित्रण है। इसके प्रस्तुतीकरण में भरतपुर, पाटूदा तथा बिसाऊ की अपनी अलग पहचान है। रामजीवन से संबंधित महत्वपूर्ण 'समयों' (अर्थात् समय) को इस नाट्यशैली में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें नृत्य, गीत एवं विभिन्न वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।

गोर का आयोजन गरासियों द्वारा वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को 'भख्योर की गणगोर' के नाम से किया जाता है। इसमें लकड़ी की गोर एवं हँसर को गरासिया स्त्रियां अपने सिर पर रखकर नृत्य करती हैं। इनके बीच में पुरुष मुखौटा लगाकर तलवारबाजी का प्रदर्शन करता है।

सनकादिकों की लीलाएं राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इन लीलाओं के प्रमुख अखाड़े घोसुंडा तथा बस्सी हैं। घोसुंडा में राधा–कृष्ण के युगल स्वरूप एवं रासादि लीलाओं का आयोजन किया जाता है। अवतारों के चेहरे विभिन्न प्रकार के मुखौटे धारण किए रहते हैं। बस्सी में ब्रह्मा, गणेश, कालिका, हिरण्यकश्यप, नृसिंहावतार आदि की झांकियां भी प्रदर्शित की जाती हैं।

नौटंकी

धौलपुर, करौली, अलवर, गंगापुर, भरतपुर तथा सवाईमाधोपुर में नौटंकी का खेल प्रचलित है। नौटंकी के नाटकों में रूप बसन्त, नकाबपोश, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, राजा भरथरी आदि प्रमुख हैं। प्रायः विवाह, सामाजिक समारोह, मेलों तथा लोकोत्सवों के मौकों पर इनका आयोजन करवाया जाता है।

चारबैंत

चारबैंत टोंक का प्रसिद्ध लोक नाट्य है। यह संगीत दंगल के रूप में खेला जाता है। इसका प्रारम्भ टोंक के नवाब फैजुल्ला खाँ के शासनकाल में करीम खाँ निहंग द्वारा किया गया। इस लोक नाट्य में गायक डफ बजाता हुआ घुटनों के बल खड़े होकर गाकर अपनी बात कहता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. गींदड़ नृत्य का संबंध किस क्षेत्र से है?
   (अ) मेवाड़ (ब) मारवाड़
   (स) शेखावाटी (द) बाड़मेर
2. कच्छी घोड़ी नृत्य किस अवसर पर किया जाता है?
   (अ) होली (ब) विवाह
   (स) तीज (द) नवरात्र
3. ढोल नृत्य किस जिले से संबंधित है?
   (अ) जालोर (ब) सीकर
   (स) जयपुर (द) प्रतापगढ़
4. लच्छीराम का संबंध किस लोक नाट्य से है?
   (अ) शेखावाटी ख्याल (ब) कुचामनी ख्याल
   (स) जयपुरी ख्याल (द) हेला ख्याल
5. चारबैंत कहाँ का प्रसिद्ध लोक नाट्य है?
   (अ) दौसा (ब) टोंक
   (स) जैसलमेर (द) कोटा

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. 'स्वांग' से आप क्या समझते हैं?
2. 'तमाशा' लोक नाट्य किसके शासनकाल में प्रारम्भ हुआ था?

3. महात्मा गाँधी को 'स्वतंत्र बावनी' की प्रति किसने भेंट की थी?
4. हेला ख्याल किस क्षेत्र का प्रसिद्ध लोक नाट्य है?
5. तेरहताली नृत्य किस लोक देवता की आराधना में किया जाता है?
6. गेर नृत्य में कौनसे वाद्य यंत्र प्रयुक्त होते हैं?
7. अग्नि नृत्य किस सम्प्रदाय से संबंधित है?
8. भवाई नृत्य के प्रमुख कलाकारों के नाम लिखिये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. घूमर नृत्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
2. भवाई नृत्य के दौरान प्रदर्शित विभिन्न शारीरिक क्रियाओं का वर्णन कीजिये।
3. चारबैंत लोक नाट्य पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
4. नौटंकी का खेल राजस्थान के कौन से क्षेत्र में अधिक प्रचलित है? यह किन अवसरों पर आयोजित किया जाता है?

निबंधात्मक प्रश्न –

1. राजस्थान के विभिन्न लोक नृत्यों पर एक विस्तृत लेख तैयार कीजिये।
2. 'ख्याल' लोकनाट्य का वर्णन करते हुए इसकी मुख्य विशेषताएं बताइये।
3. विभिन्न लीला नाट्यों की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

परियोजनात्मक कार्य :

विभिन्न नृत्यों एवं उनसे जुड़े स्थानों व अवसरों को एक सारणी के रूप में दर्शाते हुए चार्ट का निर्माण कीजिये।

कल्पना करें :

1. आप स्वांग लोक नाट्य के कलाकार हैं, आप एक सप्ताह के लिए कौन–कौन से स्वांग धरेंगे, उनकी सूची बनाये।

अध्याय

9

राजस्थानी भाषा और साहित्य

राजस्थानी भाषा और बोलियां –

राजस्थानी भाषा से तात्पर्य है राजस्थान के लोगों की मातृभाषा। राजस्थानी भाषा के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि वि.सं. 835 (913 ई) में उद्योतन सूरी द्वारा लिखित कुवलयमाला में वर्णित 18 देशी भाषाओं में 'मरूभाषा' को भी सम्मिलित किया गया था जो पश्चिमी राजस्थान की भाषा थी। राजस्थान की भाषा के लिए 'राजस्थानी' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने 1912 ई. में लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया में किया जो इस प्रदेश में प्रचलित विभिन्न भाषाओं का सामूहिक नाम था। राजस्थान प्रदेश की भाषा के लिए यही नाम अब प्रचलित हो चुका है। मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूंढ़ाडी, मेवाती, हाड़ौती आदि सब इसकी विभिन्न बोलियां अथवा उप–भाषायें हैं।

राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास –

राजस्थानी भाषा पर 10वीं सदी तक पश्चिमी भारत के क्षेत्रों में बोली जाने वाली अपभ्रंश का अत्यधिक प्रभाव रहा। हालांकि राजस्थानी का उद्‌भव लगभग ईसा की 11–12वीं शताब्दी से हुआ माना जाता है, परन्तु 16वीं सदी के बाद राजस्थानी भाषा का विकास एक स्वतंत्र भाषा के रूप में होने लगा। राजस्थानी भाषा के विकास क्रम में यह कहा जा सकता है कि समस्त भारतीय भाषाओं की जननी 'वैदिक संस्कृत'रही है, जो अपनी भाषायी जटिलता के फलस्वरूप 'लौकिक संस्कृत' में परिवर्तित हुई। लौकिक संस्कृत में जब दुरूहता आने लगी तो उसका स्थान 'पालि' भाषा ने लिया और 'पालि' भी जब लोक से अलग होने लगी तो उसका स्थान 'प्राकृत' ने ले लिया। जैसाकि माना जाता है भाषा कठिनता से सरलता की ओर अग्रसर होती है, प्राकृत भी जब कठिन लगने लगी तो अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ, जो विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में सामने आने लगीं। राजस्थानी भाषा का विकास भी इन्हीं अपभ्रंश भाषाओं से हुआ। राजस्थानी भाषा के विकास के संबंध में तीन अपभ्रंश भाषाओं का उल्लेख किया जाता है तथा प्रत्येक विद्वान अपने मतानुसार अपभ्रंश का उल्लेख करता है जिसमें 'शौरसेनी अपभ्रंश', 'नागर अपभ्रंश' तथा 'मरूगुर्जरी अपभ्रंश' का उल्लेख किया जाता है। इन सबमें से 'मरूगुर्जरी अपभ्रंश' का मत अधिक उचित लगता है क्योंकि 'मरूगुर्जरी अपभ्रंश' से ही मरूभाषा (राजस्थानी) तथा गुर्जरी से गुजराती भाषा का विकास हुआ। यह विभाजन भौगोलिक दृष्टि से भी समीचीन प्रतीत होता है। भाषा की व्याकरणिक विशेषताओं को देखें तो यह ज्ञात होता है कि राजस्थानी और गुजराती में अनेक समानताएं हैं।

क्षेत्रीय बोलियां –

डॉ. ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोलियों को पांच मुख्य वर्गों में बांटा है। किंतु मुख्य रूप से राजस्थानी की बोलियों को दो भागों में बांटा जा सकता है–

(1) पश्चिमी राजस्थानी : मारवाड़ी, मेवाड़ी, बागड़ी, शेखावाटी।

(2) पूर्वी राजस्थानी : ढूंढाड़ी, हाड़ौती, मेवाती, अहीरवाटी (राठी)।

राजस्थानी की प्रमुख बोलियां –

1. मारवाड़ी – राजस्थान के इतिहास और भौगोलिक क्षेत्र में मारवाड़ का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। मारवाड़ राज्य का भौगोलिक क्षेत्र बहुत विस्तृत रहा और इस क्षेत्र की बोली को 'मारवाड़ी' का नाम दिया गया। यही कारण है कि राजस्थानी बोलियों में मारवाड़ी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और साहित्य सृजन भी अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। यही कारण है कि इसे कहीं–कहीं राजस्थानी का पर्याय भी माना जाता रहा। प्राचीन मारवाड़ राज्य राजस्थान की पश्चिमी सीमा से जुड़ा रहा है इसलिए मारवाड़ी को पश्चिमी राजस्थान से जोड़ा गया।

आज इस बोली के क्षेत्र में जोधपुर, बीकानेर, नागौर, बाड़मेर, जैसलमेर, पाली तथा शेखावाटी का कुछ क्षेत्र इससे संबद्ध रहा है। थळी और गोड़वाड़ी बोलियां इसकी उपबोलियां हैं।

मेवाड़ी – राजस्थान के मेवाड़ राज्य का क्षेत्र मेवाड़ी का क्षेत्र रहा है। साहित्य परंपरा की दृष्टि से देखें तो मारवाड़ी के पश्चात् मेवाड़ क्षेत्र में साहित्य लेखन हुआ है।

आधुनिक राजस्थान में उदयपुर, चित्तौड़गढ़, राजसंमद तथा भीलवाड़ा का क्षेत्र मेवाड़ी बोली का क्षेत्र कहा जा सकता है। मेवाड़ के पर्वतीय क्षेत्रों में बोली जाने वाली मेवाड़ी को 'पर्वती मेवाड़ी' तथा मैदानों में बोली जाने वाली मेवाड़ी को 'मैदानी मेवाड़ी' कहा जाता है।

ढूंढाड़ी – राजस्थान के प्राचीन ढूंढाड़ प्रदेश जिसका संबंध आमेर राज्य से रहा, उस क्षेत्र की बोली को ढूंढाड़ी बोली कहा गया है। इस बोली की सबसे बड़ी विशेषता 'छै' शब्द का प्रयोग है। इस शब्द का प्रयोग गुजराती के प्रभाव को इंगित करता है।

आधुनिक राजस्थान में जयपुर, दौसा, बगरू, दूदू तक का क्षेत्र ढूंढाड़ी का क्षेत्र कहा जा सकता है। तोरावाटी, राजावाटी, नागरचोल आदि इसकी उपबोलियां हैं।

हाड़ौती – हाड़ा राजपूतों के राज्य से संबंधित क्षेत्र को हाड़ौती बोली का क्षेत्र माना गया है। इस बोली में भी ढूंढाडी की तरह 'छै' शब्द का प्रयोग किया जाता हैं।

आज कोटा, बूंदी, झालावाड़, बारां का क्षेत्र हाड़ौती बोली का क्षेत्र कहा जा सकता है।

मेवाती – 'मेव' जाति का आधिक्य होने से अलवर, भरतपुर के क्षेत्र को 'मेवात' क्षेत्र कहा गया है। इस क्षेत्र की बोली को 'मेवाती' कहा गया है। इसका क्षेत्र राजस्थान के आसपास हरियाणा के क्षेत्रों को भी स्पष्ट करता है। भरतपुर के आसपास के क्षेत्रों में इस बोली पर 'ब्रजभाषा' का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

वागड़ी – राजस्थान के 'वागड़' क्षेत्र की बोली को वागड़ी का नाम दिया गया है। यह बोली बांसवाड़ा, डूंगरपुर तथा आसपास के पहाड़ी क्षेत्रों में बोली जाती हैं। इस बोली पर गुजराती भाषा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

मालवी – प्राचीन मालवा प्रदेश का राजस्थान प्रदेश से बहुत गहरा संबंध रहा है इसलिए मालवा प्रदेश से जुड़े राजस्थान के क्षेत्रों पर मालवी बोली का भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है, जिसका अंतर करना बहुत कठिन हैं इसलिए मालवी को ही राजस्थानी की भी बोली स्वीकार किया गया है। राजस्थान के प्रतापगढ़ का क्षेत्र इस बोली का क्षेत्र है। मध्यप्रदेश का रतलाम, झाबुआ आदि का क्षेत्र इस बोली का क्षेत्र है। 'रांगड़ी' और 'नीमाड़ी' इस बोली की उपबोलियां हैं।

शेखावाटी – 'राव शेखा' के नाम से प्रसिद्ध राजस्थान का क्षेत्र 'शेखावाटी' कहलाया है। इसी क्षेत्र की बोली को 'शेखावाटी' कहा गया है। आज चुरू, झुंझनुं, हनुमानगढ़, सूरतगढ़ तथा गंगानगर तक का क्षेत्र इस बोली का क्षेत्र कहा जा सकता है।

भीली और अन्य पहाड़ी बोलियाँ – राजस्थान में आदिवासी जनजातियों का बहुत बड़ा जन समूह आज भी पहाड़ी क्षेत्रों में रहता है जो कि 'कबीला संस्कृति' को लिए हुए हैं। इस प्रकार की जन जातियों में भील, मीणा, गरासिया आदि प्रमुख हैं। इनमें भीलों का क्षेत्र व्यापक है। अतः इनकी बोलियों में भीली बोली प्रमुख रही है। इनके साथ–साथ अन्य जनजातियों की बोलियों को भी पहाड़ी बोलियों के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है लेकिन जिन–जिन क्षेत्रों में ये जातियां निवास करती है, उन क्षेत्रों की बोलियों का भी इन पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भाषा का निर्माण उपभाषाओं (बोलियों) द्वारा ही होता है। इस रूप में यह भी निश्चित है कि राजस्थानी बोलियों से ही राजस्थानी भाषा का विकास हुआ है।

राजस्थानी साहित्य

राजस्थानी साहित्य का इतिहास एवं परंपरा– राजस्थानी साहित्य का प्रारंभिक साहित्य हमें अभिलेखीय सामग्री के रूप में मिलता है, जिसमें शिलालेखों, अभिलेखों, सिक्कों तथा मुहरों में जो साहित्य उत्कीर्ण है उस साहित्य को अभिलेखीय साहित्य कहा जा सकता है। यद्यपि यह सामग्री अत्यल्प मात्रा में उपलब्ध होती है लेकिन जितनी भी सामग्री उपलबध होती है उसका साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व है।

राजस्थानी साहित्य में लिखित साहित्य 'वाणीनिष्ठता' की विशेषता को लिये रहा है जिसे लोकसाहित्य कहा गया है। यह साहित्य लोक के अनुभव का अक्षय भंडार रहा, जहां विविध विधाओं में साहित्य हमें श्रवण परंपरा से प्राप्त होता रहा। राजस्थानी साहित्य की इतिहास परंपरा को हम निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं –

	काल–परक	**प्रवृत्ति–परक**	**काल–क्रम**
1.	प्राचीन काल	वीरगाथा काल	1050 से 1450 ई.
2.	पूर्व मध्य काल	भक्ति काल	1450 से 1650 ई.
3.	उत्तर मध्य काल	श्रंगार, रीति एवं नीति परक काल	1650 से 1850 ई.
4.	आधुनिक काल	विविध विषयों एवं विधाओं से युक्त	1850 ई. से अद्यतन

1. प्राचीन काल – वीरगाथा काल (1050 से 1450 ई.) – भारतवर्ष पर निरंतर होने वाले हमले पश्चिम दिशा से हो रहे थे। इनका अत्यधिक प्रभाव राजस्थान प्रदेश पर पड़ रहा था और यहां के शासकों को संघर्ष करना पड़ रहा था। ऐसी परिस्थिति में संघर्ष की भावना को बनाए रखने के लिए तथा समाज में वीर नायकों के आदर्श को प्रस्तुत करने के लिए वीर रसात्मक काव्यों का सृजन किया गया। इस काल में वीरता प्रधान काव्यों की प्रमुखता के कारण ही इस काल को वीरगाथा काल का नाम दिया गया है।
इस काल की महत्त्वपूर्ण रचना श्रीधर व्यास की 'रणमल्ल छंद' है। इस काल में जैन रचनाकारों की रचनाएं भी उल्लेखनीय रही हैं।

2. पूर्व मध्य काल – भक्ति काल (1450 से 1650 ई.) – राजस्थान के इतिहास में संघर्ष का लंबा इतिहास रहा तथा इन युद्धों ने धर्म और संस्कृति को व्यापक रूप से प्रभावित किया। संघर्षों के आधार के रूप में साम्राज्य विस्तार के साथ–साथ धर्म के प्रचार–प्रसार की प्रवृत्ति भी दिखाई दी। ऐसी परिस्थितियों में संघर्ष से मुक्त होने तथा समस्त प्रकार के विभेदों को मिटाने के लिए जन–सामान्य भक्ति की ओर प्रवृत्त होने लगा तथा ऐसे समय में कई संतों और भक्तों ने जन–सामान्य को सही राह दिखाई तथा अपनी

कलम से समाज में सभी प्रकार के भेदभावों को मिटाते हुए 'सद् समाज' की कल्पना को मूर्त्त रूप प्रदान करने का प्रयास किया। इन संतों तथा भक्तों की रचनाओं की अधिकता के कारण इस काल को भक्ति काल का नाम दिया गया।

इसी काल में विभिन्न संतों और उनके द्वारा प्रवृत्त संप्रदायों ने लोक में अपनी गहरी पैठ बनाई और लोगों ने उनके मार्ग का अनुसरण किया। ऐसे संप्रदायों में रामस्नेही, दादूपंथ, नाथपंथ, अलखिया संप्रदाय, विश्नोई संप्रदाय, जसनाथी संप्रदाय आदि प्रमुख हैं। इन संप्रदायों ने नाम–स्मरण का महत्त्व, निर्गुण उपासना पर बल, गुरु की महत्ता पर बल देते हुए, जाति व्यवस्था में भेदभाव को मिटाते हुए कहा "जात–पांत पूछै नहीं कोई हरि को भजै सो हरि का होय।"

इनके साथ सगुण भक्त कवियों ने भी अपने आराध्य देवों की वन्दना एवं महिमा गान अपनी रचनाओं के माध्यम से किया। इस प्रकार की रचनाओं में भक्त शिरोमणि मीरांबाई के पद, पृथ्वीराज राठौड़ की 'वेलि किसण रूकमणि री' माधोदास दधवाडिया की 'रामरासो' ईसरदास की 'हरिरस' और 'देवियांण' सायांजी झूला की 'नागदमण' इस क्रम की प्रमुख रचनाएं हैं।

3. उत्तर मध्य काल – शृंगार, रीति एवं नीति परक काल (1650 से 1850 ई.) – राजस्थानी साहित्य के उत्तर मध्य काल का साहित्य विविध विषयों से युक्त रहा। इस काल में राजनीतिक दृष्टि से अपेक्षाकृत शांति का काल रहा। शासकों ने अपने राज्य में कलाकारों और साहित्यकारों को संरक्षण प्रदान किया, जिन्होंने साहित्य और कला के विविध आयामों का विकास किया। इस काल में शृंगार, रीति (काव्य शास्त्रों) तथा नीति से संबंधित रचनाएं प्रस्तुत की गईं।

लोक में प्रचलित प्रेमाख्यानों को विभिन्न ग्रंथों के रूप में प्रस्तुत किया गया। काव्य शास्त्र से संबंधित रचनाओं में कवि मंछाराम ने 'रघुनाथ रूपक' प्रस्तुत किया तथा संबोधन परक नीति कारकों में 'राजिया रा सोरठा', 'चकरिया रा सोरठा', 'भेरिया रा सोरठा', 'मोतिया रा सोरठा' आदि रचनाएं प्रमुख हैं।

4. आधुनिक काल – विविध विषयों एवं विधाओं से युक्त (1850 से अद्यतन) – भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के पहले संग्राम (सन् 1857) के पश्चात् समाज में नवीन चेतना का संचार हुआ, जिसका व्यापक असर समाज के सभी वर्गों पर पड़ा और साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा और साहित्य में आधुनिक चेतना का संचार हुआ, जिसे साहित्य में आधुनिक काल का नाम दिया गया।

राजस्थानी साहित्य में चेतना का शंखनाद मारवाड़ के कविराजा बांकीदास और बूंदी के सूर्यमल्ल मीसण ने किया। जिनके क्रांतिकारी विचारों से समाज में चेतना जाग्रत हुई तथा इस चेतना को आगे की पीढ़ी के साहित्यकारों ने जगाए रखा, जिसका सुखद परिणाम हमारे देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के रूप में प्राप्त हुआ।

आधुनिक राजस्थानी की साहित्य की गद्य और पद्य विधाओं में प्रचुर साहित्यिक सामग्री का सृजन हो रहा है और उस साहित्यिक सामग्री के आधार पर राजस्थानी साहित्य की परंपरा अत्यंत सुदृढ़ तथा महत्त्वपूर्ण है।

राजस्थानी गद्य–पद्य की विशिष्ट शैलियां

ख्यात –

देशी राज्यों के राजाओं ने अपने सम्मान, सफलताओं और विशेष कार्यों आदि के विवरण के रूप में अपना इतिहास लिखवा कर संचित किया है। यह इतिहास 'ख्यात' कहलाता है, जैसे– 'दयालदास री ख्यात' में बीकानेर के राव बीकाजी से लेकर महाराजा अनूपसिंह तक का इतिहास संचित है। मुहणोत नैणसी द्वारा रचित 'मुहणोत नैणसी री ख्यात' इस परंपरा की विशिष्ट रचना है।

वचनिका

संस्कृत के 'वचन' शब्द से बना 'वचनिका' शब्द एक काव्य विधा के रूप में साहित्य में प्रचलित हुआ। 'वचनिका' एक ऐसी तुकान्त गद्य–पद्य रचना है जिसमें अंत्यानुप्रास मिलता है, यद्यपि इसके अपवाद भी मिलते हैं। राजस्थानी भाषा की दो अत्यंत प्रसिद्ध वचनिकाओं में शिवदास गाडण कृत 'अचलदास खींची री वचनिका' तथा खिड़िया जग्गा री कही 'राठौड़ रतनसिंघ महेसदासोत री वचनिका' प्रमुख है।

दवावैत

दवावैत कलात्मक गद्य का एक अन्य रूप है, जो वचनिका काव्य रूप की तरह ही है। वचनिका राजस्थानी में लिखी होती है, किन्तु दवावैत उर्दू और फारसी के शब्दों से युक्त होती है। इनमें कथा के नायक का गुणगान, राज्य–वैभव, युद्ध, आखेट, नखशिख आदि का वर्णन तुकान्त और प्रवाहयुक्त होता है। 'अखमाल देवड़ा री दवावैत', 'महाराणा जवानसिंह री दवावैत', 'राजा जयसिंह री दवावैत' आदि प्रमुख दवावैत ग्रंथ हैं।

वात

कहानी की तरह वात कहने और सुनने की विशेष विधा है। कथा कहने वाला कहता चलता है और सुनने वाला 'हुँकारा' (बीच–बीच में हाँ जैसे शब्दों का प्रयोग, जिससे कथाकार को लगे कि श्रोता रुचि ले रहा है) देता रहता है। इन वातों में जीवन के हर पक्ष, युद्ध, धर्म, दर्शन, मनोरंजन पर प्रकाश डाला गया हैं। गद्यमय, पद्यमय तथा गद्य–पद्यमय तीनों रूपों में वातें मिलती हैं। 'राव अमरसिंहजी री वात', 'खींचियां री वात', 'पाबूजी री वात', 'कान्हड़दे री वात', 'अचलदास खींची री वात' आदि प्रमुख वातें हैं।

झमाल

झमाल राजस्थानी काव्य का मात्रिक छन्द है। इसमें पहले पूरा दोहा, फिर पांचवें चरण में दोहे के अंतिम चरण को दोहराया जाता है। 'राव इन्द्रसिंह री झमाल' प्रसिद्ध है।

झूलणा

झूलणा राजस्थानी काव्य का मात्रिक छन्द है। इसमें चौबीस अक्षर के वर्णिक छन्द के अंत में यगण होता है। 'अमरसिंह राठौड़ रा झूलणा', 'राजा गजसिंह–रा–झूलणा', 'राव सुरतांण–देवड़े–रा–झूलणा' आदि प्रमुख झूलणा रचनाएं हैं।

परची

संत–महात्माओं का जीवन परिचय राजस्थानी भाषा में जिस पद्यबद्ध रचना में मिलता है उसे परची कहा गया है। 'संत नामदेव री परची', 'कबीर री परची', 'संत रैदास री परची', 'संत पीपा री परची', 'संत दादू री परची', 'मीराबाई री परची' आदि प्रमुख परची रचनायें हैं।

प्रकास

किसी वंश अथवा व्यक्ति विशेष की उपलब्धियों या घटना विशेष पर प्रकाश डालने वाली कृतियों को प्रकास कहा गया है। किशोरदास का 'राजप्रकास', आशिया मानसिंह का 'महायश प्रकास', कविया करणीदान का 'सूरज प्रकास' आदि प्रमुख प्रकास ग्रंथ हैं।

मरस्या

राजा या किसी व्यक्ति विशेष की मृत्यु के बाद शोक व्यक्त करने के लिए 'मरस्या' काव्यों की रचना की गई। इसमें उस व्यक्ति के चारित्रिक गुणों के अतिरिक्त अन्य महान कार्यो का वर्णन भी किया जाता था। 'राणे जगपत रा मरस्या' मेवाड़ महाराणा जगतसिंह की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए लिखा

गया था।

रासो

मोतीलाल मेनारिया के अनुसार, ''जिस काव्य ग्रंथ में किसी राजा की कीर्ति, विजय, युद्ध, वीरता आदि का विस्तृत वर्णन हो, उसे रासो कहते हैं।'' रासो ग्रंथों में चन्द्रबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो', नरपति नाल्ह का 'बीसलदेव रासो', गिरधर आसिया का 'सगत रासो', दलपत विजय का 'खुमाण रासो', कुम्भकर्ण का 'रतन रासो', जोधराज का 'हम्मीर रासो' प्रमुख है।

रूपक

किसी वंश अथवा व्यक्ति विशेष की उपलब्धियों के स्वरूप को दर्शाने वाली काव्य कृति रूपक कहलाती है। 'गजगुणरूपक', 'रूपक गोगादेजी रो', 'राजरूपक' आदि प्रमुख रूपक काव्य हैं।

विगत

विगत से किसी विषय का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इसमें इतिहास की दृष्टि से शासक, उसके परिवार, राज्य के क्षेत्र प्रमुख व्यक्ति अथवा उनके राजनीतिक, सामाजिक व्यक्तित्व का वर्णन मिलता है। विगत में उपलब्ध आंकड़े आर्थिक दृष्टि से भी उपयोगी रहे हैं। मुहणोत नैणसी की 'मारवाड़ रा परगनां री विगत' में प्रत्येक परगने की आबादी, रेख, भूमि किस्म, फसलों का हाल, सिंचाई के साधन आदि की जानकारियां प्राप्त होती हैं।

वेलि

वेलि ग्रंथ 'वेलियो' छन्द में लिखे हुए हैं। इनके विविध विषय रहे है, जो धार्मिक, ऐतिहासिक रहे हैं। 'दईदास जैतावत री वेलि', 'रतनसी खीवावत री वेलि' तथा 'राव रतन री वेलि' प्रमुख वेलि ग्रंथ हैं। वेलि परंपरा की प्रमुख रचना पृथ्वीराज राठौड़ की लिखी हुई 'वेलि किसण रूकमणी री' है।

साखी

साखी साक्षी शब्द से बना है। साखी परक रचनाओं में संत कवियों ने अपने द्वारा अनुभव किये गये ज्ञान का वर्णन किया है। साखियों में सोरठा छन्द का प्रयोग हुआ है। कबीर की साखियां प्रसिद्ध हैं।

सिलोका

सिलोका साधारण पढ़े–लिखे लोगों द्वारा लिखे गये हैं, इसलिए ये जनसाधारण की भावनाओं को आमजन तक पहुँचाते हैं। 'राव अमरसिंह रा सिलोका', 'अजमालजी रो सिलोको', 'राठौड़ कुसलसिंह रो सिलोको', 'भाटी केहरसिंह रो सिलोको' आदि प्रमुख सिलोके हैं।

आधुनिक राजस्थानी साहित्य

मारवाड़ के कविराजा बांकीदास तथा बूंदी के सूर्यमल्ल मीसण ने राजस्थानी जन मानस में जिस राष्ट्रीय चेतना का बीज बोया था, वही आगे चलकर आधुनिक काल के अनेक कवियों की कविताओं में प्रकट हुआ। इन्हीं के साथ हींगलाजदान कविया और शंकरदान सामोर का भी नाम लिया जाना जरूरी है। आधुनिकता का संबंध केवल काल से ही नहीं अपितु विचार से, सोच से भी होता है। जीवन को देखने–समझने की वैज्ञानिक दृष्टि और यथार्थपरक दृष्टिकोण आधुनिकता की विशेषताएं हैं। कवि ऊमरदान की कविताओं में संवत् 1956 के अकाल से दुःखी जनता का मार्मिक चित्रण किया है। साथ ही पाखण्डी साधुओं को बेनकाब किया गया है। रामनाथ कविया ने 'द्रोपदी विनय' से नारी चेतना को जागृत किया।

केसरीसिंह बारहठ, विजयसिंह पथिक, जयनारायण व्यास, हीरालाल शास्त्री, गोकुल भाई भट्ट, माणिक्यलाल वर्मा, जनकवि गणेशीलाल व्यास राजस्थान के ऐसे कवि हैं जिन्होंने आजादी की लड़ाई में भाग लेने के साथ ही इस लड़ाई के लिए अपनी कलम को भी हथियार बनाया। इनमें से गणेशीलाल व्यास ऐसे कवि हैं जिन्होंने खुद आजादी की लड़ाई में भाग लिया और आजादी के बाद के अपने मोहभंग को भी कविताओं में प्रखर रूप से प्रकट किया है। रेवतदान चारण की रचनाएं सामन्ती शोषण के प्रति आमजन को जगाने का काम करती हैं।

राजस्थानी के अनेक कवियों ने जन–जन तक अपनी बात पहुँचाने के लिए कवि सम्मेलनों को माध्यम बनाया। एक समय था जब राजस्थानी कवि मेघराज मुकुल की 'सेनाणी' कवि सम्मेलनों की सर्वाधिक लोकप्रिय कविताओं में मानी जाती थीं। सत्यप्रकाश जोशी अपने मौलिक और गैर पारंपरिक सोच के साथ अलग ही स्थान रखते हैं। 1960 ई. में प्रकाशित उनकी काव्य कृति राधा इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि जहाँ आम राजस्थानी कविता युद्ध का गौरव गान करती हैं, वहीं जोशी अपनी नायिका राधा के माध्यम से श्रीकृष्ण को यह संदेश देकर कि भयंकर युद्ध टाल दें, युद्ध के विरोध में खड़े दिखाई देते हैं। इसी प्रकार कन्हैयालाल सेठिया (जिनके गीत 'धरती धोरां री' को तो राजस्थान का आदर्श गीत भी कहा जा सकता है) की रचनाएं तो गहरी नींद में सोई हुई आत्मा को भी जगा दे, ऐसी क्षमता रखती है। 'मींझर' और 'लीलटाँस' सेठिया जी के प्रमुख काव्य संग्रह हैं।

सातवें दशक के मध्य तक राजस्थान की आधुनिक कविता का पहला दौर चला। राजस्थान में राजस्थानी भाषा में 'मरुवाणी', 'जलमभोम', 'जांणकारी', 'ओळमो', 'लाडेसर', 'हरावळ', 'राजस्थली', 'ईसरलाट', 'राजस्थानी–एक हेलो', 'दीठ', 'चामळ', 'अपरंच' जैसी अनेक साहित्यिक पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही थीं और इनके माध्यम से बहुत सारे नए कवि सामने आ रहे थे। यही वह समय है जब पारस अरोड़ा की जुड़ाव, गोरधनसिंह शेखावत की गाँव, तेजसिंह जोधा की 'कठैई कीं व्हेगौ है', मणि मधुकर की 'सोजती गेट', 'पगफेरो', हरीश भादाणी की 'बोलै सरणाटौ', 'बाथां में भूगोल', चन्द्रप्रकाश देवल की 'पागी', 'कावड', 'मारग', अर्जुनदेव चारण की 'रिन्दरोही', मालचन्द तिवाड़ी 'कीं उतर्यो है आभौ' आदि रचनाओं ने राजस्थानी साहित्य को नई ऊँचाईयां प्रदान कीं।

शिवचंद्र भरतिया को राजस्थानी का प्रथम आधुनिक गद्यकार कहा जा सकता है। रानी लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत ने राजस्थान के अतीत को सजीव करने वाली ऐतिहासिक सांस्कृतिक गरिमापूर्ण कहानियां लिखीं– 'मांझळ रात', 'अमोलक वातां', 'मूमळ', 'गिर ऊंचा ऊंचा गढ़ां', 'कै रे चकवा बात' आदि। विजयदान देथा ने अपनी 'बातां री फुलवारी' (14 खण्ड) शृंखला में राजस्थान की यत्र–तत्र बिखरी लोककथाओं का कुछ ऐसा अनूठा संकलन किया कि उन्हें खूब प्रसिद्धि मिली। विजयदान देथा के कुछ प्रमुख राजस्थानी–हिन्दी कहानी संग्रह हैं– 'दुविधा', 'उलझन', 'अलेखूं हिटलर', 'सपन प्रिया', 'अंतराल' आदि। 'दुविधा' नामक विजयदान देथा की कृति पर तो 'पहेली' नामक फिल्म का निर्माण भी हो चुका है। इनकी कृति 'चौधराइन की चतुराई' को भी बेहद पसंद किया जाता है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र की कहानियां उनके संग्रहों 'जमारो', 'समन्द अर थार' में संग्रहित हैं और उनके कुछ उपन्यास हैं– 'हूं गोरी किण पीव री', 'जोग–संजोग', 'चान्दा सेठाणी' आदि।

इसी प्रकार नथमल जोशी के कहानी संग्रह परण्योड़ी–कंवारी तथा उपन्यास 'आभै पटकी', 'धोरां रौ धोरी', 'एक बीनणी दो बीन' भी बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रसिद्ध कहानीकारों में डॉ. नृसिंह राजपुरोहित, अन्नाराम सुदामा, रामेश्वर दयाल श्रीमाली, डॉ. मनोहर शर्मा, सांवरदईया आदि प्रमुख हैं।

साहित्यिक पत्रकारिता

राजस्थान की साहित्यिक पत्रकारिता का वैभवपूर्ण इतिहास रहा है। इन साहित्यिक, लघु व अनियतकालीन पत्रिकाओं ने राजस्थान के लेखन को ही गति प्रदान करने के साथ ही हिन्दी प्रदेशों के साहित्यकारों को भी एक मंच प्रदान किया है। बीकानेर की वातायन (हरीश भादानी), अजमेर की लहर (प्रकाश जैन), भरतपुर की ओर (विजेन्द्र), कांकरोली की सम्बोधन (कमर मेवाड़ी), अलवर की कविता

(भागीरथ भार्गव), उदयपुर की बिन्दु ने अनेक लेखकों को गंभीर व स्तरीय मंच प्रदान किया। सम्प्रेषण (चन्द्रभानु भारद्वाज), मधुमाधवी (नलिनी उपाध्याय) के साथ राजस्थान साहित्य अकादमी की पत्रिका 'मधुमती' ने भी राजस्थान में साहित्यिक वातावरण बनाने में योगदान दिया। राजस्थानी भाषा की पत्रिकाओं में राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, बीकानेर की 'जागती जोत' के अतिरिक्त सत्यप्रकाश जोशी की 'हरावल', किशोर कल्पनाकांत की 'ओल्यूं', कवि चन्द्रसिंह द्वारा स्थापित 'मरुवाणी' प्रमुख हैं।

उपर्युक्त रचनाएं समृद्ध राजस्थानी साहित्य का संक्षिप्त परिचय भर हैं, सच्चाई यह हैं कि राजस्थानी साहित्य का भण्डार इतना विपुल है कि उसका सम्पूर्ण वर्णन करना किसी एक सीमा में सम्भव नहीं है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. 'बातां री फुलवारी' किसकी रचना है–

   (अ) मालचंद तिवाड़ी (ब) लक्ष्मी कुमारी

   (स) श्रीलाल (द) विजयदान देथा

2. जिस काव्य ग्रंथ में किसी राजा की कीर्ति, विजय, युद्ध, वीरता आदि का वर्णन हो, उसे कहते हैं–

   (अ) रूपक (ब) रासो

   (स) विगत (द) वेलि

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. पूर्वी राजस्थान की दो बोलियों के नाम लिखिये।
2. झमाल से आप क्या समझते हैं?
3. कन्हैयालाल सेठिया के दो प्रमुख काव्य संग्रह बताइये।
4. 'राणे जगपत रा मरस्या' किस शासक की मृत्यु पर लिखा गया था?
5. सर्वप्रथम राजस्थान की भाषा के लिए 'राजस्थानी' शब्द का प्रयोग किसने किया था?
6. भीली बोली किस बोली की सहायक बोली है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. वचनिका और दवावैत में अंतर स्पष्ट कीजिये।
2. मेवाती बोली पर टिप्पणी लिखिये।
3. विगत व वेलि में अंतर स्पष्ट कीजिये।
4. आधुनिक काल के राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत कवि व उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालिये।
5. साहित्यिक पत्रकारिता पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. राजस्थान की विभिन्न बोलियों एवं उनके क्षेत्र का वर्णन कीजिये।
2. राजस्थानी भाषा के आधुनिक साहित्य पर एक विस्तृत आलेख लिखिये।

परियोजनात्मक कार्य :

1. राजस्थानी भाषा के विभिन्न साहित्यकारों की फोटो एकत्र कर उन्हें अपनी स्क्रैप बुक में लगाइये।

कल्पना करें :

आप उदयपुर व चित्तौड़ के ग्रामीण क्षेत्रों की यात्रा पर हैं, आपको वहाँ कौन–कौनसी बोलियां सुनने को मिलेगी?

अध्याय

10

राजस्थान के प्रमुख पर्यटन स्थल

पर्यटन आज विश्व के सबसे बड़े उद्योगों में स्थान बना चुका हैं। राजस्थान भी पर्यटन स्थलों की दृष्टि से एक सम्पन्न राज्य है, जहाँ हर वर्ष लाखों सैलानी आते हैं। आंकड़े बताते हैं, कि भारत आने वाला हर तीसरा पर्यटक राजस्थान आता है। राजस्थान में पर्यटन विभाग की स्थापना 1956 ई. में की गई और 1989 ई. में इसे उद्योग का दर्जा दिया गया।

आज प्रत्येक देश पर्यटन से विदेशी मुद्रा प्राप्त करना चाहता है और इस हेतु प्रचार–प्रसार भी कर रहा है। राजस्थान सरकार भी इस दिशा में सराहनीय प्रयास कर रही है। राजस्थान को पर्यटन की दृष्टि से दस सर्किटों में बांटा जाना इसी प्रयास का परिणाम है। यहाँ पर हम राजस्थान के कुछ महत्त्वपूर्ण पर्यटन स्थलों का अध्ययन करेंगे।

अजमेर

अढ़ाई दिन का झोंपड़ा

मूल रूप से 'अढ़ाई दिन का झोंपड़ा' कहलाने वाली इमारत एक संस्कृत महाविद्यालय (विग्रहराज चतुर्थ द्वारा निर्मित) था, परन्तु बाद में सुल्तान मुहम्मद ग़ौरी के सेनापति ऐबक ने इसे मस्ज़िद में तब्दील करवा दिया। हिन्दू व इस्लामिक स्थापत्य कला के इस नमूने को सुल्तान इल्तुतमिश ने और ज्यादा सुशोभित किया। इसका यह नाम पड़ने के पीछे एक किंवदंती है कि इस इमारत को मन्दिर से मस्ज़िद में तब्दील करने में सिर्फ अढ़ाई दिन लगे थे। इसलिए इसका नाम 'अढ़ाई दिन का झोंपड़ा' पड़ गया। दूसरा मत यह है कि मराठा काल में यहाँ पंजाबशाह बाबा का अढ़ाई दिन का उर्स भी होता था, इसीलिए इसका नाम अढ़ाई दिन का झोंपड़ा पड़ा।

ख्वाज़ा साहब की दरगाह

अजमेर में सर्वाधिक देशी व विदेशी पर्यटक ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर मन्नत मांगने तथा मन्नत पूरी होने पर चादर चढ़ाने आते हैं। सभी धर्मों के लोगों में ख्वाजा साहब की बड़ी मान्यता है। दरगाह में तीन मुख्य दरवाजे हैं। मुख्य द्वार, 'निज़ाम दरवाज़ा', हैदराबाद के नवाब द्वारा बनवाया गया। मुगल सम्राट शाहजहाँ द्वारा 'शाहजहाँनी दरवाजा' बनवाया गया और सुल्तान महमूद ख़िलजी द्वारा 'बुलन्द दरवाजा' बनवाया गया। उर्स के दौरान दरगाह पर झंडा चढ़ाने की रस्म के बाद, बड़ी देग (तांबे का बड़ा कढ़ाव) जिसमें 4800 किलो तथा छोटी देग में 2240 किलो खाद्य सामग्री पकाई जाती है। जिसे भक्त लोग प्रसाद के तौर पर बाँटते हैं। श्रद्धालु अपनी मनोकामना पूर्ण होने पर भी इन देगों में भोजन पकवाते व बाँटते हैं। सर्वाधिक आश्चर्य की बात है कि यहाँ केवल शाकाहारी भोजन ही पकाया जाता है।

आनासागर झील

यह एक कृत्रिम झील है जिसे राजा अजयराज चौहान के पुत्र अर्णोराज चौहान ने बनवाया। इन्हें 'अन्ना जी' के नाम से पुकारा जाता था तथा इन्हीं के नाम पर आना सागर झील का नाम रखा गया । इसके निकट दौलत बाग, मुगल सम्राट जहाँगीर द्वारा तथा पाँच बारहदरियां, सम्राट शाहजहाँ द्वारा

बनवाई गई थीं। खूबसूरत सफेद मार्बल में बनी बारहदरियां, हरे भरे वृक्ष–कुन्जों से घिरी हैं। यहाँ सुस्ताने तथा मानसिक शांति के लिए पर्यटक आते हैं।

मेयो कॉलेज

भारतीय राजघरानों के बच्चों के लिए यह बोर्डिंग स्कूल हुआ करता था। अंग्रेजों के समय में रिचर्ड बॉर्क द्वारा 1875 ई. में मेयो कॉलेज की स्थापना की गई। इस भवन का स्थापत्य, इंडो सार्सेनिक (भारतीय तथा अरबी) शैली का अतुलनीय उदाहरण है। संगमरमर से निर्मित यह भवन अत्यंत आकर्षक है।

सोनीजी की नसियां

19वीं सदी में निर्मित यह जैन मन्दिर, भारत के समृद्ध मंदिरों में से एक है। इसके मुख्य कक्ष को स्वर्णनगरी का नाम दिया गया है। इसका प्रवेश द्वार लाल पत्थर से बना है तथा अन्दर संगमरमर की दीवारें बनी हैं, जिन पर काष्ठ आकृतियां तथा शुद्ध स्वर्ण पत्रों से जैन तीर्थंकरों की छवियाँ व चित्र बने हैं।

ब्रह्मा मंदिर

पूरे विश्व का एक मात्र ब्रह्मा मंदिर, पुष्कर में स्थित है। संगमरमर से निर्मित, चाँदी के सिक्कों से जड़ा हुआ, लाल शिखर और हंस (ब्रह्मा जी का वाहन) की छवि वाले मंदिर में ब्रह्मा जी की चतुर्मुखी प्रतिमा गर्भगृह में स्थापित है। इसी मंदिर में सूर्य भगवान की संगमरमर की मूर्ति प्रहरी की भाँति खड़ी है। इस मूर्ति की विशेषता यह है कि सूर्य भगवान की मूर्ति जूते पहने दिखाई दे रही है।

सावित्री मंदिर

ब्रह्मा मंदिर के पीछे, ऊँची पहाड़ी पर सावित्री मंदिर है जो कि ब्रह्मा जी की पहली पत्नी थी। मंदिर तक पहुँचने के लिए सुविधाजनक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ऊपर चढ़कर मंदिर से नीचे की ओर झील, मंदिर और रेत के टीलों का विहंगम दृश्य बेहद सुन्दर दिखाई पड़ता है। ऐसी किंवदंती है कि ब्रह्मा जी ने पुष्कर में अपना यज्ञ करने के लिए, गायत्री से दूसरा विवाह किया था। इससे नाराज होकर पहली पत्नी सावित्री ने उन्हें श्राप दिया, जिसके फलस्वरूप ही पूरे विश्व में, ब्रह्मा जी का केवल एक ही मंदिर है – पुष्कर में। अब सावित्री मंदिर पर 'रोप–वे' की सुविधा उपलब्ध है।

पुष्कर सरोवर

'तीर्थराज' के नाम से प्रसिद्ध पुष्कर सरोवर सभी तीर्थस्थलों का राजा कहलाता हैं। इस सरोवर में डुबकी लगाने पर तीर्थयात्रा सम्पन्न मानी जाती है, ऐसी मान्यता है। अर्द्ध गोलाकार रूप में लगभग 9–10 मीटर गहरी यह झील 500 से अधिक मंदिरों और 52 घाटों से घिरी हुई है।

अलवर

सरिस्का टाइगर रिजर्व

सरिस्का को 1 नवम्बर, 1955 को अभयारण्य का दर्जा दिया गया था, तत्पश्चात् सन् 1978–79 में इसे टाइगर रिजर्व का दर्जा प्रदान कर दिया गया। इसका वन क्षेत्र 1213 वर्ग कि.मी. में है। बाघ के अलावा यहाँ विविध पशु–पक्षियों की प्रजातियाँ जैसे – नीलगाय, लोमड़ी, जंगली सुअर, ख़रगोश, तेन्दुआ, चीतल, सांभर, बन्दर पाये जाते हैं। पक्षियों में जंगल बैबलर, बुलबुल, क्विल, केस्ट्रेड सर्पेन्ट, ईगल, रैड स्परफाउल, सैण्डग्राउज, वुडपेकर आदि पाये जाते हैं।

भानगढ़

सरिस्का वन्य अभयारण्य से पचास कि.मी. दूरी पर भानगढ़ स्थित है। आमेर के महाराजा भगवानदास के पुत्र माधव सिंह ने अपनी प्रथम नगरी के रूप में भानगढ़ की स्थापना की थी। कालान्तर में भानगढ़ के वीरान होने के संबंध में किंवदंतियां प्रचलित हो गई। भानगढ़ को भारत में सर्वाधिक रहस्यमयी स्थान होने

का गौरव प्राप्त है। आज भी इस किले के खण्डहरों में सात मंज़िला महल के अवशेष, सुव्यवस्थित बाजार, दुकानें तथा सोमेश्वर महादेव मंदिर, गणेश मंदिर, तालाब नज़र आते हैं।

मूसी महारानी की छतरी

महाराजा बख्तावर सिंह की रानी मूसी रानी की स्मृति में महाराजा विनयसिंह द्वारा बनाई गई इस छतरी की वास्तुकला में भारतीय व इस्लामिक शैली का मिश्रण है। सफेद संगमरमर से बनी इस छतरी में 12 विशाल स्तम्भ तथा 27 अन्य स्तम्भ हैं। इसके आन्तरिक भाग में भगवान श्री कृष्ण, श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मी जी और सीतामाता की छवियां चित्रित हैं। अरावली की पहाड़ियों से घिरी तथा सिटी पैलेस व सागर झील और मन्दिर के पास यह छतरियां शोभायमान हैं। महाराजा बख्तावर सिंह के जीवन सम्बन्धित चित्रण भी इस छतरी में विद्यमान है।

भर्तृहरि मंदिर

राजा भर्तृहरि अलवर के एक वैरागी शासक थे। उनके जीवन के अन्तिम वर्ष यहीं बीते थे। महाराजा जयसिंह ने 1924 ई. में भर्तृहरि के मंदिर को नया स्वरूप दिया। मंदिर में एक अखण्ड ज्योत सदैव प्रज्ज्वलित रहती है। यहाँ मुख्य मेला भाद्रपद शुक्ल अष्टमी को लगता है, जिसमें बड़ी संख्या में श्रद्धालु बाबा भर्तृहरि की आराधना करने आते हैं। पास में ही हनुमान मंदिर, शिव मंदिर और श्रीराम मंदिर भी स्थित है।

सिलिसेढ़ झील

अरावली के पश्चिमी छोर पर, पहाड़ों के बीच प्रसिद्ध सिलिसेढ़ झील स्थित है। अलवर से सरिस्का जाते समय, 15 कि.मी. की दूरी पर यह झील है। इसका निर्माण महाराजा विनयसिंह ने 1845 ई. में सिलिसेढ बांध के रूप में करवाया था। स्थानीय नदी 'रूपारेल' की एक शाखा को रोक कर यह झील बनवाई गई थी। इस झील के किनारे, हरी भरी वादियों के बीच, मोती सा चमकता, सिलिसेढ़ लेक पैलेस दिखाई देता है, जिसे राजस्थान पर्यटन विकास निगम द्वारा हैरिटेज होटल के रूप में संचालित किया जाता है। सिलिसेढ़ झील में पर्यटकों के लिए बोटिंग तथा बर्ड वॉचिंग की भी सुविधा है। सर्दियों में यहाँ विभिन्न प्रजातियों के पक्षी तथा पानी में तैरती बत्तखें व मगरमच्छ पर्यटकों का मन मोह लेते हैं।

बांसवाड़ा (सुनहरे द्वीपों का शहर)

माहीबांध

माही नदी पर बांसवाड़ा से 18 किमी की दूरी पर संभाग का यह सबसे बड़ा बाँध है, जिसमें 16 गेट हैं तथा बांध की कुल लम्बाई 3.10 किमी है। वर्षाकाल में जब यह पूर्ण भर जाता है तब सभी गेट खोलने पर जो दृश्य उत्पन्न होता है उसका नजारा अनुपम और मनोहारी होता है। इसे देखने को पूरे वर्ष सैलानी इंतजार करते हैं। यहाँ वॉटर स्पोर्ट्स की असीम संभावना है।

त्रिपुरा सुन्दरी

बांसवाड़ा – डूंगरपुर मार्ग पर 19 किमी दूरी पर तलवाडा ग्राम के समीप उमराई गांव में स्थित माँ त्रिपुरा सुन्दरी का प्राचीन मन्दिर है। मंदिर के उत्तरी भाग में सम्राट कनिष्क के समय का एक शिवलिंग होने से कहा जाता है कि यह स्थान कनिष्क के पूर्वकाल से ही प्रतिष्ठित है। काले पाषाण की सिंह पर सवार 18 भुजाओं वाली दिव्य आयुध धारण किए देवी की विशाल प्रतिमा है, जो शक्ति पीठ के रूप में जानी जाती है। स्थानीय लोग इसे 'तरतई माता, त्रिपुरा महालक्ष्मी' के नाम से पुकारते हैं। मंदिर के समीप शिलालेख विक्रम संवत 1540 का लगा हुआ है। देश–विदेश में प्रसिद्ध शक्ति पीठ माँ त्रिपुरा सुन्दरी आस्था का प्रमुख धार्मिक पर्यटन स्थल है। चैत्र एवं अश्विन नवरात्रि में हजारों की संख्या में श्रद्धालु अपनी मनोकामना हेतु यहाँ आते हैं।

मानगढ़ धाम

राजस्थान के जलियांवाला बाग के नाम से प्रसिद्ध मानगढ़ धाम बांसवाड़ा से 85 किमी की दूरी पर आनंदपुरी के समीप राजस्थान – गुजरात सीमा की पहाड़ी पर स्थित है। यह स्थान आदिवासी अंचल में स्वाधीनता आन्दोलन के अग्रज माने जाने वाले महान संत गोविन्द गुरू की कर्मस्थली माना जाता है। ऐतिहासिक मान्यतानुसार इसी स्थान पर गोविन्द गुरू के नेतृत्व में मानगढ़ की पहाड़ी पर सभा के आयोजन के दौरान अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ स्वतंत्रता की मांग कर रहे, 1500 राष्ट्रभक्त आदिवासियों पर 17 नवम्बर 1913 को अंग्रेज़ों ने निर्ममता पूर्वक गोलियां चलाकर उनकी नृशंष हत्या कर दी थी। मानगढ़ धाम पर प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष पूर्णिमा पर मेले का आयोजन किया जाता है जिसमें राजस्थान, गुजरात एवं मध्यप्रदेश से हजारों श्रद्धालु आते हैं। वर्तमान में इसे राष्ट्रीय शहीद स्मारक के रूप में विकसित किया जा रहा है।

अब्दुल्ला पीर

यह बोहरा मुस्लिम संत अब्दुल रसूल की लोकप्रिय मज़ार है। शहर के दक्षिणी भाग में स्थित इस दरगाह को अब्दुल्ला पीर के नाम से जाना जाता है। हर वर्ष बड़ी संख्या में विशेषतः बोहरा समुदाय के लोग दरगाह के उर्स में शामिल होने आते हैं।

बारां

सीताबाड़ी

सीता माता और लक्ष्मण को समर्पित यह मन्दिर, बारां से 45 कि.मी. दूर है तथा ऐसी मान्यता है कि भगवान राम और सीता के दोनों पुत्र लव और कुश का जन्म यहीं पर हुआ था। इसमें कई कुण्ड भी हैं जैसे – वाल्मीकि कुण्ड, सीता कुण्ड, लक्ष्मण कुण्ड, सूर्य कुण्ड आदि। प्रसिद्ध 'सीताबाड़ी मेला' भी यहीं आयोजित किया जाता है। यह एक पिकनिक स्थल के रूप में भी प्रसिद्ध है।

शेरगढ़ किला

बारां से लगभग 65 किमी की दूरी पर परवन नदी के किनारे पर स्थित शेरगढ़ किला सबसे लोकप्रिय पर्यटक आकर्षणों में से एक है। यह स्मारक शासकों हेतु सामरिक महत्त्व रखता था। अनेक वर्षों से विभिन्न राजवंशों के शासन में शेरगढ़ को अपना नाम शेरशाह द्वारा कब्जा करने के बाद मिला। इसका मूल नाम कोषवर्धन था।

रामगढ़ भंडदेवरा मंदिर

शहर से 40 कि.मी. दूरी पर भगवान शिव को समर्पित यह मन्दिर 10वीं शताब्दी का प्राचीन मन्दिर माना जाता है। इसकी वास्तुकला की शैली खजुराहो शैली से मिलती जुलती है, इसी लिए इसे राजस्थान का 'मिनी खजुराहो' भी कहा जाता है। एक छोटे तालाब के किनारे बसा यह मन्दिर अन्य मन्दिरों से अनूठा है। यहाँ प्रसाद के तौर पर, एक देवता को मिठाई व सूखे फल चढ़ाए जाते हैं तो दूसरे आराध्य की सेवा में मांस मदिरा प्रस्तुत किया जाता है।

बाड़मेर

किराडू मन्दिर

थार के रेगिस्तान में चमकते लाल माणक जैसे यह मन्दिर शहर से लगभग 35 कि.मी. दूर है, जिन्हें आप जाकर देखें तो देखते ही रह जाएँ। सोलंकी वास्तुकला शैली में उभरे कंगूरे स्तम्भ और पत्थर पर की गई बारीक नक़्काशी का काम इन मंदिरों को विशिष्ट बनाता है। इन मन्दिरों को भगवान शिव को समर्पित किया गया है। उल्लेखनीय है कि यहाँ कुछ मूर्तियाँ यथा स्थान, कुछ इधर उधर रेत के धोरों में बिखरी पड़ी हैं। यहाँ पाँच मन्दिर हैं, जिनमें 'सोमेश्वर महादेव' मंदिर कलात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ है।

श्री नाकोड़ा जी जैन मन्दिर

यह भव्य जैन मन्दिर, बहुत सारे हमले सह चुका है। आलमशाह ने 13वीं शताब्दी में इस मन्दिर पर हमला किया और इसे लूट कर ले गया था। लेकिन भाग्यवश भगवान की प्रतिमा को नहीं ले जा सका था। गांव वालों को इस हमले का आभास होने पर उन्होंने इस मूर्ति को गाँव में ही ले जाकर छिपा दिया था। शांति होने के बाद, 15वीं सदी में प्रतिमा को वापस लाकर मंदिर में पुनः स्थापित किया गया। वैसे तीसरी शताब्दी में निर्मित इस मंदिर को कई बार पुनर्निर्मित किया जा चुका था। यहाँ सबसे बड़ा मंदिर पार्श्वनाथ का है।

रानी भटियानी मन्दिर

'भुआ सा' के नाम से प्रसिद्ध रानी भटियानी एक हिन्दू देवी हैं जो पश्चिमी राजस्थान आौर सिंध पाकिस्तान में पूजनीय है। बाड़मेर के जसोल गाँव में स्थित रानी भटियानी का मंदिर मुख्यतया ढोली जाति की आस्था का केन्द्र है। यह रानी जैसलमेर के जोगीदास गाँव की राजकुमारी थी तथा भाटी राजपूत थीं। राठौड़ राजा से शादी करके बाड़मेर आईं, परन्तु राठौड़ राजा की बड़ी रानी ने इन्हें तथा इनके पुत्र लालसिंह को ईर्ष्यावश जहर दिलवा कर मरवा दिया था।

भरतपुर

केवलादेव घना राष्ट्रीय उद्यान

घने वृक्ष, तालाब तथा शोरगुल से दूर यह स्थान पक्षियों के लिए स्वर्ग समान है। इसे 1971 ई. में संरक्षित पक्षी अभयारण्य तथा 1985 ई. में 'विश्व धरोहर' भी घोषित किया गया। यहाँ हजारों की संख्या में विदेशी दुर्लभ पक्षी, प्रतिवर्ष सर्दियों में आते हैं, अपने घोंसले बनाते हैं, प्रजनन करते हैं तथा गर्मी की शुरूआत होते होते वापस अपने देश चले जाते हैं। लगभग 230 प्रजातियों के पक्षी यहाँ देखे जा सकते हैं। 18वीं सदी के मध्य में भरतपुर के दक्षिण–पूर्व में एक छोटे जलाशय के रूप में, 'घना पक्षी विहार' निर्मित किया गया था। आज इसे विश्व का सबसे ज्यादा शानदार व आकर्षक पक्षी विहार होने का गौरव प्राप्त है। इसमें भारतीय सारस क्रेन, साइबेरियन क्रेन, जल मुर्ग़ी, चीनी मुर्गी, हैरन, पेन्टेड स्टॉर्क, कार्मोरेन्ट, नॉब बिल्ड डक, व्हाइट स्पून बिल, सैण्ड पाइपर आदि विभिन्न प्रजातियों के पक्षी आते व विचरण करते हैं।

लोहागढ़ क़िला

नाम से ही प्रभावित करने वाला यह किला कई ब्रिटिश हमलों का सामना कर चुका है और अंततः ब्रिटिश सैन्य अधिकारी लार्ड कंबरमियर ने 1826 में इस पर कब्जा कर लिया था। इसके मजबूत गेट अष्ट धातु व लकड़ी के बने हैं तथा दुश्मनों से बचने के लिए, इसके चारों ओर गहरी खाई है जिसमें पानी भर दिया जाता था। किले के अन्दर सुन्दर स्मारकों में कोठी खास, महल खास, मोती महल और किशोरी महल हैं। किले की आठ विशाल बुर्जो में से जवाहर बुर्ज महाराजा जवाहरसिंह की मुगलों पर विजय (1765) तथा फतेहबुर्ज अंग्रेजों पर विजय के स्मारक के रूप में 1806 में बनाई गई।

बंध बारेठा

यह भरतपुर के शासकों का पुराना वन्यजीव अभयारण्य है, जहाँ शिकार खेलने के लिए केवल शाही परिवार आते थे। अभी यह वन विभाग के अधीन है। महाराजा जसवंत सिंह ने 1866 ई. में यहाँ पर बांध का निर्माण प्रारम्भ कराया था और 1897 ई. में महाराजा रामसिंह ने इसे पूरा करवाया था। इस बांध के निकट 'शाही महल' महाराजा किशन सिंह ने बनवाया था, जो कि अब भरतपुर शाही परिवार की निजी सम्पत्ति है। बंध बारेठा में चौपाये जानवरों के अलावा लगभग 200 से अधिक प्रजातियों के पक्षी विचरण करते हैं।

गंगा मंदिर

भरतपुर का लोकप्रिय मंदिर, राजपूत, मुगल तथा द्रविड़ स्थापत्य शैली का सुन्दर मिश्रण है। यह

मंदिर महाराजा बलवंत सिंह द्वारा 1845 ई. में बनाना शुरू किया गया था, जिसका निर्माण कार्य 90 वर्षों तक चला। उनके उत्तराधिकारी राजा बृजेन्द्र सिंह ने इस मंदिर में देवी गंगा नदी की मूर्ति की स्थापना की थी। ऐसी मान्यता है कि इसके निर्माण के लिए, राज्य के सभी कर्मचारियों तथा समृद्ध लोगों ने एक माह का वेतन दान किया था। यहाँ मुख्य आकर्षण भगवान कृष्ण, लक्ष्मीनारायण और शिव पार्वती की मूर्तियाँ हैं। गंगा सप्तमी और गंगा दशहरा के अवसर पर यहाँ बड़ी संख्या में लोग आते हैं।

भीलवाड़ा (वस्त्र नगरी)

मेनाल जल–प्रपात

भीलवाड़ा से 80 कि.मी. दूर, कोटा रोड़ पर नेशनल हाइवे 27 पर मेनाल अपने अलौकिक, नैसर्गिक वैभव के कारण, हजारों की संख्या में पर्यटकों को आकर्षित करता है। चारों तरफ जंगलों से घिरा मेनाल का झरना, दूर दराज क्षेत्रों से आने वाले तथा विदेशी पर्यटकों को भी आकर्षित करता है। 150 फीट गहरी खाई में गिरने वाली इसकी जलधारा, बड़ी जोर की आवाज करती है और देखने वालों की नजर वहाँ से नहीं हटती। मेनाल में शिव जी का अत्यन्त सुन्दर, वैभवशाली मंदिर है।

मांडलगढ़

भीलवाड़ा से 54 किमी दूर स्थित इस जगह का ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि यह मध्य काल के दौरान कई युद्धों का साक्षी रहा है। इतिहास प्रसिद्ध हल्दी घाटी युद्ध से पूर्व मुगल सेनापति मानसिंह ने इस स्थान पर डेरा जमाया था। लगभग आधा मील लंबा किला पहाड़ी के शिखर पर प्राचीरों और खाई की सुरक्षा के साथ अडिग है। किले में दो मंदिर है, जिसमें एक भगवान शिव को समर्पित हैं और दूसरा भगवान कृष्ण को समर्पित है।

शाहपुरा

भीलवाड़ा से 55 कि.मी. दूर शाहपुरा कस्बा है। यह चार दरवाजे वाली दीवार से घिरा, राम स्नेही संप्रदाय के अनुयायियों के लिए सन् 1804 में स्थापित तीर्थस्थान है। पूरे वर्ष देशभर से श्रद्धालु यहां आते हैं। यहाँ पांच दिन के लिए फूल डोल मेला के रूप में जाना जाने वाला वार्षिक मेला फाल्गुन शुक्ला (मार्च–अप्रैल) में आयोजित किया जाता है। शाहपुरा के उत्तरी भाग में एक विशाल महल परिसर है, जो छज्जों, मीनारों और छतरियों द्वारा सुशोभित है। इसके ऊपरी भाग से रमणीय झील और शहर के सुंदर दृश्य को देखा जा सकता है। प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी केसरी सिंह, जोरावर सिंह और प्रताप सिंह बारहठ शाहपुरा के थे। त्रिमूर्ति स्मारक, बारहठ जी की हवेली, (जो अब राजकीय संग्रहालय में परिवर्तित कर दी गई है।) और पिवनीया तालाब यहाँ के अन्य महत्वपूर्ण आकर्षण हैं। शाहपुरा पारंपरिक फड़ चित्रकला के लिए भी जाना जाता है।

बूंदी (कुण्ड और बावड़ियों का शहर)

तारागढ़ फोर्ट

राजपूत शैली में, 1354 ई. में राजा बरसिंह द्वारा निर्मित यह किला बून्दी की सबसे आकर्षक जगह है। यह क़िला और महल ऊँची पहाड़ी पर बने हैं तथा दुर्भाग्यवश जंगली झाड़ियों के बीच जीर्ण–शीर्ण अवस्था में है। इसकी सुन्दरता का अनुमान, इसके देवालय, स्तंभ, शीर्ष मंडपों वाली छतरियाँ, वक्राकार छत और हाथी व कमल के रूप में सजी इनकी सुन्दरता से लगाया जा सकता है।

चौरासी खम्भों की छतरी

बूंदी के महाराजा अनिरूद्ध सिंह द्वारा अपने धाय भाई देवा की स्मृति में बनवाई गई छतरी, चौरासी खम्भों पर टिकी है। यह एक प्रभावशाली तथा सुन्दर संरचना है, जिसे पर्यटक इसकी कलात्मक नक्काशी

जिसमें हिरण, हाथी तथा अप्सराओं का चित्रांकन है, के कारण बहुत पसंद करते हैं।

चित्र महल, बून्दी

बून्दी का ''चित्र महल'' किसी जमाने में बहुत शानदार बगीचों से भरपूर महल था, जिसमें विभिन्न कलात्मक फव्वारे लगे हुए थे तथा बहुत से तालाब थे, जिनमें विविध प्रजातियों की तथा अनोखी व विदेशी मछलियाँ हुआ करती थीं। इस महल का नाम इसीलिए ''चित्र महल'' रखा गया है क्योंकि इस की सभी दीवारों और छतों को बेहद सुन्दर व आकर्षक पेन्टिंग्स से सजाया गया है। पुराने जमाने में, अट्ठारहवीं शताब्दी के दौरान, बून्दी शहर मिनिएचर पेन्टिंग्स बनाने वाले कलाकारों का गढ़ था तथा यहाँ के राजा मिनिएचर पेन्टिंग्स को बहुत बढ़ावा देते थे। देवी देवताओं, युद्ध के दृश्यों तथा हाथियों और 'राधा कृष्ण' के विभिन्न क्रिया कलापों के चित्र केवल इसी क्षेत्र की कला में ही देखने को मिलते हैं। चित्र महल में एक और ''चित्रशाला'' भी है जिसे महाराजा उम्मेद सिंह जी के आदेशों से बनाया गया था। यह चित्रशाला चूंकि महल के एकदम अन्दरूनी हिस्से में है, इसीलिए यहाँ बनी पेंटिग्स को सूर्य की रौशनी तथा मौसम की नमी से अभी तक कोई नुकसान नहीं पहुंचा है तथा कलाकारों द्वारा पेन्टिंग्स को दी गई चमक और रंग अपने मूल रूप में मौजूद हैं।

रानी जी की बावड़ी

'क्वीन स्टैपवैल, (रानी जी की बावड़ी),' सन् 1699 में बूंदी के शासक राव राजा अनिरूद्ध सिंह जी की छोटी रानी नाथावती जी द्वारा बनवाई गई थी। इस बावड़ी का मुख्य द्वार, आमन्त्रण देता प्रतीत होता है। बहुमंजिला बावड़ी के तोरणद्वार पर गजराज के उत्कृष्ट नक्काशीदार अंकन हैं, जिसमें उनकी सूंड को अन्दर की ओर मोड़ा गया है, जिससे ऐसा आभास होता है मानो हाथी बावड़ी से पानी पी रहा है।

चित्तौड़गढ़

चित्तौड़गढ़ किला

सिसोदिया राजपूतों का गढ़ यह किला गम्भीरी और बेड़च नदी के तट पर स्थित है। इस किले के निर्माण की ऐतिहासिक तिथि पर मतभेद है। पौराणिक कथा के अनुसार इसका निर्माण पौराणिक युग में महाभारत महाकाव्य के एक पांडव नायक भीम द्वारा प्रारम्भ करवाया गया था। क़िले में बहुत से भव्य स्मारक हैं, जिनमें से कुछ समय की मार झेल कर जीर्ण–शीर्ण हो रहे है।

विजय स्तम्भ

यह महाराणा कुम्भा ने मालवा के मुस्लिम शासक को हराकर, अपनी विजय का जश्न मनाने और उसे चिरस्थाई करने के उपलक्ष्य में सन् 1440 ई. में बनवाना शुरू किया, जो कि 8 वर्षों में निर्मित हुआ। शिल्प कला का अद्‌भुत नमूना 'विजय स्तम्भ', लाल बलुआ पत्थर और सफेद संगमरमर से बनाया गया, 9 मंजिला स्तम्भ है। इसमें हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियाँ अलंकृत की गई हैं। इसमें ऊपर जाने के लिए संकरी सीढ़ियों का रास्ता है और ऊपर जाकर बालकनियों से पूरे शहर का विहंगम दृश्य देखा जा सकता है।

कीर्ति स्तम्भ

यह विशाल स्तम्भ, जैन तीर्थंकर तथा महान शिक्षाविद् आदिनाथ जी को समर्पित है। एक धनी जैन व्यापारी जीजा बघेरवाल तथा उसके पुत्र पुण्य सिंह ने, 13वीं शताब्दी में बनवाया था। यह 24.5 मीटर ऊँचा हिन्दू स्थापत्य शैली में बना, विजय स्तम्भ से भी पुराना है। इस 6 मंज़िले स्तम्भ पर जैन तीर्थंकरों की तथा ऊपरी मंजिलों में सैंकड़ों लघु मूर्तियां शिल्पांकित की गईं हैं।

भैंसरोडगढ़ किला

यह भव्य आकर्षक किला, 200 फुट ऊँची सपाट पहाड़ी की चोटी पर, चम्बल और ब्राह्मणी नदियों से घिरा हुआ है। इस किले की सुन्दरता से अभिभूत होकर, ब्रिटिश इतिहासकार जेम्स टॉड ने कहा था कि यदि उन्हें राजस्थान में एक जागीर (संपत्ति) की पेशकश की जाए तो वह 'भैंसरोडगढ़' को ही चुनेंगे। कोई सटीक जानकारी न मिलने के कारण, इस किले के निर्माण के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। हालांकि यह किला दूसरी शताब्दी में निर्मित किया गया, ऐसा माना जाता है। कई वंशों के अधीन रहने के बाद ऐसी मान्यता है कि अलाउद्दीन खिलजी ने भी इस किले पर हमला किया था तथा यहाँ के सभी पुराने मंदिर और इमारतों को नष्ट कर दिया था। वर्तमान में इस किले को शाही परिवार द्वारा एक शानदार हैरिटेज होटल के रूप में संचालित किया जा रहा है। तीन तरफ नदियों से घिरे तथा अरावली पर्वत माला व घने जंगलों के बीच स्थित इस क़िले की खूबसूरती, देशी व विदेशी पर्यटकों को बहुत आकर्षित करती है।

दौसा

चाँद बावड़ी – आभानेरी

राजा चंद्र द्वारा स्थापित, जयपुर–आगरा सड़क पर आभानेरी की चाँद बावड़ी, दौसा जिले का मुख्य आकर्षण है। इसका असली नाम 'आभा नगरी' था, परन्तु आम बोल चाल की भाषा में आभानेरी हो गया। पर्यटन विभाग द्वारा यहाँ प्रत्येक वर्ष सितम्बर–अक्टूबर में 'आभानेरी महोत्सव' आयोजित किया जाता है। यह दो दिन चलता है तथा पर्यटकों के मनोरंजन के लिए राजस्थानी खाना तथा लोक कलाकारों द्वारा विभिन्न गीत व नृत्य के कार्यक्रम होते हैं।

हर्षद माता मंदिर – आभानेरी

दौसा से 33 कि.मी. दूर, चाँद बावड़ी परिसर में ही स्थित, यह मंदिर हर्षद माता को समर्पित है। हर्षद माता अर्थात उल्लास की देवी। ऐसी मान्यता है कि देवी हमेशा हँसमुख प्रतीत होती है और भक्तों को खुश रहने का आशीर्वाद प्रदान करती है।

धौलपुर

वन विहार अभयारण्य

धौलपुर के शासकों के मनोरंजन के लिए यह अभयारण्य 24 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में बनाया गया था। यह अभयारण्य पर्यटकों तथा विशेषकर प्रकृति प्रेमियों के आकर्षण का केन्द्र यहाँ पाए जाने वाले साँभर, चीतल, नील गाय, जंगली सूअर, भालू, हाईना और तेंदुआ जैसे जीवों के साथ–साथ, विभिन्न वनस्पतियों का भण्डार है।

मचकुंड

सूर्यवंशीय साम्राज्य के 24वें शासक, राजा मुचुकुंद के नाम पर इस प्राचीन और पवित्र स्थल का नाम रखा गया। शहर से लगभग 4 कि.मी. की दूरी पर, यह स्थल भगवान राम से पहले, 19वीं पीढ़ी तक, राजा मुचुकुंद के शाही कार्यस्थल के रूप में रहा। प्राचीन धार्मिक साहित्य के अनुसार, राजा मुचुकुंद एक बार गहरी नींद में सोया हुआ था, तभी दैत्य कालयमन ने अचानक उसे उठा लिया। परन्तु एक दैवीय आशीर्वाद से दैत्य जलकर भस्म हो गया। इसी कारण यह प्राचीन पावन तीर्थ स्थल माना जाता है।

तालाब–ए–शाही

सन् 1617 में यह तालाब–ए–शाही के नाम से मशहूर एक ख़ूबसूरत झील, शहजादे शाहजहाँ के लिए शिकारगाह के रूप में बनवाई गई थी। धौलपुर से 27 कि.मी. दूर और बाड़ी से 5 कि.मी. की दूरी पर, यह झील, राजस्थान की ख़ूबसूरत झीलों में से एक है। यहाँ पर सर्दियों के मौसम में कई प्रकार के प्रवासी पक्षी

अपने घोंसले बनाने के लिए आते हैं जैसे – पिंटेल, रैड कार्स्टेड पोच, बत्तख़, कबूतर आदि।

डूंगरपुर

बेणेश्वर मंदिर

सोम व माही नदियों में डुबकी लगाने के बाद, बेणेश्वर मंदिर में भगवान शिव की आराधना करने के लिए भक्तगण समर्पण के भाव से यहाँ आते हैं। इस अंचल के सर्वाधिक पूजनीय शिवलिंग बेणेश्वर मंदिर में स्थित है। सोम और माही नदियों के तट पर स्थित पांच फीट ऊँचा ये स्वयंभू शिवलिंग शीर्ष से पांच हिस्सों में बंटा हुआ है। बेणेश्वर मंदिर के पास स्थित विष्णु मंदिर, एक अत्यंत प्रतिष्ठित संत और भगवान विष्णु का अवतार माने जाने वाले 'मावजी' की बेटी, जनककुंवरी द्वारा 1793 ई. में निर्मित किया गया था। कहा जाता है कि मंदिर उस स्थान पर निर्मित है जहां मावजी ने भगवान से प्रार्थना करते हुए अपना समय बिताया था। मावजी के दो शिष्य 'अजे' और 'वाजे' ने लक्ष्मी नारायण मंदिर का निर्माण किया। इन मंदिरों के अलावा भगवान ब्रह्मा का मन्दिर भी है। माघ शुक्ल पूर्णिमा (फरवरी) यहाँ, सोम व माही नदियों के संगम पर विशाल मेला लगता है, जहाँ दूर दूर के गाँवों तथा शहरों से लोग तथा आदिवासी, पवित्र स्नान करने व मंदिर में पूजा करने आते हैं।

गलियाकोट

दाऊदी बोहरा समाज का पवित्र स्थान है 'गलियाकोट दरगाह'। डूंगरपुर से 58 किलोमीटर की दूरी पर माही नदी के किनारे स्थित, गलियाकोट नामक एक गांव है। यह स्थान सैयद फखरूद्दीन की मज़ार के लिए जाना जाता है। वह एक प्रसिद्ध संत थे जिन्हें उनकी मृत्यु के बाद गांव में ही दफन किया गया था। यह मजार श्वेत संगमरमर से बनायी गयी है और उनकी दी हुई शिक्षाएं दीवारों पर सोने के पानी से उत्कीर्ण हैं। गुंबद के अन्दरूनी हिस्से को खूबसूरत स्वर्णपत्रों से सजाया गया है, जबकि पवित्र कुरान की शिक्षाओं को कब्र पर सुनहरे पन्नों में उत्कीर्ण किया गया है।

गैब सागर झील

इस झील के प्राकृतिक वातावरण और कोलाहल से दूर होने के कारण यहाँ बड़ी संख्या में पक्षियों का बसेरा है। रमणीय झील गैब सागर डूंगरपुर का एक प्रमुख आकर्षण है इसके तट पर श्रीनाथ जी का मंदिर समूह है। इस मंदिर परिसर में कई अति सुंदर नक्काशीदार मंदिर और 'विजय राजराजेश्वर' मंदिर शामिल है।

हनुमानगढ़

काली बंगा

4500 वर्ष पूर्व यहाँ सरस्वती नदी के किनारे हड़प्पा कालीन सभ्यता फल फूल रही थी। पुरातत्त्व प्रेमियों के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान कालीबंगा हड़प्पा सभ्यता के अवशेषों की प्राप्ति स्थल के कारण प्रसिद्ध है। ये अवशेष 2500 वर्ष ईसा पूर्व के हड़प्पा और पूर्व हड़प्पा युग से संबंधित हैं। कालीबंगा में खुदाई से हड़प्पाकालीन सील, मानव कंकाल, अज्ञात स्क्रिप्ट, तांबे की चूंड़ियाँ, मोती, सिक्के, टेराकोटा और सीप के खिलौने मिले हैं। यहाँ 1983 ई. में स्थापित एक पुरातत्त्व संग्रहालय भी है, जिसे 1961–1969 के दौरान हड़प्पा स्थल पर खुदाई से निकले अवशेषों के लिए निर्मित किया गया था। यहाँ संग्रहालय में तीन दीर्घाएं हैं जिनमें एक दीर्घा 'पूर्व हड़प्पा काल' और शेष दो दीर्घाएं हड़प्पा काल की कलाकृतियों के लिए समर्पित हैं।

भटनेर किला

भटनेर, भट्टी नगर का अपभ्रंश है, तथा उत्तरी सीमा प्रहरी के रूप में विख्यात है। भारत के सबसे पुराने

किलों में से एक माना जाने वाला भटनेर किला या हनुमानगढ़ किला घग्घर नदी के तट पर स्थित है। किले का महत्व इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि आईन–ए–अकबरी में इसका उल्लेख किया है। किले का निर्माण लगभग 17 सौ साल पहले जैसलमेर के राजा भाटी के पुत्र भूपत ने किया था। तैमूर और पृथ्वीराज चौहान सहित कई साहसी शासकों ने किले पर कब्जा करने की कोशिश की, सदियों से कोई भी इस किले को नहीं जीत पा रहा था। अंत में, वर्ष 1805 में, बीकानेर के राजा सूरत सिंह ने भाटी राजाओं को पराजित किया और किले पर कब्जा कर लिया।

जयपुर (गुलाबी शहर)

हवा महल

बाहर की तरफ से भगवान कृष्ण के मुकुट जैसा दिखाई देने वाला यह महल अनूठा है। सन् 1799 में महाराजा सवाई प्रताप सिंह द्वारा बनवाया गया यह महल पाँच मंजिला है तथा इसका डिजाइन वास्तुकार लालचंद उस्ता द्वारा तैयार किया गया था। गुलाबी शहर का प्रतीक हवा महल, बलुआ पत्थर से बना राजस्थानी वास्तुकला और मुगल शैली का मिश्रण है। इसकी दीवारें सिर्फ डेढ़ फुट चौड़ी हैं तथा 953 बेहद सुन्दर आकर्षक छोटे छोटे आकार के झरोखे हैं। इसे बनाने का मूल उद्देश्य था कि शहर में होने वाले मैले–त्यौहार तथा जुलूस को महारानियाँ इस महल के अन्दर बैठकर देख सकें। हवा महल गर्मी के मौसम में भी इन झरोखों के कारण वातानुकूलित रहता है।

आमेर महल

जयपुर से 11 कि.मी. की दूरी पर कछवाहों की पुरानी राजधानी आमेर, अपने किले और स्थापत्य के लिए पर्यटकों का मुख्य आकर्षण है। यूनेस्को की 'विश्व धरोहर' सूची में शामिल, पूर्व में कच्छवाहा राजपूतों की राजधानी आमेर महल ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। यह हिन्दू व मुगल शैली का सुन्दर मिश्रण है। आमेर का महल सन् 1592 में राजा मानसिंह प्रथम ने दुश्मनों से मुकाबला और बचाव करने के लिए बनवाया था। आमेर महल का आंतरिक भाग, लाल बलुआ पत्थर तथा संगमरमर से बनाया गया तथा इसमें नक्काशी का कार्य बहुमूल्य पत्थरों की जड़ाई, मीनाकारी का काम, पच्चीकारी काम, जगह–जगह लगे बड़े बड़े दर्पण, इसकी भव्यता को चार चाँद लगाते हैं।

जंतर – मंतर

जयपुर के संस्थापक महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय द्वारा बनवाई गई पाँच खगोलीय वेधशालाओं में सबसे विशाल है, जयपुर की यह वेधशाला। इसे जंतर मंतर कहते हैं। यूनेस्को द्वारा इसे विश्व धरोहर सूची में शामिल किया गया है। इसमें बनाए गए जटिल यंत्र, समय को मापने, सूर्य की गति व कक्षाओं का निरीक्षण तथा आकाशीय पिंडों के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक जानकारी देते हैं।

जयगढ़ फोर्ट

सन् 1726 में, महाराजा जयसिंह द्वितीय द्वारा यह किला आमेर की सुरक्षा के लिए बनवाया गया था। इसमें बने शस्त्रागार, अनूठा शस्त्र संग्रहालय, तोपें बनाने का कारखाना तथा विश्व की सबसे बड़ी तोप 'जयबाण' के कारण, राजस्थान में आने वाला प्रत्येक पर्यटक, जयपुर आकर इस तोप को जरूर देखना चाहता है। इस तोप को एक बार चलाया गया था जिससे शहर से 35 कि.मी. दूर एक गड्ढा बन गया था। इसकी लम्बाई 31 फीट 3 इंच है तथा वजन 50 टन है। इसके 8 मीटर लंबे बैरल में 100 किलो गन पाउडर भरा जाता था।

नाहरगढ़ किला

अंधेरी रात में, तारों की छाँव में, नाहरगढ़ किले से जयपुर शहर का विहंगम, अभूतपूर्व, अद्भुत और मदमस्त नजारा, सारी दुनियां में और कहीं नहीं मिलेगा। शहर की रोशनी को देखकर लगता है, तारे

जमीन पर उतर आए हैं। सन् 1734 में महाराजा जयसिंह के शासनकाल के दौरान इस किले का निर्माण किया गया, जो कि शहर का पहरेदार मालूम होता है। इस किले में बनाए गए माधवेन्द्र भवन को ग्रीष्म काल में महाराजा के निवास के रूप में काम में लिया जाता था। रानियों के लिए आरामदेय बैठक तथा राजा के कक्षों का समूह, आलीशान दरवाजों, खिड़कियों और भित्तिचित्रों से सजाया गया, नाहरगढ़ अतीत की यादों को समेटे शान से खड़ा है। अभी हाल ही में महल में एक स्कल्पचर आर्ट गैलरी भी बनवाई गई है।

अल्बर्ट हॉल (सेंट्रल म्यूजियम)

सन् 1876 में प्रिंस ऑफ वेल्स ने इसकी आधारशिला रखी थी। इसका नाम लंदन के अल्बर्ट संग्रहालय के नाम पर रखा गया था। सर स्विन्टन जैकब द्वारा इसका डिजाइन बनवाया था तथा इंडो–सार्सेनिक स्थापत्य शैली के आधार पर इसका निर्माण करवाया गया। रामनिवास बाग के बीच में अल्बर्ट हॉल की अभूतपूर्व और मनमोहक इमारत, हर मौसम में पर्यटकों को आकर्षित करती है। इसमें जयपुर कला विद्यालय, कोटा, बूंदी, किशनगढ़ और उदयपुर शैली के लघु चित्रों का बड़ा संग्रह है।

गलता जी

गलता जी जयपुर का एक प्राचीन तीर्थ स्थान है। यह गालव ऋषि की तपोस्थली है। गलता जी स्थित कुंड में स्नान का धार्मिक महत्व है। तीर्थ यात्री यहाँ पवित्र स्नान हेतु आते हैं। इस स्थान में मंदिर, मंडप और पवित्र कुंड हैं। गलता जी आने के लिए आगंतुक पहले रामगोपाल जी मंदिर परिसर में आते हैं, जिसे स्थानीय लोगों द्वारा 'बंदर मंदिर' कहा जाता है। इसे ये नाम यहाँ पाये जाने वाले 'बंदरों के एक बड़े समूह' की वजह से मिला। हरियाली का खूबसूरत नजारा और उछलते कूदते बंदर क्षेत्र के खुशनुमा माहौल में इजाफा करते हैं। पहाड़ी की चोटी पर सूर्य देव को समर्पित एक छोटा मंदिर है, जिसे 'सूर्य मंदिर' कहा जाता है। दीवान कृपाराम द्वारा निर्मित ये मंदिर शहर के लोगों के लिए पूजनीय है।

ईसरलाट (सरगासूली)

शहर के बीचों बीच 60 फीट ऊँची भव्य मीनार 'ईसरलाट' को स्वर्ग भेदी मीनार या 'सरगासूली' भी कहते हैं। राजा ईश्वरी सिंह ने 1749 ई. में इस मीनार को एक शानदार जीत की स्मृति में बनवाया था। त्रिपोलिया गेट के निकट स्थित इस मीनार में अन्दर की तरफ ऊपर तक जाने के लिए सीढ़ियां बनी हैं, जिनसे चढ़कर ऊपर से जयपुर का विहंगम दृश्य दिखाई देता है।

गोविन्द देव जी मंदिर

श्री गोविन्द देव जी की आकर्षक प्रतिमा सवाई जयसिंह वृन्दावन से जयपुर लाए थे, जो यहाँ पूरे सम्मान से शहर के परकोटे में स्थित श्री गोविन्द देव जी मंदिर में स्थापित की गई। शाही परिवार और स्थानीय लोगों द्वारा पूजनीय गोविन्द देवजी में सात झांकियों के माध्यम से दर्शन की समुचित व्यवस्था है।

जैसलमेर (किले और हवेलियों का शहर)

जैसलमेर का किला

यह किला एक वर्ल्ड हैरिटेज साइट है। थार मरूस्थल के 'त्रिकुटा पहाड़ी' पर खड़ा यह क़िला बहुत सी ऐतिहासिक लड़ाईयाँ देख चुका है। सूरज की रोशनी जब इस किले पर पड़ती है तो यह पीले बलुआ पत्थर से बना होने के कारण, सोने जैसा चमकता है। इसीलिए इसे 'सोनार किला' या 'गोल्डन फोर्ट' कहते हैं।

डेजर्ट नेशनल पार्क

थार रेगिस्तान के विभिन्न वन्यजीवों का सबसे महत्त्वपूर्ण आवास है यह पार्क। जानवरों की विभिन्न

प्रजातियां जैसे काले हिरण, चिंकारा और रेगिस्तान में पाई जाने वाली लोमड़ी, ये सब पार्क में विचरण करते हैं। लुप्तप्रायः ग्रेट इंडियन बस्टर्ड, जो दुनिया का सबसे बड़ी उड़ान भरने वाले पक्षियों में से एक है, उसे भी यहाँ देखा जा सकता है। यह नेशनल पार्क जैसलमेर से 40 कि.मी. की दूरी पर है।

पटवों की हवेली

इस हवेली के अन्दर पाँच हवेलियाँ हैं जो कि गुमान चंद पटवा ने अपने पाँच बेटों के लिए, 1805 ई. में बनवाई थी। इसे बनाने में 50 साल लग गए थे। जैसलमेर में सबसे बड़ी और सबसे खूबसूरत नक्काशीदार हवेली, यह पांच मंजिला संरचना एक संकरी गली में गर्व से खड़ी है। यद्यपि हवेली अब अपनी उस भव्य महिमा को खो चुकी है, तथापि कुछ चित्रकारी और काँच का काम अभी भी अंदर की दीवारों पर देखा जा सकता है।

तन्नोट माता मंदिर

भाटी राजपूत नरेश तणुराव (तन्नू जी) ने वि.सं. 828 में तन्नोट माता का मंदिर बनवा कर, मूर्ति की स्थापना की थी। यहाँ आस पास के सभी गाँवों के लोग तथा विशेषकर, बीएसएफ के जवान यहाँ पूर्ण श्रद्धा के साथ पूजा अर्चना करते हैं। जैसलमेर से क़रीब 120 किलोमीटर दूर 'तन्नोट माता' मंदिर है। तन्नोट माता को देवी हिंगलाज का पुनर्जन्म माना जाता है।

रामदेवरा मंदिर

रूणीचा बाबा रामदेव और रामसा पीर का पुण्य स्थान है 'रामदेवरा मंदिर'। इन्हें सभी धर्मों के लोग पूजते हैं। रामदेव जी राजस्थान के एक लोक देवता हैं। इनकी छवि घोड़े पर सवार, एक राजा के समान दिखाई देती है। इन्हें हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रतीक माना जाता है। वैसे भी राजस्थान के जनमानस में पाँच पीरों की प्रतिष्ठा है, उनमें से एक रामसा पीर का विशेष स्थान है। पोकरण से 12 किलोमीटर की दूरी पर जोधपुर जैसलमेर मार्ग पर 'रामदेवरा मंदिर' स्थित है। अधिकांश लोग यह मानते हैं कि यह मंदिर भगवान राम को समर्पित है, पर वास्तव में यह प्रसिद्ध संत बाबा रामदेव को समर्पित है। यह मंदिर बाबा रामदेव के अन्तिम विश्राम का स्थान माना जाता है। सभी धर्मों के लोग यहाँ यात्रा के लिए आते हैं। यहाँ भाद्रपद में 'रामदेवरा मेले' के नाम से एक बड़ा लोकप्रिय मेला आयोजित किया जाता है। बड़ी संख्या में भक्त यहाँ आकर रात भर भक्तिपूर्ण गीत गाते हैं।

बड़ा बाग

यह एक विशाल उद्‌यान है, जो भाटी राजाओं की स्मृतियों को समेटे हुए है। बड़ा बाग जैसलमेर के उत्तर में 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है, जिसे 'बरबाग़' भी कहा जाता है। इस बगीचे में जैसलमेर राज्य के पूर्व महाराजाओं की शाही छतरियां हैं। उद्यान का स्थान ऐसी जगह है कि जहां से पर्यटकों को सूर्यास्त का अद्‌भुत दृश्य भी देखने को मिलता है। जैसलमेर के महाराजा जयसिंह द्वितीय (1688–1743) ने यहाँ एक बाँध बनवाया था, जिसके कारण जैसलमेर का काफी हिस्सा हरा भरा हो गया था। उनकी मृत्यु के बाद 1743 ई. में उनके पुत्र लूणकरण ने अपने पिता की छतरी यहाँ बनवाई थी। उसके बाद अन्य राजाओं की मृत्यु के बाद उनकी भी छतरियाँ यहाँ बनाई गईं।

जालोर (ग्रेनाइट की नगरी)

जालोर किला

यहाँ के किले और महलों में ज्यादा सजावट देखने को नहीं मिलती है। यहाँ के सबसे प्रतापी शासक 'कान्हड़देव सोनगरा' हुए हैं, जिन्होंने दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के कई बार दांत खट्टे किए। खिलजी ने कान्हड़देव से बदला लेने के लिए कई दाँव–पेंच लगाए, परन्तु अन्त में वह कान्हड़देव और उनके पुत्र वीरमदेव की वीरता का कायल हो गया। शहर का मुख्य आकर्षण जालोर का किला है। यह

वास्तुकला का एक प्रभावशाली प्रतीक है और माना जाता है कि 8वीं और 10वीं शताब्दियों के बीच इसका निर्माण किया गया था। किला लगभग 336 मीटर की ऊँचाई पर खड़ी पहाड़ी के ऊपर स्थित है और नीचे शहर का अति सुदर दृश्य पेश करता है। किले की मुख्य विशेषताएं इसकी ऊँची दीवारें और गढ़ हैं।

सुंधा माता मंदिर

अरावली रेंज में सुंधा पर्वत के ऊपर स्थित, सुंधा माता मंदिर है। यह मंदिर समुद्र तल से ऊपर 1220 मीटर की ऊँचाई पर बनाया गया है और पूरे भारत के भक्तों द्वारा बहुत पवित्र माना जाता है। यहाँ चामुंडा देवी की एक प्रतिमा है। मंदिर के सफेद संगमरमर के बने खंभे माउंट आबू के दिलवाड़ा मंदिर की याद दिलाते हैं। इस मंदिर में ऐतिहासिक महत्त्व के कुछ शिलालेख भी हैं।

मलिक शाह की मस्जिद

अलाउद्दीन खिलजी ने जालोर में अपने शासन के दौरान, बगदाद के सुल्तान मलिक शाह के सम्मान में यह मस्जिद बनवाई थी। यह मस्जिद अपनी अनूठी स्थापत्यकला के लिए प्रसिद्ध है। इसकी बनावट, गुजरात में बने भवनों से काफी प्रभावित है।

झालावाड़

गागरोन का किला

यहाँ के शासक 'अचलदास खींची' जब मालवा के शासक होशंगशाह से हार गए थे तो यहाँ की राजपूत महिलाओं ने खुद को दुश्मनों से बचाने के लिए जौहर कर लिया था। 'यूनेस्को' की विश्व धरोहर स्थल सूची में सम्मिलित छः पहाड़ी किलों में से एक, पहाड़ी और जल किले का प्रतीक गागरोन किला राजस्थान की शान है। आहू, काली सिंध नामक नदियों से घिरे इस किले की भव्य सुन्दरता को अपलक निहारने का मन करता है। किले के बाहर 'सूफी संत मिट्ठेशाह' के मकबरे पर मोहर्रम के महीने में वार्षिक मेले का आयोजन होता है। गागरोन किले का निर्माण बीजलदेव ने 12वीं सदी में करवाया था। तीन नदियों का संगम देखने के लिए यहाँ पर्यटक आते हैं।

भवानी नाट्यशाला

इसका निर्माण 1921 ई. में हुआ था। यह नाट्यशाला, कई यादगार नाटकों एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों की मूक गवाह है। माना जाता है कि सम्पूर्ण विश्व में ऐसी सिर्फ आठ नाट्यशालाएं हैं। शेक्सपियर के लिखे नाटक यहाँ खेले जाते थे। विदेशी पर्यटक इसे देखने में बड़ी रूचि रखते हैं। यह नाट्यशाला नाट्य और कला जगत में स्थापत्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें घोड़ों और रथों के मंच पर प्रकट होने का रास्ता, एक भूमिगत मार्ग द्वारा बनाया गया है जो इसकी अनूठी विशेषता है।

सूर्य मंदिर

झालावाड़ का जुड़वां शहर है झालरापाटन, जिसे 'सिटी ऑफ बैल्स' यानि घंटियों का शहर भी कहा जाता है। यहाँ पर बहुत से मंदिर होने के कारण सुबह शाम मंदिरों की घंटियों की स्वर लहरी सुनाई देती है। 10वीं शताब्दी में बना 17 फीट ऊँचा भगवान शिव को समर्पित सूर्य मंदिर, झालरापाटन के सर्वाधिक मनोहारी मंदिरों में से एक है। इस मंदिर का शिखर पद्मनाभ या सूर्य मंदिर के रूप में लोकप्रिय उड़ीसा के कोणार्क सूर्य मंदिर के समान उत्कीर्ण किया गया है। यहाँ की आदमकद मूर्तियों को देखकर पर्यटक हतप्रभ रह जाते हैं।

बौद्ध गुफाएं और स्तूप

झालावाड़ में सबसे प्रसिद्ध, कोल्वी गाँव की प्राचीन बौद्ध गुफाएं हैं। गुफाओं में सबसे प्रभावशाली है बुद्ध की विशाल प्रतिमा और उत्कीर्णित स्तूप संरचना। झालावाड़ से लगभग 90 किलोमीटर की दूरी पर

स्थित ये भारतीय कला के सर्वश्रेष्ठ जीवंत नमूने माने जाते हैं। पर्यटक, विनायक और हतियागौर गांवों के पास की गुफाओं का भी अवलोकन कर सकते हैं।

शेखावाटी (सीकर, झुझुनूं, चुरू)

ताल छापर अभयारण्य

ताल छापर में उछलते– कूदते, अठखेलियाँ करते, छोटे छोटे मृग शावक यानि हिरण के बच्चे पर्यटकों का मन मोह लेते हैं। काले हिरण की यह सैंचुअरी छापर गाँव में है, जो कि जयपुर से 210 कि.मी. दूर चूरू की सुजानगढ़ तहसील में है। काले हिरण का यह अभयारण्य, खुले मैदान, बड़े पेड़ों तथा लताओं से आच्छादित है। यहाँ हिरणों के साथ, रेगिस्तानी लोमड़ी, जंगली बिल्ली को भी देखा जा सकता है। पक्षी प्रेमियों के लिए भी यहाँ पर चील, आइबीज, दक्षिण यूरोप और मध्य एशिया में पाए जाने वाले सारस, क्रेन, चकवा, कबूतर आदि देखने को मिलते हैं।

मंडावा

प्राचीन समय में मध्यपूर्व और चीन के मध्य का प्राचीन व्यापारिक मार्ग का एक मुख्य केन्द्र था मंडावा। यहाँ से सामान का आदान–प्रदान किया जाता था। यहाँ के ठाकुर नवल सिंह ने नवलगढ़ और मंडावा पर शासन किया। मंडावा में एक किला बनवाया तथा किले के चारों तरफ नगर बसाया। यहाँ अनेक बड़े व्यापारी आकर बस गए, जिन्होंने अनूठी, अद्भुत, अजब–गजब हवेलियों की नींव रखी और इस नगर को पर्यटकों का आकर्षण केन्द्र बना दिया। इस किले के भित्ति चित्र, काँच का काम तथा आकर्षक मेहराबदार द्वार, भगवान कृष्ण के चित्रों से शोभायमान हैं।

खेतड़ी महल

'झुझंनू का खेतड़ी महल' कला और वास्तु संरचना के सर्वोत्कृष्ट उदाहरणों में से एक है। इसे झुझंनू के हवा महल के रूप में भी जाना जाता है। 1770 ई. में इस महल का निर्माण हुआ था। आश्चर्यजनक तथ्य है कि खेतड़ी महल में कोई झरोखे या द्वार नहीं है फिर भी इसे हवा महल के नाम से जाना जाता है। खेतड़ी महल का अनोखापन, हवा के अबाध प्रवाह हेतु व्यवस्थित रूप से बनाये गये भवनों के निर्माण के कारण है। महल के लगभग सभी कक्षों में सुव्यवस्थित स्तम्भ और मेहराब एक दूसरे से जुड़े हुए हैं जो कि किले को शानदार समृद्ध रूप प्रदान करते हैं।

श्रद्धानाथ जी का आश्रम (लक्ष्मणगढ़)

अमृतनाथ जी महाराज की शिष्य परम्परा कें संत श्री श्रद्धानाथजी द्वारा स्थापित यह आश्रम लक्ष्मणगढ़ (सीकर) के रेल्वे स्टेशन के पास स्थित है। इस आश्रम में श्रद्धानाथ जी के साधनामय जीवन की झाँकी श्रद्धालुओं को देखने को मिलती है। यह आश्रम नाथ सम्प्रदाय का एक प्रमुख केन्द्र है।

हजरत कमरूद्दीन शाह की दरगाह

नेहरा पहाड़ की तलहटी में खेतड़ी महल के पश्चिम में स्थित कमरूद्दीन शाह की दरगाह एक खुला व्यवस्थित परिसर है, जिसमें मस्जिद और मदरसा है (यहाँ प्राचीन भित्ति चित्र अभी भी देखे जा सकते हैं), इनके मध्य में सूफी संत कमरूद्दीन शाह की अलंकृत दरगाह है।

नवलगढ़

झुंझनू और सीकर के बीच स्थित, नवलगढ़ अपनी सुन्दर हवेलियों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ कई फिल्मों की शूटिंग भी की गई है, जिसमें कुछ भारतीय तथा कुछ विदेशी फिल्में भी हैं। यहाँ का आकर्षक किला ठाकुर नवल सिंह ने बनवाया था तथा इसके पास स्थित रूप निवास, उद्यान तथा फव्वारों से सुशोभित है।

लक्ष्मणगढ़ किला

लक्ष्मणगढ़ नगर में यह किला गौरवशाली स्थापत्य का नमूना है। पूरे विश्व में यह स्थापत्य कला का अनूठा उदाहरण है जो कि यहाँ बिखरी चट्टानों के टुकड़ों को संजोकर बनाया गया था। इसके शिखर पर चढ़कर नीचे बसे लक्ष्मणगढ़ का विहंगम दृश्य दिखाई देता है।

फतेहपुर

फतेहपुर शहर क़ायमखानी नवाब फतेह मोहम्मद ने 1508 ईस्वी में स्थापित किया था। उन्होंने 1516 ई. में फतेहपुर के किले का निर्माण करवाया। यह शहर एक समय सीकर की राजधानी के रूप में भी जाना गया था। आज फतेहपुर शेखावाटी की लोकप्रिय सांस्कृतिक राजधानी के रूप में जाना जाता हैं। यहाँ अनेक दर्शनीय जगह है, जिनमें से द्वारकाधीश मंदिर, सिंघानिया हवेली, नादिन ल प्रिंस कल्चरल सेंटर और फतेहचंद की हवेली उल्लेखनीय हैं।

जोधपुर

मेहरानगढ़ किला

आज इस किले की तारीफ पूरी दुनियां में की जाती है। इसका संरक्षण, समृद्धि, मजबूती और रख रखाव अतुलनीय है। जोधपुर के क्षितिज पर शोभायमान 125 मीटर ऊँची सीधी पहाड़ी पर अभेद्य मेहरानगढ़ किला है। यह ऐतिहासिक किला भारत में सर्वाधिक लोकप्रिय किलों में से एक हैं। यह इतिहास और किंवदंतियों में सदा जीवित रहा है। मेहरानगढ का किला आज भी जयपुर की सेनाओं द्वारा इसके दूसरे द्वार पर किये गए तोप के हमले की गवाही देता है। किला अपने उत्तम मेहराबदार झरोखों, नक़्क़ाशीदार पट्टिकाओं, सजावटयुक्त द्वारों और मोती महल, फूल महल और शीश महल की चित्रित दीवारों के लिए जाना जाता है।

जसवंत थड़ा

19वीं शताब्दी के अंत में निर्मित श्वेत संगमरमर का आकर्षक स्मारक, जसवंत सिंह द्वितीय को समर्पित है। इसका निर्माण उनके उत्तराधिकारी सरदार सिंह ने करवाया था। इसे 'राजस्थान का ताजमहल' भी कहा जा सकता है।

मण्डोर

इस स्थान का प्राचीन नाम माण्डवपुर था। यह पुराने समय में मारवाड़ राज्य की राजधानी हुआ करता था। एक किंवदंती के अनुसार, रावण का ससुराल यहीं था। यहाँ सदियों से होली के दूसरे दिन रावण का मेला लगता है। मारवाड़ की प्राचीन राजधानी मण्डोर जोधपुर के उत्तर में स्थित है। इस क्षेत्र का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। यहाँ जोधपुर के पूर्व शासकों के स्मारक एवं छतरियां हैं। राजस्थान स्थापत्य कला से बनी परम्परागत छतरियों की अपेक्षा यह हिन्दू मंदिरों की संरचना पर आधारित है।

कायलाना झील

जैसलमेर रोड़ पर कृत्रिम झील कायलाना, एक सुंदर पिकनिक स्थल है। कैनवास के चित्र जैसी दिखती इस झील की रमणीयता अविस्मरणीय है। आर.टी.डी.सी. के माध्यम से झील में विहार हेतु नौकायन सुविधाएं भी उपलब्ध हैं।

माचिया सफारी उद्यान

जैसलमेर मार्ग पर कायलाना झील से लगभग 1 किलोमीटर दूर माचिया सफारी उद्यान स्थित है। यह एक पक्षीविहार है। यहाँ हिरण, रेगिस्तान की लोमड़ियां, विशाल छिपकली, नीलगाय, खरगोश, जंगली बिल्लियां, लंगूर, बंदरों जैसे कई पशु पाये जाते हैं। उद्यान सूर्यास्त के दृश्य के लिए भी सुविख्यात है।

बालसमंद झील

जोधपुर से लगभग 5 किलोमीटर की दूरी पर जोधपुर मंडोर रोड पर बालसमंद झील स्थित है। इसका निर्माण 1159 ईस्वी में मंडोर के एक जलस्रोत हेतु किया गया था। बाद में बालसमंद झील के किनारे पर एक ग्रीष्म महल निर्मित किया गया। यह हरे–भरे बागानों से घिरा हुआ है। पशु और पक्षियों जैसे लोमड़ी और मोर भी यहाँ पाए जाते हैं। यह झील अब पर्यटकों और स्थानीय लोगों का एक लोकप्रिय पिकनिक स्थल है।

करौली

कैला देवी मन्दिर

करौली के बाहरी इलाके में लगभग 25 किमी दूरी पर कैला देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है जो कि त्रिकुट पर्वत की घाटी में कालीसिल नदी के किनारे पर बना हुआ है। यह मन्दिर देवी के नौ शक्ति पीठों में से एक माना जाता है तथा इसकी स्थापना 1100 ईस्वी में की गई थी, ऐसी मान्यता है। कैला देवी मन्दिर में प्रतिवर्ष हिन्दी कैलेण्डर के अनुसार चैत्र माह (मार्च–अप्रैल) में विशाल मेले का आयोजन किया जाता है। यहाँ हनुमान जी का मन्दिर भी है, जिसे यहाँ के लोग 'लांगुरिया' नाम से पुकारते हैं।

श्री महावीर जी मंदिर

उन्नीसवीं सदी में बना, बेजोड़ वास्तुशिल्प की संरचना है, श्री महावीर जी का मंदिर, जो कि एक जैन तीर्थस्थल है। प्रत्येक वर्ष यहाँ चैत्र शुक्ल त्रयोदशी से वैशाख कृष्णा प्रतिपदा तक (मार्च–अप्रैल), एक मेले का आयोजन किया जाता है, जिसमें हजारों जैन श्रद्धालु आते हैं।

मेहंदीपुर बालाजी मंदिर

करौली के एक गांव मेहंदीपुर में बालाजी, यानि हनुमान जी के मंदिर की काफी दूर दूर तक मान्यता है। मान्यता के अुनसार पागल और बीमार लोग यहाँ लाए जाते हैं और बालाजी के आशीर्वाद से अधिकतर ठीक होकर जाते हैं।

कोटा

कोटा बैराज

कोटा बैराज, राजस्थान राज्य में चंबल नदी पर निर्मित सबसे महत्त्वपूर्ण जल संग्रह स्थलों में से एक है। वर्षा ऋतु में इसके बड़े फाटकों के माध्यम से तेज प्रवाह युक्त जलधारा के मनमोहक दृश्य को देखने के लिए पर्यटक लालायित रहते हैं। बैराज के पास भगवान शिव का 'कंसुआ मंदिर' एक दर्शनीय स्थल है, जहाँ एक दुर्लभ चौमुखी शिवलिंग स्थापित है।

मुकुंदरा बाघ अभयारण्य

कोटा से लगभग 50 कि.मी. की दूरी पर रावतभाटा मार्ग पर सेलझर तथा कोलीपुरा गिरधपुरा होते हुये दर्रा गांव तक तथा कोटा से 50 किमी झालावाड़ रोड़ पर दर्रा गांव से कोलीपुरा सेलझर तक इस बाघ अभयारण्य का दृश्यावलोकन किया जा सकता है। यह अभयारण्य सघन वन क्षेत्र है। यहां पैंथर, भालू, हिरण, जंगली सूअर, लोमड़ी, सियार तथा काफी संख्या में देशी एवं प्रवासी पक्षियों को देखा जा सकता है।

जगमंदिर महल

कोटा महाराव दुर्जनशाल सिंह जी की महारानी तथा उदयपुर की राजकुमारी ब्रज कंवर जी ने इस कृत्रिम जलाशय किशोर सागर तथा जगमंदिर का निर्माण 1743–45 ई. के मध्य करवाया गया था। किशोर सागर कोटा शहर के मध्य स्थित है। यहाँ पर पर्यटकों हेतु पावर मोटर बोट, जैट स्की तथा बच्चों

हेतु अन्य जल क्रीड़ाओं में वाटर जोरबिंग बॉल, बनाना बोट आदि की सुविधा उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर सांयकाल लेजर फिल्म एंड साउंड शो का आयोजन किया जाता है। यह स्थान कोटा का प्रमुख पर्यटन स्थल है।

अभेड़ा महल

अभेड़ा महल का निर्माण 18 वीं शताब्दी में कराया गया था। यहाँ महल शाही आरामगाह की दृष्टि से कोटा से 8 किमी की दूरी पर निर्मित करवाया गया था, जिसमें राजकुमारी धीरदेह द्वारा पानी का कृत्रिम जलाशय निर्मित करवाया गया था, जिससे ज्यादा से ज्यादा वन्य जीव व पक्षी इस ओर आकर्षित हो सकें। महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय के शासनकाल में इस जलाशय में मगरमच्छ की विभिन्न प्रजातियों को पाला जाता था तथा अभेड़ा का तालाब इसी के कारण प्रसिद्व था।

नागौर

लाडनूं

लाडनूं में बनी साड़ियाँ, पूरे भारत में कॉटन की साड़ियों में बेहतरीन क़िस्म की मानी जाती हैं तथा इनके चटक रंग और मुलायम कपड़े के लिए पसन्द की जाती हैं। जैन धर्म का एक महत्वपूर्ण केन्द्र और अहिंसा एवं करूणा का आध्यात्मिक केन्द्र माना जाने वाला लाडनूं, 10वीं सदी में बसाया गया था। इसका अपना एक समृद्ध इतिहास है। जैन धर्म, आध्यात्मिकता और शुद्धि का प्रतीक जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय एक प्रसिद्ध शिक्षा का केन्द्र भी है। विश्व विख्यात संत आचार्य श्री तुलसी लाडनूं के ही थे।

बड़े पीर साहब दरगाह

सुप्रसिद्ध पवित्र स्थान होने के कारण, नागौर में बड़े पीर साहब की दरगाह को 17 अप्रैल 2008 को एक संग्रहालय के रूप में भी दर्शनार्थ खोला गया था। दरगाह में सबसे ज्यादा प्रसिद्ध और लोकप्रिय दर्शन योग्य सुशोभित वस्तु, यहाँ पर रखा गया ''कुरान शरीफ'' है, जिसे हजरत सैयद सैफुद्दीन अब्दुल जीलानी द्वारा सुनहरी स्याही में लिखा गया था। इसके साथ ही उनकी छड़ी और पगड़ी भी दर्शनीय है। यहाँ पर दर्शक, पुराने भारतीय सिक्के, जो कि सन् 1805 के हैं, देख सकते हैं तथा इसके साथ ही अब्राहम लिंकन की छवि के साथ अमेरिकन सिक्के भी यहाँ देखे जा सकते हैं।

झोरड़ा – नागौर

नागौर तहसील में स्थित झोरड़ा एक छोटा सा गांव है, प्रसिद्ध सूफी संत 'बाबा हरिराम' की जन्म स्थली होने के कारण काफी प्रसिद्ध है। प्रत्येक वर्ष हिन्दी माह भाद्रपद की चतुर्थी और पंचमी के अवसर पर झोरड़ा में लगभग एक – दो लाख श्रद्धालु आते हैं। यहाँ आने वाले लोगों में दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और यू. पी. सभी जगह के लोग यहाँ गांव में प्रत्येक वर्ष होने वाले बड़े सालाना मेले में आते हैं। इस गांव में बाबा हरिराम मंदिर होने के साथ ही इन संत के जीवन से सम्बन्धित बहुत सारी स्मरणीय तथा दर्शन करने योग्य वस्तुएं रखी हुई हैं।

पाली

रणकपुर जैन मंदिर

प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच, घाटियों से घिरा यह भव्य मंदिर, जैन समुदाय के लिए बड़ा तीर्थस्थल है। हीरे जैसे चमकते और तराशे गए यह मंदिर अलौकिक, अद्भुत और अद्वितीय हैं। एक जैन व्यापारी के पास दिव्य दृष्टि होने की मान्यता के बाद 15वीं शताब्दी में निर्मित, रणकपुर जैन मंदिर आदिनाथ को समर्पित है, राज्य के शासक राणा कुंभा ने इन मंदिरों के निर्माण को प्रोत्साहन दिया। उल्लेखनीय है कि यह अनेक मंदिरों का एक परिसर है न कि मात्र एक मंदिर।

जवाई बांध

लूणी नदी की सहायक नदी (जवाई) पर निर्मित, जवाई बांध का निर्माण जोधपुर के महाराजा उम्मेद सिंह ने करवाया था। यह पश्चिमी राजस्थान का सबसे बड़ा बांध माना जाता है। जोधपुर शहर और आस पड़ौस के गाँवों के लिए पानी का एक प्राथमिक स्रोत होने के अलावा, सर्दियों में जवाई बांध प्रवासी पक्षियों, तेंदुए और मगरमच्छ के लिए स्वर्ग है।

बीकानेर

देशनोक – करणी माता मंदिर

दुनियां भर में चूहों के लिए अपनी पहचान बनाने वाला यह मंदिर, बीकानेर से 30 कि.मी. की दूरी पर, देशनोक गाँव में है। यह पर्यटकों में 'टैम्पल ऑफ़ रैट्स' के नाम से मशहूर है। एक किंवदंती के अनुसार करणी माता के सौतेले बेटे लक्ष्मण की एक तालाब में डूबने से मृत्यु हो गई। करणी माता ने यमराज से उन्हें जीवित करने के लिए प्रार्थना की। यमराज ने मना कर दिया फिर इस शर्त पर मान गए कि उस दिन के बाद से लक्ष्मण तथा करणी माता के सभी वंशज, चूहे के रूप में जिन्दा रहेंगे। हजारों चूहों को पवित्र मानकर, मन्दिर में भक्त लोग लड्डू व दूध की बड़ी परातें चढ़ाते हैं, जिन्हें चूहे खाते व पीते हैं। गर्भगृह में करणी माता की मूर्ति स्थापित है। करणी माता मंदिर का द्वार सफेद संगमरमर से बनी एक सुन्दर संरचना है। दूर–दूर से पर्यटक इस मन्दिर को देखने आते हैं। नए दूल्हा–दुल्हन यहाँ माता का आशीर्वाद लेने आते हैं।

राजस्थान राज्य अभिलेखागार

शिक्षाविद एवम् शोधकर्ताओं का यहाँ जमावड़ा रहता है। यहाँ संरक्षित प्राचीन प्रशासनिक रिकॉर्ड, जो कि मुग़लकाल के समय के भी हैं, जिनमें अरबी, फारसी के फरमान, निशान और हस्तलिखित ग्रन्थ भी शामिल हैं, इस अभिलेखागार में संरक्षित व सुरक्षित रखे हैं। राजस्थान की लगभग सभी रियासतों के शासनकाल के दौरान किए गए कार्यों व जारी किए आदेशों के रिकॉर्ड भी यहाँ मिल सकते हैं। बीकानेर का यह अभिलेखागार अत्यन्त असाधारण तथा महत्त्वपूर्ण है।

जूनागढ़ किला

इस किले को कभी कोई शत्रु नहीं जीत पाया। सन् 1589 में सम्राट अकबर के सबसे ज्यादा प्रतिष्ठित सूबेदार, राजा रायसिंह द्वारा बनाया गया यह किला पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसमें बने लाल बलुआ पत्थर और संगमरमर के शानदार महल, प्रांगण, बालकनियाँ, छतरीनुमा मंडप तथा खिड़कियाँ, अपनी अदभुत कला को दर्शाती हैं।

लालगढ़ पैलेस और म्यूजियम

महाराजा गंगासिंह ने 1902 ई. में, इस भव्य राजमहल का निर्माण, अपने स्वर्गीय पिता महाराजा लाल सिंह की स्मृति में करवाया था। इसके वास्तुशिल्प की रूपरेखा की अवधारणा, एक अंग्रेज वास्तुविद् 'सर स्विंटन जैकब' द्वारा की गई थी। यह महल पूरी तरह से लाल बलुआ पत्थर से निर्मित किया गया है तथा राजपुताना, इस्लामी तथा यूरोपीय वास्तुकला के मिश्रण से इसे मूर्तरूप प्रदान किया गया। वर्तमान में इस पैलेस को हैरिटेज होटल में परिवर्तित कर दिया गया है। कुछ हिस्सा, बीकानेर के राज परिवार के निवास के रूप में है। इसी पैलेस के एक हिस्से में श्री सार्दुल म्युज़ियम है।

कोलायत

हिन्दुओं का महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थान, जहाँ हर साल दूर दूर से श्रद्धालु, मंदिर में दर्शन को आते हैं। कोलायत एक पवित्र झील है, जो बीकानेर से करीब 50 कि.मी. दूरी पर है। यहाँ का इतिहास सांख्य योग

के प्रणेता कपिल मुनि की कहानी सुनाता है, जो इस जगह के शांतिपूर्ण वातावरण से इतने अभिभूत हो गए थे कि उन्होंने अपनी उत्तर पश्चिम की यात्रा को बीच में रोक दिया और संसार के चक्र से मुक्ति पाने के लिए, यहीं तपस्या करने लगे। यहाँ स्थित मंदिर, घाट और पवित्र झील भक्तों को आमंत्रित करते हैं।

कतरियासर

जयपुर रोड पर, इस गाँव का ग्रामीण और सांस्कृतिक जीवन बड़ा समृद्ध है। कतरियासर में बालू रेत के टीले और उन पर ढलती शाम के सूरज की रोशनी देख कर लगता है, पूरी धरती पर सोना बिखरा पड़ा है। यहाँ पर्यटक भारी संख्या में आते हैं तथा रेत के धोरों पर 'जसनाथ जी का अग्निनृत्य' देख कर मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। यहाँ पर रेगिस्तानी लोमड़ी, ख़रगोश, चिंकारा, मोर, तीतर, बटेर और चकोर के झुंड दिखाई देते हैं। बीकानेर से 45 कि.मी. की दूरी पर, कतरियासर एक साफ सुथरा और समृद्ध गाँव है।

राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र

एशिया का अपनी तरह का एकमात्र केन्द्र, जहाँ ऊँटों का रख रखाव, उन पर अनुसंधान और प्रजनन सम्बन्धित कार्य सम्पन्न होते हैं। शहर से 8 कि.मी. दूर यह केन्द्र 2000 एकड़ से अधिक भूमि पर बना है तथा इसका संचालन भारत सरकार द्वारा किया जाता है।

राजसमन्द

कुम्भलगढ़ का किला

मेवाड़ के सशक्त, सबल और प्रसिद्ध योद्धा राणा प्रताप की जन्मस्थली – उदयपुर से उत्तर की तरफ, लगभग 84 कि.मी. दूरी पर जंगलों के बीच मेवाड़ क्षेत्र में चित्तौड़गढ़ के बाद दूसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण किला है कुम्भलगढ़। राणा कुम्भा द्वारा 15वीं शताब्दी में बनवाया गया यह किला अरावली की पहाड़ियों की गोद में बसा है। मेवाड़ को शत्रुओं से बचाने व सुरक्षित रखने में इस क़िले की मुख्य भूमिका रही है। जब बनबीर ने विक्रमादित्य की हत्या कर, चित्तौड़ किले पर कब्जा कर लिया था तो मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह को उनके बाल्यकाल में इसी किले में पनाह मिली थी। महाराणा प्रताप की जन्मस्थली होने के कारण लोगों की भावनाएं इस किले से जुड़ी हैं। कुम्भलगढ़ का किला अति सुन्दर विहंगम दृश्य प्रस्तुत करता है। किले की दीवारें इतनी मजबूत तथा इतनी चौड़ी हैं कि आठ घुड़सवार एक साथ उस पर चल सकते हैं और लगभग 36 कि.मी. के क्षेत्र में फैली हुई हैं। 19वीं शताब्दी में महाराणा फतेह सिंह द्वारा इस क़िले का नवीनीकरण किया गया था।

राजसमन्द झील

विश्व युद्ध के दौरान, राजसमन्द झील को लगभग छः वर्षों तक 'इम्पीरियल एयरवेज़' द्वारा समुद्री विमान आधार के रूप में उपयोग में लिया जाता था। राजसमन्द झील को राजस्थान में सबसे पुराने राहत कार्यों में से एक माना जाता है तथा इस कार्य के लिए उस समय लगभग चालीस लाख रूपए खर्च किए गए थे। इस झील की परिधि 22.5 स्कवेयर कि. मी., गहराई तीस फीट तथा जल ग्रहण क्षेत्र (तालाब) लगभग 524 स्कवेयर कि.मी. के दायरे में है। इतनी लम्बी चौड़ी परिधि में फैली होने के बावजूद भी यह माना जाता है कि यह झील भीषण तथा व्यापक रूप से फैले सूखे के समय में सूख जाया करती है जैसे कि सन् 2000 में सूखा पड़ने के कारण यह एक विशाल घाटी की सूखी सतह और दरारों भरे कीचड़ के समान बन गई थी।

हल्दी घाटी

यह स्थान मेवाड़ के महाराणा प्रताप और अकबर के बीच हुए युद्ध के लिए प्रसिद्ध है तथा उदयपुर से 40 कि.मी. की दूरी पर है। इस घाटी की मिट्टी हल्दी के रंग जैसी पीली है, इसीलिए इसका यह नाम पड़ा।

हल्दीघाटी अरावली की पहाड़ियों में स्थित है। सन् 1576 में हुए युद्ध में महाराणा प्रताप के गौरव और शौर्य को दर्शाने वाली हल्दीघाटी के पास बलीचा में उनके प्रिय घोड़े चेतक की समाधि भी स्थित है।

सवाई माधोपुर

रणथम्भौर किला

यह किला, रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यान क्षेत्र के अन्दर है। क़िले के तीन तरफ पहाड़ों की प्राकृतिक खाई बनी हुई है, जो इसे मजबूत और अजेय बनाती है। ऐसा माना जाता हैं कि इसका निर्माण चौहान राजा 'रणथंबन देव' द्वारा किया गया था। खानवा युद्ध में घायल राणा सांगा को भी इलाज के लिए इसी दुर्ग में लाया गया था। रणथम्भौर का यह उल्लेखनीय क़िला चौहान शासकों द्वारा दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी में बनाया गया था। एक आदर्श सामरिक स्थान होने के कारण यह दुश्मन को खाड़ी में रोके रखने के लिए उपयुक्त था। मुस्लिम आक्रमणकारी अलाउद्दीन खिलजी ने इस किले की घेराबन्दी की थी। तब ये किला राजघराने की महिलाओं के 'जौहर' की ऐतिहासिक घटना का साक्षी बना। किले की विशेषता यहां के मंदिर, जलाशय, विशाल द्वार और सुदृढ़ प्राचीरों में दिखाई पड़ती है।

सिरोही

गुरू शिखर

अरावली की पहाड़ियों का सबसे ऊँचा शिखर गुरू–शिखर की चोटी है। आध्यात्मिक कारणों तथा साथ ही, 1722 मीटर समुद्रतल से ऊपर गुरू शिखर से माउण्ट आबू का विहंगम दृश्य देखने के लिए, प्रकृति की छठा को निहारने के लिए गुरू शिखर की यात्रा अनुपम है। गुरू शिखर पर चढ़ने से पहले, भगवान दत्तात्रेय का मंदिर दिखाई देता है, जिसके लिए माना जाता है कि भगवान, ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने ऋषि आत्रे और उनकी पत्नी अनूसुइया को दत्तात्रेय के रूप में एक पुत्र प्रदान किया था। वैष्णव समुदाय के लिए यह एक तीर्थ स्थल है।

दिलवाड़ा जैन मन्दिर

पूरे विश्व में माउण्ट आबू के जैन मंदिरों की तीर्थ यात्रा महत्वपूर्ण मानी जाती है। बाहर से साधारण सा दिखने वाला यह मंदिर, भीतर पहुँचने पर पर्यटकों को अद्वितीय वास्तुशिल्प और इसमें की गई पत्थरों पर शानदार नक्काशी से अचम्भित कर देता है। इसकी आंतरिक सज्जा में कलाकारों की बेहतरीन कारीगरी दिखाई पड़ती है। इस मंदिर को 12वीं–13वीं शताब्दी में बनाया गया था तथा इसकी छतों, मेहराबों और खम्भों पर की गई कारीगरी को देखकर पर्यटक ठगे से रह जाते है। दिलवाड़ा के मंदिरों की अपरिभाषित सुन्दरता और मंदिर के आस पास का हरियाली से भरपूर शांत वातावरण लाजवाब है।

नक्की झील

माउण्ट आबू के मध्य में स्थित 'नक्की झीक' भारत की पहली मानव निर्मित झील है। लगभग 80 फुट गहरी और 1/4 मील चौड़ी इस झील को देखे बिना, माउण्ट आबू की यात्रा पूरी नहीं मानी जाती। कई किंवदंतियों में से एक किंवदंती यह है कि इस झील को देवताओं ने अपने नाखूनों से खोद कर बनाया था इसी लिए इसका नाम नक्की (नख यानी नाखून) झील पड़ा। इसी नक्की झील के पास सन् 1948 में स्व० महात्मा गांधी की अस्थियों का कुछ अंश भी प्रवाहित किया गया था, जिसके बाद गांधी घाट का निर्माण किया गया। प्रकृति प्रेमियों और फोटोग्राफर्स के लिए झील का साफ सुथरा नीला पानी, हरी भरी वादियां और चारों तरफ की प्राकृतिक छठा, रूमानी, कल्पित तथा अद्भुत अंश, स्वप्निल और तृप्त करने वाले हैं तथा इस आकर्षण भरे स्थल को देखने को बाध्य करते हैं।

टोंक

बीसलपुर (बांध)

राजस्थान राज्य की राजधानी जयपुर के लिए जीवनदायिनी के रूप में पहचान बनाने वाला, बीसलपुर बांध एक गुरूत्व बांध है जो कि बनास नदी पर निर्मित किया गया है। यह राजस्थान के टोंक जिले के देवली कस्बे के पास है। इस बांध का निर्माण सन् 1999 में पूरा किया गया था तथा तभी से यह बांध राज्य के कई क्षेत्रों को पानी सप्लाई करने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्रोत बन गया है।

सुनहरी कोठी

टोंक का मुख्य आकर्षण 19 वीं सदी की सुनहरी कोठी या गोल्डन मैन्शन है, जो नज़र बाग रोड पर बड़ा कुआँ के पास है। इमारत अपने बाहरी स्वरूप से साधारण लगती है, लेकिन इसके आंतरिक भाग की बहुरंगी स्वर्ण रंगों की शाही झलक, इसके नाम से मेल खाती है। शीश महल या सुनहरी कोठी का शीशे से शोभायमान कमरा, मीनाकारी कार्य के सर्वोत्कृष्ट नमूनों के साथ अद्भुत ग्लास और फूलों के अलंकरण की कारीगरी मंत्रमुग्ध करते हैं। 7 मार्च, 1996 को राजस्थान सरकार द्वारा सुनहरी कोठी को एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्मारक घोषित किया गया है।

डिग्गी कल्याण जी मंदिर

5600 वर्षों पूर्व का सबसे पुराना पूजनीय हिंदू मंदिरों में से एक श्री डिग्गी कल्याण जी मंदिर है। भगवान विष्णु के अवतार श्री कल्याण जी को माना जाता हैं। पूरे देश से लोग यहाँ अपने दुखों से मुक्ति और देवता के आशीर्वाद के लिए आते हैं। प्राचीन काल की शिल्प–कौशल की गवाही देता यह मंदिर, टोंक से लगभग 60 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। मंदिर का भव्य शिखर 16 स्तम्भों पर आधारित है।

श्री गंगानगर (राजस्थान का अन्न भंडार)

बुड्ढ़ा जोहड़ गुरूद्वारा

इस गुरूद्वारे का निर्माण 1954 ई. में बाबा फतेह सिंह की देखरेख में हुआ था। यहाँ हर माह की अमावस्या को मेला लगता है। कहा जाता है कि जत्थेदार बुड्ढासिंह की प्रेरणा से अधर्मी मस्सारंग का सिर काटकर इस गुरूद्वारे में लाया गया था, इसी कारण इस गुरूद्वारे को बुड्ढा जोहड़ा कहते हैं।

हिंदुमलकोट सीमा

गंगानगर में स्थित हिंदुमलकोट सीमा भारत और पाकिस्तान को अलग करती है। बीकानेर के दीवान हिन्दुमल के सम्मान में नामित और सीमा के पास स्थित यह पर्यटक आकर्षणों में से एक है। सीमा श्री गंगानगर से 25 किमी दूर स्थित है और यह प्रतिदिन प्रातः 10.00 से शाम 5.30 के बीच पर्यटकों के लिए खुली रहती है।

उदयपुर (झीलों की नगरी)

पिछोला झील

पिछोला झील का सौन्दर्य ढलती शाम के समय, सूर्य की लालिमा में सोने की तरह दमकता है। पिछोली गाँव के कारण झील को 'पिछोला' नाम दिया गया है। जगनिवास और जगमंदिर द्वीप इस झील में स्थित है। झील के पूर्वी किनारे पर सिटी पैलेस है। सूर्यास्त होने पर झील में नाव की सवारी, झील और सिटी पैलेस का मनमोहक दृश्य पर्यटकों को आकर्षित करता है।

फतेह सागर झील

पिछोला के उत्तर में, पहाड़ों और वन संपदा के किनारे स्थित यह रमणीय झील, एक नहर द्वारा

पिछोला झील से जुड़ी एक कृत्रिम झील है। झील के मध्य सुंदर नेहरू गार्डन के साथ–साथ एक द्वीप पर उदयपुर की सौर वेधशाला भी है। इसे पहले 'कनॉट बान्ध' कहा जाता था क्योंकि इसका उद्घाटन ड्यूक ऑफ कनॉट के द्वारा किया गया था।

सहेलियों की बाड़ी

सहेलियों की बाड़ी उदयपुर का एक लोकप्रिय पर्यटन स्थल है, जो महाराणा संग्राम सिंह द्वितीय द्वारा महिलाओं के लिए एक बगीचे के रूप में निर्मित किया गया था। एक छोटे से संग्रहालय के साथ इसमें संगमरमर के हाथी, फव्वारे, मण्डप और कमल कुण्ड जैसे कई आकर्षण हैं।

भारतीय लोक कला मंडल

भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर का एक सांस्कृतिक संस्थान है जो राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश की संस्कृति, त्यौहारों, लोक कला और लोकगीत के लिए समर्पित है। लोक संस्कृति के प्रचार के अलावा, यह एक संग्रहालय भी है जो राजस्थानी संस्कृति के विभिन्न स्वरूपों पर लोक कलाकृतियों का प्रदर्शन करता है।

नागदा

छठी शताब्दी के अंश को समाहित किए, नागदा उदयपुर से 22 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। अरावली की पहाड़ियों की गोद में बसा नागदा, जटिल नक्काशीदार ''सहस्रबाहु मंदिर'' के लिए प्रसिद्ध है जो कि आम लोगों में 'सास बहू मंदिर' के नाम से पहचाना जाता है। नवीं–दसवीं शताब्दी में निर्मित किए गए इस मंदिर का वास्तुशिल्प अतुलनीय है तथा इसका तोरणद्वार अद्भुत बनाया गया है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. मेयो कॉलेज की स्थापना किस वर्ष हुई थी?
   (अ) 1874 ई. (ब) 1875 ई.
   (स) 1876 ई. (द) 1877 ई.
2. केवलादेव घना पक्षी राष्ट्रीय उद्यान किस जिले में स्थित है?
   (अ) भरतपुर (ब) धौलपुर
   (स) बूंदी (द) सवाई माधोपुर
3. किस गढ़ के लिए जेम्स टॉड ने कहा था, ''यदि उन्हें राजस्थान में एक जागीर की पेशकश की जाए, तो वह इस गढ़ को चुनेंगे''?
   (अ) भैंसरोड़गढ़ (ब) चित्तौड़गढ़
   (स) नाहरगढ़ (द) तारागढ़
4. हवामहल का निर्माण किसने करवाया था?
   (अ) प्रतापसिंह (ब) जयसिंह
   (स) मानसिंह (द) ईश्वरी सिंह
5. श्रद्धानाथजी का आश्रम कहाँ स्थित है?
   (अ) सीकर (ब) नागौर
   (स) चूरू (द) अलवर

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. मानगढ़ धाम का राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम में क्या महत्व है?

2. जैसलमेर के चार महत्वपूर्ण पर्यटक स्थलों के नाम लिखिये।
3. राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र कहाँ स्थित है?
4. ताल छापर अभयारण्य के प्रमुख आकर्षण क्या हैं?
5. बारां में स्थित सीताबाड़ी का महत्त्व बताइये।
6. भवानी नाट्यशाला का निर्माण कब व कहाँ हुआ?
7. सुमेलित कीजियेः

	पर्यटन स्थल	स्थान
1.	नागदा	बीकानेर
2.	कतारियासर	झुंझुनूं
3.	खेतड़ी महल	जालोर
4.	सुंधामाता	उदयपुर

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. गुरूद्वारा बुड्ढ़ा जोहड़ के नामकरण के पीछे की घटना का वर्णन करे।
2. सोनीजी की नसियां के स्थापत्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
3. लक्ष्मणगढ़ के किले का पर्यटक के नजरिये से वर्णन कीजिए।
4. फतेहपुर शहर पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
5. राजस्थान राज्य अभिलेखागार शोधकर्त्ताओं के लिए किस प्रकार उपयोगी है? स्पष्ट कीजिये।
6. झोरड़ा (नागौर) का धार्मिक महत्त्व लिखिये।
7. मंडावा भारतीय फिल्मी जगत् को क्यों लुभा रहा है? कारण लिखिये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. शेखावाटी क्षेत्र के प्रमुख पर्यटन स्थलों का विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. राजस्थान के पाँच धार्मिक पर्यटन स्थलों पर एक लेख लिखिये।
3. जयपुर शहर के उन आकर्षणों का वर्णन कीजिये, जो इसे विदेशी पर्यटकों का सबसे प्रिय शहर बना देते है।

कल्पना करें :

1. आप भरतपुर के निवासी है, अपने मेहमानों को आप, अपने राज्यों के किन–किन स्थलों की सैर करवायेंगे?

अध्याय

11

राजस्थान के प्रमुख व्यक्तित्व

संसार में प्रत्येक कालखंड में ऐसे व्यक्तियों ने जन्म लिया है, जिन्होंने अपने कार्यों से समाज को एक नई राह दिखाई है। पीछे के पृष्ठों में हम ऐसे बहुत से व्यक्तियों के बारे में पढ़ चुके हैं, यहां पर हम कुछ और व्यक्तित्वों के बारे में अध्ययन करेंगे–

निहालचंद

किशनगढ़ चित्रकला शैली को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने का श्रेय निहालचंद को ही है। यह किशनगढ़ के शासक सावंतसिंह के दरबार में था। इसने सावंतसिंह एवं उसकी प्रेयसी बनी–ठनी को राधाकृष्ण के रूप में चित्रित किया। बनी–ठनी का चित्र भारतीय 'मोनालिसा' कहा जाता है।

पन्नाधाय

हीरा पन्ना मोकला, खोद्या खान पहाड़।
असली पन्ना तो जणै, माटी धर मेवाड़।।

स्वामीभक्ति, त्याग व बलिदान की मिसाल पन्ना धाय का जन्म चित्तौड़ के निकट पांडोली गांव में हांकला गुर्जर के घर में हुआ। पन्ना का विवाह महाराणा सांगा (1509–28 ई.) की सेना में नियुक्त सूरजमल के साथ हुआ। पन्ना के पुत्र चंदन के जन्म के कुछ दिनों बाद ही मेवाड़ की महारानी कर्णावती ने राजकुमार उदयसिंह को जन्म दिया। तत्कालीन परम्पराओं के अनुसार पन्ना को राजकुमार उदयसिंह की धाय नियुक्त किया गया। मेवाड़ के एक सामन्त बनवीर ने 1535 ई. में महाराणा विक्रमादित्य की हत्या कर युवराज उदयसिंह की हत्या का भी प्रयास किया। पन्नाधाय ने अपने पुत्र चंदन को उदयसिंह की जगह लिटाकर बनवीर की तलवार का शिकार होने दिया और उदयसिंह को किले से बाहर भेजकर उसकी प्राण रक्षा की। मेवाड़ के इतिहास में पन्नाधाय का त्याग एक अविस्मरणीय घटना है।

गोरां धाय

मेवाड़ के इतिहास में जो महत्व पन्ना धाय को प्राप्त है, वही महत्व मारवाड़ में गोरां धाय को प्राप्त है। वीरांगना गोरां धाय का जन्म 4 जून, 1646 को एक माली परिवार में रतनोजी टाक व माता रूपा के घर जोधपुर में हुआ। इनका विवाह मण्डोर के मनोहर गोपी भलावत के साथ हुआ था। 1678 में जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह की जमरूद में मृत्यु हो जाने के बाद उनके सरदारों ने महाराजा के परिवार को सुरक्षित रूप से जोधपुर ले जाना चाहा। मार्ग में महाराजा जसवंतसिंह की रानी ने राजकुमार अजीतसिंह को जन्म दिया। यह खबर मिलने पर औरंगजेब ने जसवंतसिंह के परिवार को दिल्ली बुला लिया। औरंगजेब के इरादे ठीक न जानकर वीर दुर्गादास ने महाराजा के उत्तराधिकारी राजकुमार अजीतसिंह को बचाने की युक्ति सोची। वीर दुर्गादास एवं मारवाड़ के अन्य वफादार सरदारों ने गोरां धाय को एक साधारण सफाईकर्मी का स्वांग रचाकर राजकुमार को शाही पहरे से निकालने की योजना बनाई। वह अपने पुत्र को अजीतसिंह के स्थान पर रखकर राजकुमार को टोकरे में सुरक्षित बाहर ले आई। राजकुमार को गोरां धाय ने मुकनदास खींची, जो कि सपेरे के भेष में था, को सुपुर्द कर दिया। इस प्रकार गोरां धाय

ने जोधपुर राज्य के उत्तराधिकारी की जान बचाई। धन्य है, गोरां धाय।

गोरां धाय के अपूर्व त्याग को जोधपुर राज्य के राष्ट्रीय गीत धूसां में गाया जाता है। उसकी स्मृति में जोधपुर में छः खम्भों से युक्त छतरी का निर्माण 1711 ई. में करवाया गया। जोधपुर में गोरां धाय नाम से बावड़ी भी है।

गवरी बाई

डूंगरपुर के नागर ब्राह्मण परिवार में जन्मी कृष्ण भक्त कवयित्री गवरी बाई को 'वागड़ की मीरा' भी कहा जाता है। डूंगरपुर महारावल शिवसिंह ने गवरीबाई के लिए 1829 में बालमुकुन्द मंदिर का निर्माण करवाया।

दुर्गादास राठौड़

स्वामीभक्त वीर शिरोमणि दुर्गादास महाराजा जसवंत सिंह के मंत्री आसकरण के पुत्र थे। इनका जन्म 13 अगस्त, 1638 को मारवाड़ के सालवा गाँव में हुआ। ये जसवंतसिंह की सेना में रहे। महाराजा की मृत्यु के बाद उनकी रानियों तथा खालसा हुए जोधपुर के उत्तराधिकारी अजीतसिंह की रक्षा के लिए मुगल सम्राट औरंगजेब से उसकी मृत्यु–पर्यन्त (1707 ई.) राठौड़–सिसोदिया संघ का निर्माण कर संघर्ष किया। शहजादा अकबर को औरंगजेब के विरुद्ध सहायता दी तथा उसके पुत्र–पुत्री (बुलन्द अख्तर व सफीयतुनिस्सा) को इस्लोमोचित शिक्षा देकर मित्र धर्म निभाया एवं सहिष्णुता का परिचय दिया। अंत में महाराजा अजीतसिंह से अनबन होने पर सकुटुम्ब मेवाड़ चले आये और अपने स्वावलम्बी होने का परिचय दिया। दुर्गादास की मृत्यु उज्जैन में 22 नवम्बर, 1718 में हुई। उनकी वीरता एवं साहस के गुणगान में मारवाड़ में यह उक्ति प्रचलित है 'मायड़ ऐसा पूत जण जैसा दुर्गादास'।

दुर्गादास राठौड़

दुरसा आढ़ा

अकबर के समकालीन दुरसा आढ़ा ने महाराणा प्रताप एवं राव चन्द्रसेन के देश–प्रेम की भावना का यशोगान किया है। विरुद्ध छहत्तरी (सर्वाधिक प्रसिद्ध), किरतार बावनी, वीरम देव सोलंकी रा दूहा आदि इनकी रचनाएँ हैं।

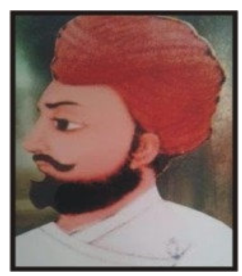

दुरसा आढ़ा

दयालदास

बीकानेर रै राठौडां री ख्यात के रचनाकार दयालदास का जन्म 1798 ई. में बीकानेर के कुड़ीया नामक गाँव में हुआ। दयालदास री ख्यात की हस्तलिखित प्रति में राठौड़ों की उत्पत्ति से लेकर महाराजा सरदारसिंह के राज्यारोहण (1851 ई.) तक का इतिहास लिखा गया है। यह ख्यात बीकानेर राजवंश का विस्तृत विवरण जानने, मुगल–मराठों के राठौड़ों से सम्बन्ध जानने, फरमान, निशान आदि के राजस्थानी में अनुवाद तथा बीकानेर की प्रशासनिक व्यवस्था को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है।

कविराज श्यामलदास

कविराज श्यामलदास

मेवाड़ के महाराणा शम्भूसिंह एवं उनके पुत्र महाराणा सज्जन सिंह के दरबारी कवि कविराज श्यामलदास का जन्म 1836 ई. में धोंकलिया (भीलवाड़ा) में हुआ। मेवाड़ महाराणा शम्भूसिंह के आदेश पर इन्होंने मेवाड़ राज्य का इतिहास लिखना शुरू किया, जो वीर विनोद नामक ग्रन्थ में संकलित है। ब्रिटिश–भारत सरकार ने इनको केसर–ए–हिंद की उपाधि से तथा महाराणा मेवाड़ ने इनको कविराजा की उपाधि से विभूषित किया।

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

राजस्थान के इतिहासकार एवं पुरातत्ववेत्ता गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का जन्म 1863 ई. में रोहिड़ा (सिरोही) में हुआ था। प्राचीन लिपि का अच्छा ज्ञान होने के कारण इन्होंने भारतीय प्राचीन लिपिमाला नामक ग्रंथ की रचना की। अंग्रेजों ने इन्हें महामहोपाध्याय एवं रायबहादुर की उपाधि प्रदान की। इन्होंने राजस्थान की कई रियासतों का इतिहास लिखकर उसे समृद्ध बनाया।

बावजी चतुरसिंह

मेवाड़ राजघराने से संबंधित लोक संत चतुरसिंह का जन्म 1879 में मेवाड़ के करजाली गांव में हुआ। विवाह के कुछ समय बाद ही विधुर हो जाने पर इन्होंने स्वयं को धार्मिक कार्यों एवं समाज सेवा में लगा दिया। उदयपुर के पास सुखेर गांव में एक झौपड़ी में योगाभ्यास, चिंतन एवं जनोपयोगी साहित्य की रचना करते हुए जीवन व्यतीत किया। वे संस्कृत एवं राजस्थानी भाषा के अच्छे जानकार थे। भगवद्गीता की गंगाजली टीका, परमार्थ विचार, योगसूत्र की टीका, सांख्य तत्व की समाज टीका, मानव मित्र रा चरित्र, शेष चरित्र, अलख पचीसी, अनुभव प्रकाश, चतुर प्रकाश, चतुर चिंतामणि, समाज बत्तीसी आदि उनकी प्रमुख कृतियां हैं। अपनी रचनाओं के माध्यम से जनजागरण का प्रयास करते हुए 1929 में चतुरसिंह की मृत्यु हो गई। चतुरसिंह ने अच्छे और बुरे लोगों के सम्बन्ध में अपने प्रतीकों के माध्यम से समझाते हुए लिखा –

कारड़ तो कहतो फिरै, हर कीनी हकनाक।
जणरी व्है उणने कहै, हियो लिफाफो राख।।

बीरबल सिंह

गंगानगर जिले के रायसिंहनगर में जन्मे बीरबल सिंह बीकानेर प्रजा–परिषद् के सदस्य थे। वे सामंती अत्याचारों का विरोध करने एवं नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के हर आन्दोलन में अगवा रहते थे। प्रजा परिषद् ने 30 जून, 1946 को रायसिंह नगर में एक कार्यकर्ता सम्मेलन कर भावी रणनीति पर विचार किया। 1 जुलाई, 1946 के दिन झण्डा अभिवादन के तहत् कार्यकर्ता हाथों में तिरंगे झण्डे लिए सम्मेलन स्थल पर पहुँचे। इसी बीच रेलवे स्टेशन पर कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी और उन पर जुल्म की सूचना पाकर बीरबल सिंह के नेतृत्व में कार्यकर्ता हाथ में तिरंगा लिए स्टेशन की ओर बढ़ने लगे, जिससे घबरा कर सरकारी अधिकारी ने गोली चलवा दी। इन्हीं में से एक गोली का शिकार बीरबल सिंह बना, लेकिन उसने तिरंगे को गिरने नहीं दिया। घायलावस्था में भी बीरबल सिंह के बोल फूट रहे थे 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा–झण्डा ऊँचा रहे हमारा।'

विजयदान देथा

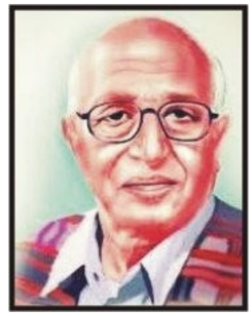
विजयदान देथा

1 सितम्बर, 1926 को बोरूंदा (जोधपुर) में जन्मे विजयदान देथा की प्रसिद्ध कृतियाँ बातां री फुलवारी (लोक कथा संग्रह), बापू के तीन हत्यारे (आलोचना, 1948), चौधरायन की चतुराई (लघु कहानी संग्रह, 1996), दुविधा और अलेखू हिटलर आदि हैं। ये रूपायन संस्थान बोरूंदा के सह–संस्थापक भी हैं। 'बिज्जी' उपनाम से प्रसिद्ध देथा को 1974 ई. में केन्द्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1992 ई. में भारतीय भाषा परिषद् पुरस्कार, 2002 ई. में बिहारी पुरस्कार, 2006 ई. में साहित्य चूड़ामणि पुरस्कार, 2007 ई. में पद्मश्री एवं 2012 ई. में राजस्थान रत्न से सम्मानित किया गया। उनकी एक लोककथा पर मणि कौल ने पहले दुविधा फिल्म बनाई, फिर इसी कथा पर अमोल पालेकर ने पहेली नामक फिल्म बनाई।

कन्हैयालाल सेठिया

लोकप्रिय गीत 'धरती धोरां री' और अमर लोकप्रिय गीत 'पाथल और पीथल' के यशस्वी रचयिता साहित्यकार कन्हैयालाल सेठिया का जन्म 11 सितम्बर, 1919 को राजस्थान के सुजानगढ़ (चुरू) में हुआ। सुजानगढ़ व कलकत्ता में शिक्षा प्राप्त करने के बाद 1934 में वह गांधीजी के सम्पर्क में आए और खादी प्रचार एवं दलितोद्धार के कार्य में लग गए। 1941 में उनका पहला काव्य संग्रह 'वनफूल' प्रकाशित हुआ। देशप्रेम और राष्ट्रीयता से ओतप्रोत काव्य संग्रह 'अग्निवीणा' (1942) के कारण इन पर राजद्रोह का आरोप लगा। वे भारत छोड़ो आन्दोलन में भी सक्रिय रहे तथा 1945 में बीकानेर प्रजा परिषद के प्रमुख कार्यकर्त्ता के रूप में सेठिया ने सामंतवाद का विरोध करते हुए 'कुण जमीन रो धनी' कविता के माध्यम से कृषक समुदाय को जागृत किया। राजस्थान निर्माण के दौरान आबू को राजस्थान में सम्मिलित करवाने के लिए उन्होंने संघर्ष किया। हल्दीघाटी चतुःशताब्दी समारोह (1976), चित्रकुट मेला (1976), पश्चिमी सांस्कृतिक परिषद् (उदयपुर) आदि में सक्रिय भागीदारी निभाकर उन्होंने राजस्थान की विरासत के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

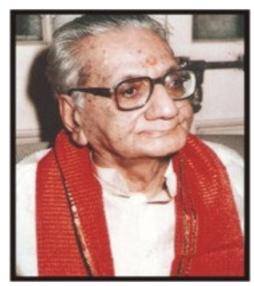
कन्हैयालाल सेठिया

सेठिया को अपनी साहित्यिक रचनाओं के लिए अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। 1976 में इन्हें अपनी कृति 'लीलटांस' के लिए केन्द्रीय साहित्य अकादमी नई दिल्ली द्वारा पुरस्कृत किया गया। 1988 में उन्हें 'निर्ग्रन्थ' के लिए मूर्तिदेवी पुरस्कार, 1987 में 'सबद' के लिए सूर्यमल्ल मीसण पुरस्कार तथा 'सतवादी' के लिए टांटिया पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 2004 में उन्हें 'पद्मश्री' एवं 2012 में 'राजस्थान रत्न' सम्मान से नवाजा गया। सेठिया ने राजस्थानी भाषा को संवैधानिक मान्यता दिलाने की दिशा में भी अथक प्रयास किया। 1 नवम्बर 2008 को कलकत्ता में कन्हैयालाल सेठिया का निधन हो गया।

अल्लाह जिलाई बाई

अल्लाह जिलाई बाई

'केसरिया बालम आओ नी पधारो म्हारै देस........' गीत प्रख्यात मांड गायिका अल्लाह जिलाई बाई के कंठों से निकलकर अमर हो गया। इनका जन्म 1 फरवरी, 1902 को बीकानेर में हुआ। मांड गायिकी में विशिष्ट योगदान के लिए सन् 1982 में इन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया। बाईजी को सन् 1983 में रॉयल अल्बर्ट हॉल में बी.बी.सी. लंदन द्वारा कोर्ट सिंगर का अवार्ड दिया गया।

गवरी देवी

मांड गायन शैली को देश–विदेश में ख्याति दिलाने वाली लोक गायिका गवरी देवी का जन्म 1920 ई. में जोधपुर में हुआ। संगीत इन्हें विरासत में मिला। इनके माता–पिता दोनों बीकानेर दरबार की संगीत प्रतिभाएँ थी। मास्को में आयोजित 'भारत महोत्सव' में गवरी देवी ने मांड गायकी से श्रोताओं को सम्मोहित कर प्रदेश का नाम रोशन किया।

कम्पनी हवलदार मेजर पीरू सिंह

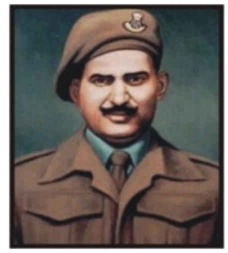

पीरू सिंह

20 मई, 1918 में रामपुरा बेरी (झुंझुनूं) में जन्मे मेजर पीरू सिंह 1936 ई. में 6 बटालियन राजपूताना राइफल्स में भर्ती हुए। 18 जुलाई, 1948 को 6 राजपूताना राइफल्स के सी.एच.एम.पीरू सिंह को जम्मू कश्मीर के तिथवाल में शत्रुओं द्वारा अधिकृत एक पहाड़ी पर आक्रमण कर उस पर कब्जा करने का काम सौंपा गया। अपनी अंतिम सांस लेने से पहले उन्होंने दुश्मन के ठिकानों को नष्ट कर दिया। इन्हें मरणोपरान्त परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया। परमवीर चक्र से सम्मानित होने वाले ये पहले राजस्थानी थे।

मेजर शैतानसिंह

'बाणासुर के शहीद' के नाम से प्रख्यात मेजर शैतानसिंह का जन्म 1 सितम्बर, 1924 को जोधपुर जिले की फलौदी तहसील के बाणासुर गाँव में हुआ। शैतानसिंह भारतीय सेना में भर्ती हो गए।

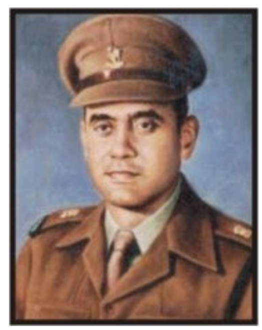

मेजर शैतानसिंह

17 नवम्बर, 1962 को जब चीन ने लद्दाख क्षेत्र की चुशूल चौकी पर आक्रमण किया, उस समय इस चौकी की रक्षा की जिम्मेदारी मेजर शैतानसिंह की 'चारली कम्पनी' पर थी। अपने 120 साथियों के साथ उन्होंने चीनी सेना को दो बार पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। जब उनके पास केवल दो सैनिक शेष रह गए और वे स्वयं भी बुरी तरह घायल हो गए तो उन्होंने दोनों सैनिकों को पीछे चौकी पर सूचना देने के लिए भेज दिया और स्वयं अकेले ही गोलीबारी करते रहे। अड़तीस वर्ष की आयु में 18 नवम्बर, 1962 को मातृभूमि के इस लाडले ने शत्रु से लड़ते हुए अपने प्राणों की कुर्बानी दे दी। मेजर शैतानसिंह को मरणोपरान्त परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया।

स्वामी केशवानन्द

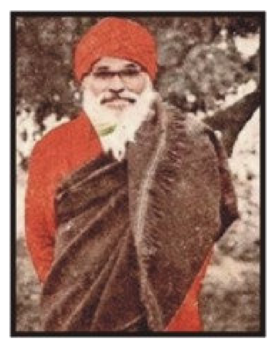

स्वामी केशवानन्द

शिक्षा संत के रूप में प्रसिद्ध स्वामी केशवानन्द का जन्म सीकर जिले के मंगलूणा गाँव में 1883 ई. में चौधरी ठाकरसी के घर हुआ। इनके बचपन का नाम 'बीरमा' था। गाँधीजी से प्रभावित होकर इन्होंने 1921 ई. से 1931 ई. तक स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लिया और जेल यात्रा की। केशवानन्द ने 1932 ई. में संगरिया में जाट विद्यालय का संचालन सम्भाला और उसे मिडिल स्तर से महाविद्यालय स्तर तक पहुँचाया, जिसमें कला, कृषि, विज्ञान महाविद्यालय के अतिरिक्त शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, संग्रहालय एवं ग्रामोत्थान विद्यापीठ बनाया। इन्होंने 1944 से 1956 ई. तक बीकानेर के रेगिस्तानी गाँवों में लगभग 300 पाठशालाएँ खुलवाई तथा अनेक स्थानों पर चलते–फिरते वाचनालय एवं पुस्तकालय स्थापित किये।

पं. झाबरमल शर्मा

'पत्रकारिता के भीष्मपितामह' पं. झाबरमल शर्मा का जन्म जसरापुर में 1880 ई. में हुआ। 1905 ई. में पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र ने झाबरमल को हिन्दी पत्रकारिता और सम्पादन की शिक्षा दी। इन्होंने अनेक पुस्तकों का सम्पादन किया, जिनमें – सीकर का इतिहास, खेतड़ी का इतिहास, खेतड़ी नरेश और विवेकानन्द, आदर्श नरेश, श्री अरविन्द चरित, हिन्दी गीता रहस्य सार, आत्म विज्ञान शिक्षा, तिलक गाथा, भारतीय गोधन आदि प्रमुख हैं।

आचार्य तुलसी

'अणुव्रत आन्दोलन' के सूत्रधार आचार्य तुलसी का जन्म 20 अक्टूबर, 1914 को नागौर जिले के लाडनूं कस्बे में हुआ। बाईस वर्ष की आयु में वे तेरापंथ संघ के नवें आचार्य बनाए गए। नैतिकता के उत्थान के लिए उन्होंने 1949 ई. में अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात किया और इससे जनमानस को जोड़ने हेतु एक लाख किलोमीटर की पदयात्राएँ की। आचार्य तुलसी का संदेश है – ''इन्सान पहले इन्सान, फिर हिन्दू या मुसलमान''।

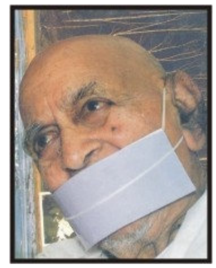

आचार्य तुलसी

आचार्य नानेश मुनि (1920–1999 ई.)

मेवाड़ के दातां गांव में आपका जन्म मोडीलाल–सिणगार बाई के घर हुआ। आपके बचपन का नाम गोवर्धन (नाना) था। बचपन से ही वैराग्य भावना से ओत–प्रोत रहे। योग्य गुरू की तलाश में कोटा में गणेशलाल जी महाराज के पास पहुंचे और उन्हें अपना गुरू बना लिया। दांता के पास ही कपासन ग्राम में वि. सं. 1996 पौष शुक्ला अष्टमी को आपने दीक्षा प्राप्त की। 1952 में आपको गुरू द्वारा आचार्य पद प्रदान किया गया।

आचार्य नानेश मुनि ने व्यक्ति से लेकर विश्व तक को अशांत वातावरण से शांत वातावरण प्राप्त करने हेतु समता दर्शन का संदेश दिया। उन्होंने कहा कि जीवन में हर परिस्थिति में समता धारण करना ही धर्म है। आपने ध्यान साधना की पद्धति विकसित की ताकि व्यक्ति तनाव मुक्त जीवन जी सके। आपके नेतृत्व में 59 संतों और 310 यतियों को जैन भागवती की दीक्षा मिली। आपने मालवा प्रांत की बलाई जाति के लोगों को मांसाहार जैसे बुरे व्यसनों से मुक्त कराकर अहिंसा और सत्य के मार्ग पर प्रवृत्त किया। आपने 'समता दर्शन और व्यवहार' नामक पुस्तक की रचना की जिसमें समरसता की विशद् विवेचना की गई है। सामाजिक चेतना के लिए आप जीवन पर्यन्त प्रयासरत रहे।

कोमल कोठारी

कोमल कोठारी का जन्म 4 मार्च, 1929 को चित्तौड़गढ़ जिले के कपासन कस्बे में हुआ। इन्होंने लोक संस्कृति के उन्नयन में अपना संपूर्ण जीवन लगा दिया। इन्होंने 1960 ई. में जोधपुर जिले के बोरून्दा कस्बे में 'रूपायन' नामक संस्थान की स्थापना की।

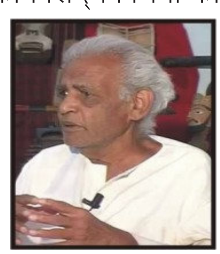

कोमल कोठारी

कृपालसिंह शेखावत

'शिल्पगुरु' कृपालसिंह शेखावत का जन्म सीकर जिले के मऊ ग्राम में 1922 ई. में हुआ। इन्होंने ब्लू पॉटरी पर चित्रांकनों के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय पहचान बनाई। 1974 ई. में इन्हें 'पद्मश्री' से भी सम्मानित किया गया।

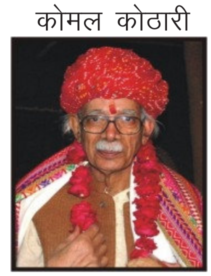

कृपालसिंह शेखावत

जगजीत सिंह

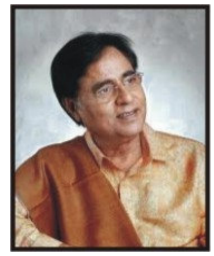
जगजीत सिंह

8 फरवरी, 1941 को श्रीगंगानगर कस्बे के एक सिक्ख परिवार में जन्मे गजल गायक जगजीत सिंह का 10 अक्टूबर 2011 को निधन हो गया। इन्हें मरणोपरान्त राजस्थान सरकार ने 31 मार्च, 2012 को 'राजस्थान रत्न' पुरस्कार से नवाजने की घोषणा की।

पं. विश्वमोहन भट्ट

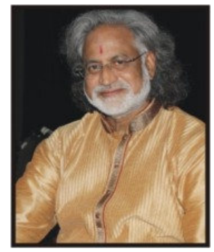
पं. विश्वमोहन भट्ट

12 जुलाई, 1950 को जयपुर में पं. विश्वमोहन भट्ट का जन्म हुआ। 1965 ई. से इन्होंने देश–विदेश में संगीत प्रस्तुतियाँ देनी शुरू की। 1994 ई. में इन्हें विख्यात ग्रेमी पुरस्कार मिला। भट्‌ट ने गिटार में सितार, सरोद और वीणा के 14 अतिरिक्त तारों के सटीक और अद्‌भुत मुहावरों का समन्वय करके मोहनवीणा का आविष्कार किया।

कर्पूरचन्द कुलिश

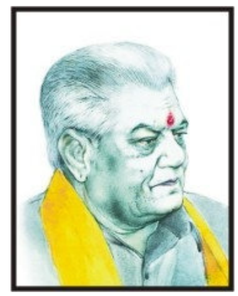
कर्पूरचन्द कुलिश

20 मार्च, 1926 को टोंक जिले के सोडा गाँव में कर्पूरचन्द कुलिश का जन्म हुआ। 1951 में कुलिश ने पत्रकार जीवन की शुरुआत की और 7 मार्च, 1956 को सांध्यकालीन दैनिक के रूप में राजस्थान पत्रिका की शुरुआत की। आपातकाल (1975 ई.) के समय इन्होंने राजस्थान के गाँवों की यात्रा की और ग्रामीण जनजीवन व सामाजिक व्यवस्था पर 'मैं देखता चला गया' शृंखला लिखी जो राजस्थान के ग्रामीण परिवेश का प्रामाणिक दस्तावेज मानी जाती है। कुलिश ने पोलमपोल नाम से ढूंढाड़ी में नियमित कॉलम लिखा जो उनकी साहित्यिक वसीयत मानी जाती है।

डॉ. पी. के. सेठी

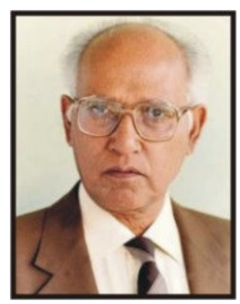
डॉ. पी. के. सेठी

जयपुर फुट के जनक डॉ पी. के. सेठी ने सवाई मानसिंह चिकित्सालय में कार्यरत रामचन्द्र के सहयोग से 1969 ई. में दिव्यांगों के लिए नकली पैर (जयपुर फुट) विकसित किया। इस कार्य के लिए इन्हें रैमन मैग्सेसे अवार्ड, डॉ. वी. सी. राय सम्मान, पद्‌मश्री सम्मान तथा रोटरी इंटरनेशनल अवार्ड फॉर वर्ल्ड अण्डर स्टेण्डिग एण्ड पीस पुरस्कार प्राप्त हुए।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. स्वामी केशवानन्द का जन्म किस जिले में हुआ?
   (अ) सीकर (ब) चूरू
   (स) नागौर (द) जयपुर
2. जयपुर फुट के जनक कौन थे?
   (अ) डॉ. पी.के. सेठी (ब) डॉ. पी.के. अग्रवाल
   (स) डॉ. अशोक (द) डॉ. वी.सी. राय
3. ''इंसान पहले इंसान, फिर हिंदू या मुसलमान'' यह संदेश किसका है?
   (अ) आचार्य तुलसी (ब) कविराज श्यामलदास
   (स) कोमल कोठारी (द) कन्हैयालाल सेठिया
4. 'वागड़ की मीरा' किसे कहा जाता है?
   (अ) गवरी बाई (ब) पन्ना धाय
   (स) राना बाई (द) कर्मावती
5. परमवीर चक्र से सम्मानित होने वाले प्रथम राजस्थानी हैं–
   (अ) पीरू सिंह (ब) शैतान सिंह
   (स) वीरेन्द्र सिंह (द) वेद प्रकाश

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. दुर्गादास राठौड़ का जन्म कब व कहाँ हुआ था?
2. मेजर शैतान सिंह भारतीय सेना की किस कम्पनी का नेतृत्व कर रहे थे?
3. कर्पूरचंद कुलिश किस समाचार–पत्र के संस्थापक थे?
4. 'ब्लू पॉटरी' पर चित्रांकन के लिए प्रसिद्ध शिल्पकार कौन थे?
5. पत्रकारिता का 'भीष्म पितामह' किसे कहा गया है?
6. प्राचीन लिपिमाला ग्रंथ के रचनाकार कौन हैं?
7. 'बिज्जी' किस साहित्यकार का उपनाम है?
8. कविराज श्यामलदास की महत्त्वपूर्ण रचना का नाम लिखिये।
9. 'धरती धोरां री' गीत के रचयिता कौन थे?
10. सुमेलित कीजिये

व्यक्ति	क्षेत्र
1. पं. झाबरमल शर्मा	पत्रकारिता
2. शैतान सिंह	गायन
3. जगजीत सिंह	भक्ति
4. गवरी बाई	वीरता

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. स्वामी केशवानन्द के शिक्षा के क्षेत्र में योगदान का वर्णन कीजिये।
2. दुर्गादास राठौड़ इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान क्यों रखते हैं?
3. स्वतंत्रता आंदोलन में शहीद बीरबल सिंह के योगदान का वर्णन कीजिये।
4. पं. झाबरमल शर्मा द्वारा पत्रकारिता के क्षेत्र में किये गये कार्यों का उल्लेख कीजिये।
5. विजयदान देथा एक असाधारण साहित्यकार थे, इस कथन पर टिप्पणी लिखिये।

परियोजनात्मक कार्य :

1. अपने जिले के हर क्षेत्र के 10 महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के जीवन से जुड़ी जानकारियों को इकट्ठा करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

	पुस्तक	लेखक
1.	आधुनिक राजस्थान का वृहत् इतिहास खण्ड–1	डॉ. रामप्रसाद व्यास
2.	राजस्थान का इतिहास	डॉ. गोपीनाथ शर्मा
3.	राजस्थान का इतिहास	राजेन्द्र वर्मा, रीता रावत
4.	राजस्थान का इतिहास, कला, संस्कृति साहित्य परम्परा एवं विरासत	डॉ. हुकुमचंद जैन व डॉ. नारायण लाल माली
5.	राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास	डॉ. गोपीनाथ शर्मा
6.	राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा	डॉ. जयसिंह नीरज, डॉ. बी.एल. शर्मा
7.	राजस्थान के प्रमुख दुर्ग	डॉ. राघवेन्द्र सिंह मनोहर
8.	राजस्थान में भक्ति आंदोलन	डॉ. पेमाराम
9.	भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला	डॉ. रीता प्रताप
10.	राजस्थान की सांझी कला	डॉ. कहानी भानावत
11.	भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला	मीनाक्षी कासलीवाल भारती
12.	राजस्थानी लोक जीवन शब्दावली	ब्रजमोहन जावलिया
13.	राजस्थानी भाषा और साहित्य	डॉ. मोतीलाल मेनारिया
14.	सांस्कृतिक राजस्थान	डॉ. पेमाराम
15.	www.nationalwarmemorial.gov.in	
16,	www.tourism.rajasthan.gov.in	